ISSN 2230-7001

The Journal of Indian Thought and Policy Research

द जर्नल ऑफ इण्डियन थॉट एण्ड पालिसी रिसर्च

(An English-Hindi Bilingual Peer Reviewed/Refereed Research Journal)

Year: 14 Issue: 1 2024-25

ज्ञान परम्परा

Arundhati Vashishtha Anusandhan Peeth, Prayagraj

ISSN 2230-7001

The Journal of Indian Thought and Policy Research
द जर्नल ऑफ इण्डियन थॉट एण्ड पॉलिसी रिसर्च

(An English-Hindi Bilingual Peer Reviewed / Refereed Research Journal)

Year: 14 **Issues: 1** **2024-25**

Founder Patron

Shri Ashok Singhal

Patron

Dr. Murli Manohar Joshi Dr. Subramanian Swamy

Advisory Board

Dr. Bajarang Lal Gupta
Dr. Mahesh Chandra Sharma
Shri Salil Singhal
Dr. Kuldeep Chand Agnihotri
Dr. Raj Kumar Mittal
Shri Ashok Mehta

Editorial Board

Prof. Harbansh Dixit
Prof. Amar Pal Singh
Prof. Susheel Kumar Sharma
Dr. Sanjay Kumar
Dr. Chandra Mauli Tripathi

Editor

Dr. Chandra Prakash Singh

Editorial Address: Arundhati Vashishtha Anusandhan Peeth
21/16 Mahaveer Bhavan, Hashimpur Road, Tagore Town, Prayagraj- 211002 U.P.
E-mail: nationalthought@gmail.com Mob. : +91-7007673044

Cite this issue as: 1 JITPR (I) 2024-25

© Arundhati Vashishtha Anusandhan Peeth 2024-25

No part of this journal can be printed, published, photo copied, reproduced or stored in any retrievable system except with prior written permission of the proprietors of this publication.

It is clarified that the views expressed by the authors of the articles published in the journal are their own and may not reflect the views of the members of the Editorial Board.

Printed and Published by Dr. Chandra Prakash Singh at Prayagraj for the proprietors, Arundhati Vashishtha Anusandhan Peeth, 21/16 Mahaveer Bhavan, Hashimpur Road, Tagore Town, Prayagraj-211002 (UP).

CONTENTS

1. सम्पादकीय 3-5

2. Arvind Prabhakar Jamkhedkar 6-24

   THE EMERGENCE OF HINDU TRADITIONS: A HISTORICAL PERSPECTIVE

3. Maria Wirth 25-39

   INDIC KNOWLEDGE SYSTEM – ITS INFLUENCE ABROAD WITH FOCUS ON GERMANY

4. Susheel Kumar Sharma 40-64

   ENVIRONMENT IN HINDU CONSCIOUSNESS

5. प्रो.दीनबंधु पाण्डेय 65-100

   इतिहास की भारतीय अवधारण एवं भारत में इतिहास बोध

6. डॉ. प्रमोदकुमार दुबे 101-109

   अध्यात्म का राष्ट्रीय योगदान

7. प्रो. ओम प्रकाश सिंह 110-117

   देवर्षि नारद के संचार में एकात्म मानव दर्शन

8. डॉ. प्रमोद कुमार मिश्र 118-141

   भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरणीय चेतना

9. डॉ. अरविन्द कुमार राम 142-157

   भारतीय संस्कृति पर श्रीमद्भागवद्गीता एवं भागवत महापुराण का प्रभाव

10. ब्रजेश सिंह 158-162

    भारतीय साहित्य साधना से लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय

सम्पादकीय

'द जर्नल ऑफ़ इंडियन थॉट एंड पालिसी रिसर्च' का यह अंक भारतीय ज्ञान परम्परा को समर्पित है। जब बात ज्ञान परम्परा की हो तो आवश्यक है कि यह बोध हो कि ज्ञान किसे कहते हैं और परम्परा किसे कहते हैं। ज्ञा धातु से अवबोधन के अर्थ में ल्युट प्रत्यय लगाने से ज्ञान शब्द की निष्पत्ति होती है।[1] भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान के दो रूप हैं, जिन्हें लौकिक ज्ञान और पारलौकिक ज्ञान, प्रत्यक्ष ज्ञान और अपरोक्ष ज्ञान, इन्द्रियजन्य ज्ञान और इन्द्रियातीत ज्ञान, विषय ज्ञान और स्वयंबोधी ज्ञान, व्यवहार का ज्ञान और परमार्थ का ज्ञान आदि के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है, लेकिन इन सभी का अर्थ एक ही है।

ज्ञान के लिए प्रमाणों की आवश्यकता होती है। भारतीय चिंतन परंपरा में मुख्य रूप से कुल सात प्रमाणों की चर्चा की गई है- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य , अर्थापत्ति, संभव और अनुपलब्धि या अभाव। इंद्रियों के साथ सम्बन्ध होने से किसी वस्तु का जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष है। लिङ्ग (लक्षण) और लिङ्गी दोनों के प्रत्यक्ष ज्ञान से उत्पन्न ज्ञान को अनुमान कहते हैं। किसी जानी हुई वस्तु के सादृश्य द्वारा दूसरी वस्तु का ज्ञान जिस प्रमाण से होता है वह उपमान कहलाता है। जैसे, गाय के सदृश ही नील गाय होती है। आप्त या विश्वासपात्र पुरुष की बात को शब्द प्रमाण कहते हैं। जो बात केवल परम्परा से प्रसिद्ध चली आती है, वह जिस प्रमाण से मानी जाती है उसको ऐतिह्य प्रमाण कहते हैं। जिस बात से बिना किसी देखी या सुनी बात के अर्थ में आपत्ति आती हो उसके लिये अर्थापत्ति प्रमाण हैं। जैसे, मोटा देवदत्त दिन को नहीं खाता, यह जानकर यह मानना पड़ता है कि देवदत्त रात को खाता है क्योंकि बिना खाए कोई मोटा हो नहीं सकता। व्यापक के भीतर व्याप्य-अंगी के भीतर अंग का होना जिस प्रमाण से सिद्ध होता है उसे सम्भव प्रमाण कहते हैं। जैसे, सेर के भीतर छटाँक का होना। किसी वस्तु का न होना जिससे सिद्ध होता है वह अभाव प्रमाण है। जैसे चूहे निकलकर बैठे हुए हैं इससे बिल्ली यहाँ नहीं है।

इन प्रमाणों में षड्दर्शन में वैशेषिक दर्शन- केवल प्रत्यक्ष और अनुमान को मानता है। सांख्य और योग- प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द या आप्त को मानते हैं।[2] न्याय- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द को मानता है।[3], पूर्व मीमांसा में भाट्ट परम्परा- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द मानती है, प्रभाकर परम्परा एक और प्रमाण अर्थापत्ति को

1. ज्ञा (अवबोधने) भावे ल्युट् (3-3-115)।
2. प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टं त्रिविधमनुमानमाख्यातम्|
   तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकमाप्तश्रुतिराप्त वचनं तु || सां ख्य कारिका -5
3. प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि| न्याय सूत्र 1/1/3

भी मानती है, उत्तर मीमांसा में अद्वैतवेदांत- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि को मानता है। बौद्ध केवल प्रत्यक्ष और अनुमान को मानते हैं।

भरतीय ज्ञान परंपरा को समझने के लिए लौकिक विद्या यानी अपरा विद्या अर्थात् व्यावहारिक ज्ञान और परालौकिक विद्या यानी परा विद्या अर्थात् पारमार्थिक ज्ञान दोनों की परंपरा को समझना पड़ेगा। ऐसा नहीं है कि दोनों विद्याएँ परस्पर अलग हैं, दोनों के बीच अंतर्संबंध है, इसलिए व्यवहार की किसी भी विद्या या ज्ञान का पर्यवसान पारलौकिक अभ्युदय पर जाकर होता है। अपरा विद्या को परा विद्या तक ले जाने के मार्ग का जो निर्धारण करता है वह धर्म है, इसलिए वैशेषिक दर्शन में धर्म की परिभाषा ही यह दी गई है कि जिससे लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक निःश्रेयस की सिद्धि हो वही धर्म है।[4] भारतीय ज्ञान के किसी भी विधा की परम्परा हो उसके उद्देश्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का सन्निवेश रहता है। व्यवहार जगत में मनुष्य का प्राप्तव्य अर्थ और काम का होना स्वाभाविक है, लेकिन अर्थ और काम को मर्यादित कर मोक्ष तक पहुँचाना यह धर्म का उद्देश्य है। मोक्ष का अभिप्राय किसी दूसरे लोक की प्राप्ति से नहीं है, अपितु जीवन जीने की ऐसी अंतिम अवस्था जहाँ व्यक्ति व्यवहार जगत के अपने भोग से कोई असंतुलन न खड़ा किया हो। इसका अर्थ है कि भोगकाल में व्यष्टि से लेकर समष्टि तक व्यक्ति ने जो भोग किया उस भोग द्वारा सृष्टि जगत में कोई भी असंतुलन नहीं उत्पन्न हुआ तब वह व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर लेता है। कर्म से उत्पन्न असंतुलन ही व्यक्ति के कर्माशय का सृजन करता है और फिर उसको भोगने के लिए व्यक्ति बाध्य होता है, इसलिए भारतीय ज्ञान परम्परा में अर्थ और काम की पूर्ति के ज्ञान की कोई भी विधा हो वह मोक्ष के मार्ग को, प्रशस्त करती है। उद्योग, वाणिज्य, कला-कौशल, स्थापत्य, नृत्य-संगीत, चिकित्सा हो या युद्धकला भी हो तो उसका लक्ष्य मोक्ष ही है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रधान लक्षण समग्रता और पूर्णता है। विषयवस्तु के खंड-खंड को जो अखंड से जोड़ दे वही भारतीय ज्ञान परंपरा है। भारतीय ज्ञान परंपरा विश्लेषण से संश्लेषण की ओर बढ़ती है और पूर्णता में जाकर पर्यवसित हो जाती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा केवल शास्त्रों में ही नहीं है, उसका बहुत बड़ा भाग शास्त्र के बाहर लोक में विद्यमान है। यथार्थ तो यह है कि ज्ञान की धारा पहले लोक में प्रवाहित हुई, परिष्कृत और परिमार्जित रूप में बद्ध होकर उसने शास्त्र का रूप ग्रहण किया। प्रकृति से प्रेम, पर्यावरण से प्रेम, नदी और पर्वतों से प्रेम, उनसे आत्मीयता और उन्हें

4. यतो अभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि सह धर्मः- वैशेषिक सूत्र 1/1/2

जानने की एक उत्सुकता, यह वैदिक काल से ही दृष्टिगोचर होती है, लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि वह जितना शास्त्र की परम्परा में थी उससे भी कहीं अधिक लोक की परम्परा में विद्यमान थी। प्रकृति प्रेम का वही भाव और आत्मीयता आज भी शास्त्रों से कोसों दूर वनवासियों के लोक-व्यवहार में दिख जाती है। शास्त्रों से जुड़े न होने के कारण उन्हें अलग मान लेना एक भूल है। उनका लोक-व्यवहार भारत की ज्ञान परम्परा का अभिन्न अंग है। आजतक वे श्रुति के आधार पर चल रहे हैं और शास्त्रीय परम्परा ने श्रुति को शास्त्रों के रूप में आबद्ध कर परिमार्जित कर दिया।

अन्तर्निहित तत्त्वबोध के अभाव में बहुधा लोक-परम्पराओं को रूढ़ि मान लिया जाता है, क्योंकि दीर्घ-काल तक परम्पराओं का प्रवाह तो बना रहता है लेकिन तत्त्वबोध विस्मृत हो जाता है। लोक-परम्पराओं में तात्त्विकता का अन्वेषण भी आज के युग की एक महती चुनौती है, क्योंकि कुछ परम्पराएँ ऐसी भी होती हैं जिनकी तात्त्विकता देश,काल और परिस्थिति के सापेक्ष होती है, इसलिए देश, काल एवं परिस्थिति के परिवर्तन के साथ वे रुढ़ियों में परिवर्तित हो जाती हैं।

भारतीय ज्ञान परम्परा को समझने के लिए केवल शास्त्र ही पर्याप्त नहीं है, उसके लिए भारत के लोक भाव और चित्त को समझना आवश्यक है। भारत का समग्रता बोध ही भारत का वैशिष्ट्य है।

आज के अधिकतम उत्पादन एवं अधिकतम उपभोग की अमर्यादित, अनियोजित एवं अनियंत्रित विकास की अवधारणा सम्पूर्ण जगत के लिए अनिष्टकारी सिद्ध हो रही है, ऐसे समय में भारतीय ज्ञान परंपरा पर चिंतन-मनन, अनुसन्धान और उसका व्यवहार, न केवल भारत को अपितु सम्पूर्ण जगत को संतुलन, सामंजस्य और लोक-कल्याण की दिशा प्रदान कर सकता है।

आशा है, भारतीय ज्ञान परम्परा पर आधारित 'द जर्नल ऑफ़ इण्डियन थॉट एण्ड पालिसी रिसर्च' का यह अंक सुधी जनों को भारतीय ज्ञान परम्परा पर चिंतन की दिशा में उन्मुख करेगा।

- **डॉ. चन्द्र प्रकाश सिंह**

THE EMERGENCE OF HINDU TRADITIONS: A HISTORICAL PERSPECTIVE

Arvind Prabhakar Jamkhedkar[1]

Abstract

The article traces the antiquity and development of Hindu fold of life and develops an understanding of cultural sequencing with the help of Archaeology. The article has been divided into six sections. In the first section, how the society moved from polytheism to monotheism has been discussed. The Historians of Religion earlier thought that this shift was a very significant step in the development of early religious thought. The second section surveys the philosophical and the religious literature in the Vedic tradition to understand the development of various schools of thought and the sects and sub-sects and various deities in religious life. It highlights how a new synthesis, parallel to the caturāśrama system of the smṛtīs developed and how various cults like Vaishnav cult and Shakt cult came into existence. The third section concentrates on the Medieval period in which the concept of tīrtha-yātrā became dominant. The fourth section shows how the emphasis on worldly prosperity and a permanent residence in the heavens was substituted by liberation from transmigration. The fifth section discusses the process of Hinduization, a pan- Indian phenomenon working even in early Historical and Proto-historic India across various parts of the globe. The last section discusses how the principle of Karma and liberation charted a route for certain dos and don'ts.

Keywords : *Vedic period, Indian History, Archaeology, Harappan period, Christianity, Upanishad*

In India if any inquiry into the past undertaken, it is very common to start it

1. Archaeologist and historian, former Chancellor of Deccan College, Pune and former Chairman of the Indian Council of Historical Research (ICHR)

with the Vedic period or the Vedas. With recent developments in the writing of Indian History, or understanding a cultural sequence with the help of Archaeology the mode has changed in certain ways. However when it comes to the domain of religion and philosophy, the enquiry has to start with the Ṛgveda, the most ancient Vedic text. One of the unique distinctions that the Vedas have is their antiquity and their place in the cultural sequence in an archaeological context. It was a great surprise for the European orientalists, when in the 16th century missionaries in India discovered the Sanskrit language and its affinity with the Latin language. The later history of William Jones (of the Asiatic Society, Calcutta) and others understanding the study of Sanskrit and revealing more facets of the early Sanskrit literature, and guessing that there were ancient people designated as Indo-Europeans and their 'Original Home', is quite well known. It was as a part of the 'Aryan Problem' that rigorous efforts were made by comparative philologists and students of History of Religions to date the Vedic literature, especially the Ṛgveda. Besides comparative mythology and philology even astronomical evidence was used for such dating purposes. Hermann Oldenberg had suggested a date of 3000 BCE for the Ṛgveda, while Max Müller, who took a very practical view of the dating sequentically, thought that the date of the Ṛgveda should be any time before 1200 BCE. His logic was if the Upanishads, the last phase of the Vedic literature, were roughly contemporary to reformist thinkers like Vardhamana Mahavira and Shakya Buddha, it can be dated to 6th cent. BCE; the Aranyakas could be as a whole to 8th cent. BCE and the Brahman as, 1000 BCE. If two more hundred years are allotted to the later Samhita-s (Yajur-veda, Sama-veda, and Atharva-veda), the Ṛgvedas to be dated at least in 1200 BCE. Max Müller however very cautiously added that how much exactly older than 1200 BCE, however cannot be ascertained. Later scholars like A. B. Keith, as also Indian Historians took it for certain 1200 BCE as the date of the Ṛgveda. Keith had his own grounds to arrive at such a date, including the dating of Avesta, which he thought was composed in 600 BCE. The archaeological data from Harappa proved to be more precise. However because of the presence of the Vedic Aryans in the last phase of the Harappan period (c. 1800 – 2000 BCE) that the Ṛgveda has at least to be dated to 1800 BCE, or even before. More than this earlier date, however was the place of the Vedic Aryans, in the cultural sequence of the Proto-history of India. Whether the Aryans were responsible for the disintegration of the Harappan civilization or not is still a point being debated by both the Archaeologists and Indologists, but it is certain that the Vedic Aryans continued their cultural existence identity right from the early civilizations

including the Harappan. Scholars similarly agree on an earlier date of Avesta; now it can be argued that Zoroaster the composer of Avesta can be dated to a pre 13th ce. BCE date in fact even to 1800 BCE. Again, it should be noted of the Iranians, who were the only heirs to the 'Old World civilizations' of West Asia, can be similarly a bridge between the early Historical Times and the first civilizations of the West. Thus, the earlier observation that the Avesta and the vedic Saṁhitā-s besides the Chinese literature if any of that period, would be the oldest evidence that has to be taken into consideration, while tracing development of the religious thought of the ancient civilizations.

I

The historians of religion earlier thought that the shift from polytheism to monotheism was a very significant step in the development early religious thought. In fact it was only because of this that Max Müller developed his theory of Kathenotheism as a stage in the early mythology of Ṛgveda. What he observed was in contrast to other 'mature' religious traditions, the Ṛgveda did not evince any clear evidence of Monotheism; what he observed was a system of every important God in the Rigvedic mythology being attributed the qualities that are to be observed in the case of the an Almighty God, such as creation and sustenance of the world.

However, a new development in the religious thought, in the case of the Vedic religion, is observed by the Indologists. From the almighty of the gods (Lokeśvara/ Prajāpati, or Yajna), now there is a shift to the principle of Brahman (neuter gender), which is now envisaged as the reality which is to be experienced by constant discussion remembrance and mediation (through the yoga). All the earlier enquiries regarding the secret of the cosmos started with an enquiry about the secret of the sacrifice that was responsible for the creation and sustenance of the world, and holder of the cosmic laws (ṛta/ satya). In the discussions that took place in the congregations of the forest dwelling learned a persons or even those that emerged even in royal assembly, one more doctrine came to the fore and emphatically declared that by simple performance of the sacrifices one cannot attain immortality or eternal bliss. With sacrifices one can ascend to the world of ancestors (*pitṛ-s*) or of the gods (*dyuloka*); but one has to descend back to the earth to be born again as a result of the doctrine of Karman. This was the concept of transmigration (*saṁsāra*) of the soul. Such a reputation of being born again and again, in spite of the fact that the concept of naraka of the epic times, had not as yet developed, underlined the dreadfulness of the state being old affected by

diseases, and ultimately facing death.

In order to understand the daily religious rituals observed by Vedic householder it is necessary to know about the ancillary literature that grew roughly after 6th century, BCE. Notionally this literature is to follow after the principal Upanishads were composed. This ancillary literature (*Vedāṅgas*) consists of six types of texts that are useful in studying the Vedas, Brāhmaṇas, Āraṇyakas and Upanishads, especially the ritual aspect of the Vedic sacrifices. These aspects are covered by a set of literature that is referred to collectively as the *sutras*, it consists of *Srautasutra*s, *Gṛhyasutra*s, *Sulbasutra*s, and also the *Dharmasutra*s. As their title suggests these texts are not elaborate description but explain the traditional 21 sacrifices that are subject of the Brahmaṇa commentaries. The second category of sutras describes the domestic ritual, which are part of the daily life of a householder and the 16 sacraments that pertained to different stages and events in the life of a Vedic householder. In fact, the 21 elaborate sacrifices are also described as sacraments (*saṁskara*s). The grhyasutras also includes rituals that are incidental, such as the rituals perform, when setting out for a journey. During this ritual the father or the elderly person should breathe over the head of his son. The ritual symbolically means that the father invests with his life itself in his son is person. In fact, such sacraments give us a key to understand not only the domestic rituals but also give us a key to open the secret of the Vedic sacrifice. The sulbha-sutras are like manuals to help the sacrificer to draw diagram/s of the alters (*Vedi*s, *citi*s), and others structures. When critically analysed, the sulba-sutras make us aware of the progress made by Vedic Aryans in geometry and mathematics. The ancillary literature which has explained earlier grew up simultaneously with the other *Vedaṅga* literature. This includes manuals for the proper recitation of the vedic text (*Sikṣa*), the kalpa texts (*kalpa*), grammar (*Vyakaraṇha*), the science of etymology (*nirukta*), metrics (*chhandas*) and astronomy (*Jyotisha*). The kalpas usually are associated with the given branch of vedas followed by the householder; so they differ from Veda to Veda, and from the various versions (*Sakha*s) of the given Veda. Other components of the ancillary literature such as, *Siksa* and *Vyakarana* (of Panini), *Nirukta* (of Yaska), and Jyotisha (Lagadha) are individual compositions. The *Kalpasutra*s category deserves a special attention that is *Dharmasutra*s. For example, the *Manusmrti* is usually explained as the science of *Dharma* and is attributed to Manu. Such later *smrti*s must have had their origin in different *Dharmasutra*s, which had affiliation to the different branches of the four Vedas. Thus, out of this religious literature only the laws that governed the society must have originated.

This discussion of the ancillary literature very clearly shows that the later systematic writing pertaining to religious observances (*Dharmasastra*) or even political science (*Arthasastra)* have their origin in this vast vedic literature. Its importance can be understood, when we realize that the vast *smṛti* literature that developed even up to something like the later medieval period had an authority and impact on the Indian mind even up to 18th Cent. The East India Company when it established itself as a joint ruler and started its own courts to administer justice on the new Indian subjects, thought it proper to use the famous *Yajnavalkyasmrti* and the *Manusmrti* as the basic law books to deliver justice.

As can be imagined this vast Vedic literature including the ancillary (*Vedaṅga*) covered a time span as indicated earlier, at least of about 2000 years. One of the main shifts that took place in the Vedic world view during this period is usually described as a shift from *pravrtti to nivrtti*; giving more emphasis on the life of a celibate forest-dweller, and that of a renunciant mendicant than the active life of a householder deeply immersed in Vedic learning *(brahmacarya)* and performance of the sacrifices *(grahsthasrama).* As explained earlier the *nivrtti* way of life of a Vedic follower along with a similar life led by the Buddhist and Jain Monks must have brought a great change in the Indian society from 7th – 8th Cent. onwards. It had become such a distinct part of the Indian way of life that the early classical accounts left by Greek and Roman travelers had to mention *śramaṇa* as an institution. Jointly these are referred to as *Sramana*s and *Brahmana*s. In fact, there are very graphic accounts telling us how when a non-conformist wanted to renounce the world he gave away all his property to the state. The renunciants in Brahmanic tradition are described as hereditary in contrast to the srmanas. This also very clearly shows that both these schools of thought developed initially independently but later on grew exchanging ideas between themselves. That such a community was known by the given appellation is confirmed by the edicts of Ashoka, which say that both should be equally respected by every citizen.

This way it will appear that now these two ideals had become totally divergent from each other and had objectives opposite to each other. The persons who followed the *pravrtti-dharma* can be identified with the orthodox followers of Vedic religion, from whom the later school of philosophy, viz. that of the *Mimamsakas* seem to have emerged. They also believed in the doctrine of *Karman* that the *Karman* meaning performance of sacrificial ritual created a unique thing (*Apurva*) that resulted in the sacrificer attaining to heaven. After

learning Vedas at a proper age one got married, was initiated in the worship of fire (*Agnihotra*) and then continued performing sacrifices till his death; and never bothered to retire to the forest or become wondering mendicant. This type of belief in what may be termed as merit (*Apurva*). According to this school resulted in getting assimilated with Aditya, the Sun, who is the symbol of immortality (*Amrtatva*). This school does not believe in the Almighty God also; the god according to this school at the most is like a judge, evaluates the good and bad deeds, accordingly rewards or punishes the soul present before him and after death. The Karma is the only thing, which is powerful in deciding the destiny of a person. Opposed to this, the philosophy of *Nivrtti* proclaims that all these good and inferior deeds result in two ways: the way of manes (*Pitryana*), and that of the gods (*Devayana*). Perhaps by devayana, they might mean the results that are pre-supposed by the (*Purva*) *mimamsa* philosophy. The latter meaning immortality. But those who attain to the world of the *pitrs* have no option other than being born again in this world. And therefore, in spite of the fact that the performance of the sacrifices brings prosperity, if one has to attain salvation from the curse of transmigration one has to retire to the forest, observe a life celibacy and ultimately leave all the worldly bonds behind and be peripatetic monk.

In the epic times there seems to be a synthesis of these two apparently opposite world views that resulted in the concept of the four stages of life (*Caturasrama*) and the four aims in life (*Purusartha*s), primarily based on a concept of three or five debts (*ṛna*s) viz.

i) *Devaṛna*,

ii) *Ṛsirna*,

iii) *Pitrṛna*,

iv) The *manusyaṛna*, and

v) *Bhutaṛna*.

The basic idea was that the sacrifice brings about worldly prosperity, as also welfare in the world. According to this view the secret of the sacrifice was known to the gods, from whom it was revealed to the sages who composed hymns (*RSI*), who in turn shared it with our ancestors. Unless we pay back these three debts which bring prosperity to us in this world and the next, we cannot take up efforts for self-realization (*Moksa*), which is comparatively an individual and parochial attainment. This synthesis of two opposites becomes the most ideal way of life for

a follower of Sanatana Dharma. And this's what exactly has been put into words by the great social thinkers like Manu and Yajnavalkya.

II

In the Santiparva of *Mahabharata* we see a different reaction to this process of synthesis that was taking place. In fact, there are many chapters that are in praise of the householder, who is taken to be the sustainer and supporter of the rest of the societyin the remaining three stages of life. The brunt of this very stern ascetic movement must have been faced by the administrative and the ruling the group in the society; the *Ksatra*. The Members of this class (*Varna*) were invested with the responsibility of keeping an equilibrium by keeping the law and order and administrating justice and protecting the weaker section of the society that suffer from poverty and injustice. His reaction therefore, in spite of the fact that he was convinced of the philosophy of renunciation, was that of reminding himself of maintaining law and order, thereby the smooth running of the worldly affairs and being protector of those who suffered from injustice. [2] The *Naranarayaniya* section of the *Mahabharata* speaks about a new world view wherein a new synthesis, parallel to the *caturasrama* system of the smṛtis has been proclaimed. And Bhagavan Krishna himself is the profounder of this new path. The stories connected with this *Agama-Dharma* are quite interesting. It says that sacrifices involving violence to animals are a thing of the past. In technical terms it is not yajna/yaga, but the homa that is to be performed. Emphasis on truthfulness non-cheating and other virtues that are said to be purifying the mind, and lot of emphasis is there on the control of passions that originate from desire (*kama*) and wrath (*Krodha*). It is because of these blemishes that man is tainted with misdeeds for which a person pays in the life after death, and is born again and again. The in-evitable/regular (*Nitya*) activities of householders are to be performed for the smooth running of the worldly affairs. One has to control the senses and concentrate one's mind on (Para-) Vasudeva, the principle of this world. And by practicing Yoga and remembering him all the time one should perform all the activities without attaching oneself with the outcome, good or bad, of that activity. The sacrifices (*yajna*) charity (*dana*) and controlling mind and body (*tapas*) actually purify your mind and make your path of liberation open for you. It is not the renunciation of Karma but practicing that in Karma is more important!

2. दण्ड एव हि राजेन्द्र क्षत्रधर्मो न मुण्डनम्। *Mahabharat* 12.24.20

Another important aspect of this movement is that the general philosophy which has been propounded in the *Bhagavad-Gita* and the *Nara-narayania* section of *Santiparva* (of *Mbh*) is later on elaborated by way of commentaries written by four main *acharayas* who represent the Vaisanava/Bhagvata traditions in a medieval period. Most important *Bhagvata* tradition whose epigraphical evidence is clearly available from the early Gupta period and is supported strongly by all the Gupta kings who very distinctly describe themselves as *paramabhagavatas*. From them this vaiṣaṇava movement spreads itself into the Deccan through the Vakatakas, Traikukatakas, Kadambas and Vishnukundins who also proclaim themselves to be vainavas or bhgavatas and through these it reaches Tamilnadu to transform itself into a very strong and local bhakati movement expressed by the Alvars. From then on all the important vaisnavas agmans are composed and take a firm route in all the four regions of the south. Here we referain from discussing the various expressions of vaisnavism (the Pancharatras, the Madhavas or the Pushtimargis) or their metaphysical doctrins. Suffice is to say that these three acharayas viz. Ramnujacharya, Madhvacharya, and Vallabhacharya went upward to the deccan and north and spread their doctrines so effectively that they had a great impact in western and northern india that countinues even today.

It has been already mentioned that the Nara-Narayana section of Mahabharata is generous enough to include the pasupatas or the *Mahesvara-Agama* within the fold of *Pancaratra*/*Satvata* tradition. If in the Pancaratra-Agama Para-Vasudeva holds the place same as Brahman, in Pasupata tradition Para-Siva holds the same. As Samkansana, Pradyuma and Aniruddha are the *Vibhava*s of the Para-Vasudeva, Tatpurusha, Aghora, Sadyojata, Vamadeva and Isana are the manifestions of the Para-Siva. Their relationships can be understood through the concept of the various energies like i) *Ichasakti*, ii) *Kriyasakti*, iii) *Jnanasakti*, iv) *Tirodhan Sakti*, and v) *Prasada*. These Saktis distinguish the Para-Siva from the common creatures as also the gods because of his i) Self will ii) his self willed activity iii) his omni science iv) his ability to remain unperceived from the creatures of the world and v) his power of grace. A Pasupata initiate has to undergo a very rigorous daily routine of education and performance of various rituals including those for control of senses and mind. In his successive spiritual stages, i) he first lives in the house of his initiator/acarya, ii) then in a temple, iii) in a cave and at last in the cemetery. And during these stages concentrates on the different aspects (*Vaibhava*s) of Para-Siva that have been enumerated above. With rituals performed under the guidance of his initiators, he is able to get rid of

the demerit (*Mala*) that he has accumulated through different lives, ends his misery (*Dukkha*) and becomes one with Para-Siva.

In the Agama traditions, as observed earlier, it is not necessary to renounce the world. For example the initiate (*sadhaka*) initially lives in a house of the acarya himself; he obviously was a householder. But as in the case of *bhagavat* traditions exemplified by Suka, one could lead the life of renunciant. Sri Ramanujacarya himself was a sanyasin, while majority of the followers were householders and led a normal worldly life. Thus it will be seen that in the *Agama* tradition one could achieve the highest knowelege and spiritual station while being a householder only. This concept of identifiying a deity with Brahman the principal first gained more popularity devotees of other important Gods also. Next was the great goddess popularly known as Durga-Mahisasuramardini, who gained this distinet position in about 7th century the *Durga-saptasati* section of the *Markandeyapurana* propounds a fullfledged doctrine of Devi/Sakti, whose three aspects influenced by the three spiritual qualities, viz. Sattva, Rajas, and Tamas. The three legendary biographies are about Mahalaksmi, Mahakali, and Mahasarasvati. The doctrine of *avatara,* which is very much inherent in the *Bhagavat* traditions of *Bhagvad Gita* is also an accepeted doctrine in the *Sakta-Agama*. Mahalaksmi annihilates Mahisasura, who reprents the evil forces that are antagonistic towards the divine cosmic world order. The same is repeated by Mahasarsvati, who vanquishes the two asura brothers, Sumbha and Nisumbha. The Mahakali had a different role to play; she represents the darkness of the cosmic night before the creation of the world at the hands of Brahma, who emerges from the lotus flower that sprouts from the navel of Visnu, she resides on the tongue of Visnu during the cosmic night and is responsible for his *Yoganidra*. Brahma praises, and beseeches her to come out so that Vishnu can rise from his divine sleep; will help Brahma to resume his activity of this creation.

The kernel of the *sakta* philosophy is that a devotee of the Devi should worship her during the month of Asvina (September-October). A lot of emphasis is given on fashioning the image from the clay that has been brought by river currents to shore by the recent floods in the rainy season. A complete prescription has been given as to how the images of the three goddesses Mahalaksmi, Mahakali, and Mahasaraswati are to be fashioned, installed and worshipped with offereing including flesh and wine. Here the tantric rituals are not only part of the Devi cult, but are a clear indication of the assimilation of the local cults of the aboriginal people in the Sakta-Agama.

This third Agama, associated with Sakti or Devi has its own historical significance. It is not a coincidence that the cult of the autochthonous mother goddeses emerges in Central and Eastern India. Popularly known as the Sixty four (*Chausath*) *Yogini*s, these are mother goddesses that are worshipped by the forest dwelling cultres of Central and Eastern India. As their number will suggest they are in correspondence with the sixty four Bhairavas that are in the retinue of a Siva. It is also very well known that from amongst the vedic-puranic gods Siva is very popular among the forest dwelling ethnic groups of Central India, and its popularly known as 'Bada Guru', the great preceptor. From their ambivalent character it is no wonder that both Sakti and Siva become easily acceptable for these communities. One more important thing, which happens is that it is this juncture only that so many Tantric rituals get assimilated in the Brahmanical and the Buddhist religious and spiritual traditions. In fact a standard work on Agamic rituals like *Isana–Siva gurudeva-paddhati* (circa 11th century CE) clearly reveals the influence of the tantra on Agamic rituals and its inclusion in them. We are going to specially discuss this assimilative aspect of the *Agamic* rituals when we shall be dealing with cults like that of Jagannath, Khandoba amd the Renuka.

During the course of time, there were three more *Agamas* that followed a similar pattern. By the end of 14thCE century the Saura-Agama, Murugan/Skanda Agama and that of Ganesa get developed as full-fledged *Agamas*. The legends connected with Surya become quite mature by about 8th century CE, and there is one full-fledged Purana, namely Saura Purana dedicated to the deity. The myths of the Sun become so much attractive that late echoes of some of these appear in the Jain tradition also. The legend has it that the Sun rises in the east near Puri Konark during this journey he takes rest at Kalpi Kalpriyanatha in the doab, and in the evening he sets at Multan (Mulsthana) in Punjab. Even though the myths of the Sun go back to the Ṛgveda, there is a new incarnation of his cult round about 2nd century CE. This is a legend about the introduction of this new cult in the *Saurapurana*, according to which it was *Samba,* who suffered from white leprosy, who brought Maga priests from Parthia-Iran, who established the first temple of the Sun at Multan that is why its name Mulasthana. The image so established was so much popular, and influential that the patients of leprosy from all over the India thronged to this place. The income from the toll at this place was so enormous that the greedy sultans who had conqured Multan did not destroy it at least upto 13th century CE. And it also should be noted in this connection that between 8th and 10th century CE, there are a large number of temples dedicated to the Sun. In fact the Bhojaka and Maga Bhramins are the priests, who look after

the worship in the temples of this cult.

Skanda/Kartikeya, the son of Siva and Parvati, is a very popular divinity in the South. He gets identified with Murugan the god of death from the dravida mythology. Shabarimalai is the place sacred for Murugan, who is also revered as Ayyappa; and has a very strong cult with a multitude of followers. This cult also becomes one of the important cults of the Medieval India.

Entry of Ganesa into this fold is relatively modern. Ganesa has a very intresting story in his development from a deity of warriors who formed a republic (*gana*) in N.W. India, and were known as Hastinayanas. The earliest reference to the cult of this elephant-headed god goes back at least Indo-Greek times. During this period, it is believed by some scholors, the deity was represented on some Indo-bacterian coins. Hueng Tsang the Chinese Buddhist scholar who travelled in India, relates intresting legends about him. This ambivalent divinity is accepted by about 3rd century C.E. in the *Smarta* rituals as is attested to by the *Yajnavalkaya smrti*. This ambivalent folk god gets entry into the higher circle of gods with his admission into Sivas family; he also gets entry into the Tantric pantheon in the early medieval period (as Haridra Ganesa) and suddenly becomes the central figure of an *Agama*. One of the most important manisfestations of this cult and *Agama* are reveled in the *Ganesa-Purana* (circa 16th – 17th cent C.E.). The philosophical tenents of this *Agama* have been very succintly described in the *Maha Ganaptistotra* composed by Raghav Chaitanya Swami. The cult of Ganesha as Siddhivanayaka, consort of Rddhi and Siddhi, goes atleast back to 12th – 13th cent CE. But its real flowering comes during the late medieval period in the form of the Astavinayaka-yatra.

The development of the six *Agama*s right from at least 6th cent CE to about 15th cent CE is a very intresting chapter in the development of the religious thought in Ancient and Medieval India. As we have seen these *Agama*s must have started initially only as cults (the cult of pancavrsi-viras, as that of Rudra, as of the Mother Goddess, of Vinayaka, and of Murugan) but later on must have developed their own philosophical and ritualistic doctrines and conventions to suite the general philosophical world view of the Indian religious tradition that believe firmly in the ephemeral nature of human and worldly life in the doctrine of karma, and the devotion as a way of life.

In this connection it will be intresting to take a general review of the philosophical and religious, especially the puranic literature. Besides the Vedic

and epic traditions, the Buddhists, Jains, Ajivikas and others who form the shramanic tradition have also a large literature explaning and describing their philosophical tenents the code of conduct and legends. When put in metaphysical and epistemological terms the philosophical works of these Vedic and non Vedic traditions are called (*Darsana*s). So these refer to as a *Astika* and *Nastika* when they accept the authority of the Vedas, or not. In the first category are six darshanas, which are; i) *Saṁkhya*, ii) *Yoga*, iii) *Nyaya*, iv) *Vaisesika*, v) *Purva-miṁamsa*, vi) *Uttara miṁamsa*. Whereas the fifth is connected with the *prarvritta-dharma* believing completely in the doctrine of sacrifice, the Uttara miṁamsa emphaises renunciation (*Nivritti-marga*). The Saṁkhya again is a path for renunciation. Yoga represents the *Agama-marga*, and as controlling body and mind becomes part of the practice of both *pravritti-marga* and *Nivrtti-marga*. Scholors have observed that the *Nyaya* philosophy inspired the Saiva-*agamas*. The Vedanta philosophy represented by the Brahmasutra is accepted as the foundation for the *Nivrtti-marga* but also, is accepted by the Satvata-Bhagvata dharma, which provides philosophical basis for *Vaisnava-Agama*s. Thus one can find that the *darsana*s in some way or the other provide a systematic philosophical basis both for the *Pravrtti-marga* and the *Nivrtti-marga* in the vedic tradition. Though the epic *Mahabharata* describes the tenents of both the Saiva and *Vaisnavas Agama*, and the *darsana*s provide them with the systematic philosophoical basis, the 18 puranas that follow elobrately describe for the common man as also the learned the *Agamic* doctrines and traditions connected with Visnu, Siva, Devi/Sakti and Surya. The 18 *Puranas* are usully dated from 3rd cent CE to the 6th cent CE. The *Purana*s explain the role of the 18 upa-Puranas that follow the main Puranas as text that explain the philosophical and also ritualistic and ethical elements that remained unexplained fully in the Main-Puranas. Then follows a huge mass of literature that deals with the glory of different gods like Jagannatha, Tirupati Vekaenteshwara (Balaji), Vithoba, Renuka, Mahalaksmi and so many others that have cultic importance from the regional or local point of view. Many times these are in the form of Mahatmyas, or the 'Stories of Glory' of a God, or religious of holy place.

III

The above survey of the philosophical as also the religious literature in the Vedic tradition is just to give an idea of the various schools of thought that emerged during this long period as also the sects and sub-sects that developed in the religious life of traditional India. During the medieval period the concept of

Tirtha-Yatra becomes very dominant. In fact there is evidence to show that the pious who visited a holy place as a part of their prime religious aspirations commemorated such a visit in a visual form. These are called the *Tirtha-Pathas*; famous are the examples of the *Varanasi-patha*, wherein all the important holy places within a given circuit, measured in a distance unit (*Panca-Sapta-Kosi-Yatra*) are also described. In this connection it will be proper to explain the concept of *Tirtha* that is a Holy place as it is known in the Indian context. The word *tirtha* means a ford, a place on the bank of the river from where you can easily cross. In India such places are provided with a flight of steps (*ghat* in modern vernacular Indian language) from the current of the river to a safe ground above. Water in Indian context not only cleans and purifies one's body; but also in exceptional cases the water bodies such as ponds lakes, or sacred places on the river bank, brings merit, but even leads to one's liberation. Symbolically when one crosses the current of the river one crosses the ocean of transmigration. If in the Vedic and later epic and puranic tradition sacred water has such a quality to turn a place into holy, in the tradition of the *patanjala-yoga* and in the shramanic tradition a place becomes (*Tirtha*) if it is sanctified by an association with a great yogi. The aura created by yogi or even by the pious king (*Dharmaraja* or a Rajarsi), brings in the same effect. In the epic and puranic tradition the seven holy cities, viz., i) Ayodhya, ii) Mathura, iii) Maya, iv) Kasi, v) Kanci, vi) Avanti, and vii) Dwaraka are the seven holy cities that bring liberation to a pious after a visit to them. There are sacred places which are associated with particular divinities of the puranic pantheon. The twelve *Jyotirliṅga*s are associated with Bhagvan Siva; 108 or 51 *Sakti-Pitha*s are associated with the Devi. We have already referred to the holy places associated with the Sun, Murugan/Ayyappa, and Ganesa/Vinayaka. Generally a pious Hindu reveres all gods in the Hindu pantheon without any discrimination, except that he has a special devotion for his favourite deity (*Istadevata*) or his tutelary deity (*Kuladevata*). In fact, whenever any auspicious event (for example the wedding ceremony, entering a new house) takes place all the deities including the nine planets (*Navagraha*s), eight Guardians of direction (*Dikpala*s) and even the local divinities (*Grama-devata*) are welcomed and offered appropriate worship. But there is a new feature that starts in the regular and daily worship (*nityapuja*) of gods in a private home. For a

common Hindu there are three gods viz., i) Brahma, ii) Mahesa, and iii) Visnu that are revered due to their cosmic functions of respectively, creating, disintegrating and sustaining the world. If Brahma represents the sacrificial orthodox ritual Mahesa and Visnu represent the *Agamic* traditions. But in the medieval period emerged concept of an assemblage of four gods (Hari-Hara-Pitamaha-Arka), viz., Visnu, Siva, Brahma and Surya together as one syncretistic image. Representations in image form of such a syncretistic god are quite common on one of the three main walls on the sanctum in the medieval of Deccan and the North. Professor V.S. Pathak has brought together a lot of epigraphic evidence to describe and explain this reverence for syncretism. One of the reasons for this might have been the rivalry that seems to have emerged among the followers of the five or six agamic traditions connected with a important puranic gods that we have discussed earlier. And these are connected with i) Visnu, ii) Siva, iii) Devi, iv) Surya, v) Skanda/ Murugan, and vi) Ganesa. The Shankaracarya of Shringeri honored with an epithet, '*san-mata-sthapanacarya*. The epithet conveys that it was Shankaracarya who recognized and respected the six different world-views connected with the above six gods and their agamic tradition. Maintaining and nurturing malice or hatred on the part of the lay followers of one deity to another is not only unhealthy but also sinful. Therefore the tradition says that for the common Hindu it is better to worship all the five gods (Visnu, Siva, Devi, Surya, and Ganesa) with equal reverence. If one wants to show special devotion for one's favourite deity (*Ista-Devata*), one while arranging the aniconic objects representing these gods should place favorite deity in the middle and the rest around it in four directions. This is what is called *Pancayatana-puja*. Though it is believed that the epithet isused while referring to Adi-Shankaracharya, it is more practical and logical to use the epithet in the case of Vidyaranya-swami of Shringeri, who was the preceptor of twin king brothers of Vijayanagara-Hampi. It is more logical to take such a stand in view of the role played by Vidyaranya-swami and royal disciples who had taken up the task of resistance of the Islamic powers and bringing about rigorous revival of Hinduism.

IV

Our survey of the religious thought in the Vedic tradition very clearly shows

how the emphasis which was on worldly prosperity iced with a permanent residence in the heavens was substituted by liberation from transmigration, which was a logical concept and development of the doctrine of Karma. Inadequacy of the sacrificial ritual as a means to real bliss is expressed in very clear words; 'प्लवाह्येतेअदृढा यज्ञरूपा:'. The sacrifice is likened to a feeble boat, which cannot, it is suggested, take you to the other shore! There were similar emotions expressed by others who clearly set aside sacrificial religions; and showed complete disbelief in the authority of the Veda-s as a guide in spiritual matters. Such a group of thinkers and sophists are usually referred to as *sramana*-s. The Jain canonical literature notes down more than 360 such spiritual thinkers who had a sizable following of their own in the contemporary society. Such a type of upheaval in the religious thinking of the people is attributed by archaeologists and historians to the new era wherein fertility of the land ultimately resulted because of internal and international trading that brought materially wealthy and prosperous society of what is referred to as Second Urbanization that started around 800 BCE.

There is an attempt to define as to who were the main leaders of this *Sramana* way of thinking. The five main components of the *sramanic* wave were i) the followers Sakya-Buddha, ii) those of Jina, Parsvanatha, and Mahavira, known as *nirgranthas*, iii) Ajivikas, followers of Mahakali Ghosala putta, iv) the Saṁkhyas, and v) the *Tapasas*. In fact there are six contemporary thinkers who were dismayed as a result of the miracle at Shravasti that was performed by the Buddha. The concerned chapter relates about their metaphysical doctrine and associated code of conduct. They have been roughly classified into fatalists (*akriyavadins*) and those who believe in the freedom of soul and its capability to get relieved of the misery and sorrowfulness of the worldly life and attain and ideal state of bliss in this very life, or hereafter. Without going into the details of their metaphysical concepts and doctrines, it can know the common factor amongst the all these sramanas, especially among the Bauddhas, Jainas and followers of Kapila, who propounded the Saṁkhya philosophy. The common traits were a belief in the bondage of soul because of attachment to worldly comforts and pleasures and a craze for them. All these systems had another very strong belief that there is no single god who creates sustains or annihilates this

creation, or because of whose grace one gets delivered from the misery of this and or the next life. Nothing is eternal including the heavens and the hells. One has to attain one's own liberation alone, and with single handed efforts that help one to control his body and the passions which are result of the unsteady mind. Without going into the details of the metaphysics, epistemology or the ethics preached and practice by this various schools and religious thought. It can be said that they had so many common traits that were shared by also the followers of the Upanishadic thoughts. It is no wonder therefore that Jainism not only negates monotheism but also the concept of the first principle (such as the upanishadic '*Brahman'*) prescribes a very severe code of conduct to control body and the mind. It may be interesting to observe that though emphasizing renunciation being the sole medium to attain liberation (*moksa*), in the course of time Jainism holds a position likes *smartavada* and accepts the stage of a pious householder (*sravakta*), which is a step to renunciation.

If Jainism straight away sets aside monotheism, Buddhism does not think it worthwhile to discuss the role of an Almighty Creator (*Isvara),* if at all. Buddhism also negates the possibility of an eternal soul; and has an explanation about the cycle of birth, life, death (*bhavacakra*) through its theory of 'interdependent origination' (*paticys-samudpada*). By the time of Dharmaraja Ashoka that is after more than a couple of century since the *nirvana* of the Buddha, there were already 18 school (*nikayas*) among the practitioners of Buddhism. These were divided into two camps; i) the orthodox (*sthaviravada*), and ii) The reformist (*mahasaṅghikas*) schools. From the followers of both these camps evolved a more liberal doctrine that is referred to as *Mahayana* in contrast to the earlier two camps collectively as *Hinayana* (the little vehicle). It is interesting to note that Buddhism develops in a parallel way to the Vedic systems. *Mahayana* plays a role similar to the *Agama*-sin order to emphasize now the role of the aspirant Buddha (The Bodhisattva) in alleviating the miseries and sorrow of those in transmigration, and helping them to achieve Nirvana. Alike the *agamas* in Saiva, Vaisnava, and Sakta traditions there is also a Tantrayana, which introduced a great component of magical practices for an aspirant (sadhaka) in order to attain, not nirvana, but accomplishment (*siddhi*) to become a Siddha.

There are many non-conformist *Sramana* like movements in the Hindu religious tradition also. We would not like to go into the details of the *Mahanubhava* sect and the *Veera Saiva* sect that represent these spiritual traditions, who are devotees of the god respectively like Krisna and Siva but do not accept the authority of *Vedas*.

V

When George Çoedes published his book on the Khmer civilization he was criticized for using the words 'Hinduised States of South East Asia. Actually here he used the words in the sense of Indian States, thereby meaning that these regions or states assimilated themselves in the Indian way of life. They accepted Indian social customs and religious beliefs connected with Buddhism and Jainism and this way became Hindus or Indians. This term has been recently used by a group of three scholars Anncharlott Eschmann, (Harman Kulke, and Gaya Charan Tripathi), in their study of the Jagannatha Cult in Orissa. These scholars have put forward a theory that during the medieval period the kings who worship Narasmiha, Balarama, and Devi Sakti, transformed the images of these gods in such a manner that they met the descriptions of the folk tribal divinities that were worshiped by the local tribes. In other words the gods of tribals, whom they worshipped, were assimilated ultimately with Krsna, Balarama and Subhadra. These images in imitation of the tribal way were made in wood. This way the tribal through their chiefs were made to understand that the king and they were worshiping the same gods. Without going into the theoretical details of vertical and horizontal Hinduization the king and the priest elevated the tribal gods and the influence of this assimilation extended the political influence of the king or the sovereign.

From our observation and study we can say it for certain that this process of Hinduization must have been a pan- Indian phenomenon working even in early Historical and Proto-historic India. Carol Radeliffe Bolon who took up an iconological study of the so-called Lajja-gauri has similar conclusion to draw, after studying a 107 specimens of Lajja-gauri from 2nd cent. BCE to 6th cen. CE. Bolon opines that it was common to worship mother goddess Earth in the form an earthen part among the megalithic people of Andhra Pradesh and Deccan. This

goddess was assimilated with Gauri the spouse of Siva. And later on into Parvati holding a Siva-liṅga and Ganesa in her hands. M. K. Dhavalikar who studied proto-historic cultures at Inamgaon, and R. C. Dhere who studied Lajja-gauri with the help of folk literature have supplemented evidence in this matter. Carol herself has supported the theory of Harman Kulke and others.

We studied Renuka Mahatmya and related volume on the glory of Mahur where a complete cult of Renuka with a tribal form of worship (offerings of flesh and wine) including the tribal dance of Maria Gonds is found. It existed sometime in the 9th cen. CE and prospered through the Yadava, Sultanate and the Maratha period. In this case the mother ancestors of the Gonds is identified with Renuka mother of Sage Parasurama. This cult influenced the adjoining mother goddess cult in the regions of Andhra, Karnataka, and Maharashtra. In the case with Khandoba a god of shepherd community (Dhangaras) of Maharashtra. Many scholars feel that the cults associated with Vithoba, Tirupati, Tulja Bhavani are similar cases. The above short survey of the nomadic and Tribal communities like Mundas, Santhals, Gonds and also Dhangars indicates that when they came in contact with the surrounding urban Hindu society, they assimilated the latter's religious customs, myths and eventually became urban. When we take into consideration this phenomenon we can understand the process of Indianisation of the South East Asian and far Eastern countries through the spread of Buddhism and Hinduism.

VI

Kal Jaspers, a Germen philosopher put forth a novel idea through the concept of the axial age, which according to him transformed the religious thought of then civilized world during 1000 BCE to 200 CE. He says that Judaism and Christianity of West Asia Zoroastrianism of Early Iran, Taoism of China and the Upanishadic of Vedic Aryans as also Jainism and Buddhism are representatives of this new religious thought and movement. It is not here to discuss the above mentioned religious traditions and how they became human centric as proclaimed by the philosopher. We can try to understand how the three Indian religious traditions can be said to be human centric. Just to recapitulate, these traditions believe i) in the doctrine of karma, ii) in the ephemeral character

of the worldly and human life, iii) belief, therefore, in the observance five vows viz., a abstinence from 1) violence, 2) falsehood, 3) thievery, 4) promiscuity, and 5) possession. One of the most important features of the karma doctrine is that all these traditions believe in being born again and again because of one's bad and good acts. With the bad ones, one is born in the hell and with the good in heavens. But these states/ lives in the heaven and the hell are not long lasting; like the human life it has got an end. By practising the five vows and controlling one's body and mind that are attracted to carnal pleasures one can know one's own true nature. One gets enlightened and can no more be affected by misery and sorrow of life if one stops one's rebirths one is liberated. Moreover such a human being is superior even to the gods. Man's transience of the powerful forces in nature makes him superior to the god in pure acts and behaviour.

●●●

INDIC KNOWLEDGE SYSTEM – ITS INFLUENCE ABROAD WITH FOCUS ON GERMANY

Maria Wirth[1]

Abstract

Macaulay's English education system had, since 1835, cut off Indians from their traditional knowledge, dismissing it as worthless. Yet, at the same time and even earlier, tons of ancient manuscripts were insidiously shipped from Bharat to the West. When Germans became aware of Indian knowledge in the 18th century, they were extremely keen on it. Sanskrit departments were established and unbelievable scientific progress happened. The German early philosophers and scientists praised Indian knowledge, including the claim that pure consciousness (Brahma) is fundamental and the essence in everything. Even till the 1990s, 'Indian wisdom' and 'self-realisation' were the buzzwords among western students. Yet in recent times, the term 'Indian wisdom' has all but disappeared. Instead, dismantling of Hinduism is being demanded. What happened in between? Is the knowledge that Atma is one with Brahma endanger, those who want to control humanity? Is there an attempt to make humans into rootless robots who are not aware of their immortal, divine essence?

Keywords: Indian philosophy, Indian knowledge, German scientists, Atma, Brahm, Upanishad, quantum mechanics.

It's a great misfortune that Indian students have been kept ignorant about

1. Ms Maria Wirth, a German, is a trained psychologist of Hamburg University. After her encounter with (darshan of) Devaraha Baba almost 38 years ago she abandoned her plan of going to Australia for research. She has continued to live in India ever since though she is not an Indian citizen yet. She has dived deep into India's spiritual tradition, sharing her insights with German readers through articles and books. She started educating Indians and the world about the unique value of Indian tradition through her blog in English language. Her recent book *Thank You India – A German Woman's Journey to the Wisdom of Yoga* has been received very well.

the immense contribution of their ancestors to human civilization. It was in the interest of the British of course, to give the impression that every worth while knowledge was discovered in the West and particularly in Britain, but why was this false impression continued after Independence? Were those who took over the reins from the British in education themselves so ignorant that they believed that Bharat had nothing worthwhile given to the world? Or was there an agenda at work to actively suppress this contribution, given the fact that several of the education ministers after Independence were non-Hindus who had no interest in lauding the contribution of the ancient Indians, who were Hindus.

I once asked a woman with a college education if she knew who invented the decimal system. She didn't know. I also didn't know for long. I was taught in a German school that it was 'Arabic'. The vital information that it had come from Bharat via Arabia to the West had been omitted. I once helped a 4thclass student in 2014, in understanding the questions for his homework. He was in an English medium school and nobody in the family spoke English. He had to fill into 5 little boxes the letters of "the greatest scientist" or "the capital of England". In the first case the correct answer was NEWTON, and in the second case it was LONDON.

It seemed the Indian educators had just copied books for British students. If so how would Indians know about their own people? Yet fortunately, and mainly thanks to the internet, the situation is slowly improving - on one hand. For example, the Manchester University recognised meanwhile that the three laws of motion proposed by Newton, were first mentioned in India. On the other hand, the same internet pushes the usual agenda of downplaying the contribution of Bharat and even worse, to malign and attack Sanatana or Hindu Dharma.

It seems, as if India is non-existent for Google or Wikipedia, when it comes to the contribution of ancient cultures. Mesopotamia will be mentioned, also Greece, Egypt, the cultures of South America like Maya, Aztec and Inca. It seems the only contribution, Bharat is credited with, "Zero". And those who acknowledge this may hope that people misunderstand. "Nothing-zero, no contribution at all." When one googles "greatest philosophers of all time", there is not a single Indian philosopher mentioned among the 50 persons listed. Neither Vashishta of *Yoga Vashishta* fame, nor Patanjali, nor Adi Shankara, nor Abhinav Gupta, nor Sri Aurobindo. There would be so many more worth mentioning. Seven of those mentioned in Google are from ancient Greece, two from ancient China, one from Islam and the rest modern Western philosophers. The heavy bias of Google and Wikipedia needs to be red flagged, since those websites are the

source for information for the majority of internet users.

Even Chat GPT has a bias and doesn't easily acknowledge the Indian contribution. I tested it a few times and only by being persistent and becoming more specific in formulating the questions, Chat GPT acknowledged for example that Indian knowledge did influence Erwin Schroedinger. It says:

> "Erwin Schrödinger, one of the founders of quantum mechanics, was indeed interested in Eastern philosophy, including the Upanishads. In his 1925 paper titled "Quantum Theory and the Structure of Matter," Schrödinger introduced the Schrödinger equation, which is a fundamental equation in quantum mechanics. Schrödinger, in the introduction to this paper, acknowledged the influence of Eastern thought, particularly the Upanishads, on his thinking.
>
> He wrote, "This life of yours which you are living is not merely a piece of this entire existence, but in a certain sense the whole; only this whole is not so constituted that it can be surveyed in one single glance. This, as we know, is what the Brahmins [wise men or priests in ancient India] express in that sacred, mystic formula that is yet really so simple and so clear: 'tat tvam asi,' this is you. Or again, in such words as 'I am in the east and the west, I am above and below, I am this entire world.'"
>
> Schrödinger's interest in Eastern philosophy, particularly Vedanta and the Upanishads, influenced his philosophical and metaphysical thinking about the nature of reality and consciousness, although it's important to note that his contributions to quantum mechanics themselves were formulated within the framework of modern physics and mathematics.
>
> While Schrödinger's engagement with Eastern philosophy is notable, it's also essential to recognize that the philosophical and metaphysical aspects of his work were distinct from the mathematical and scientific aspects of quantum mechanics. His acknowledgement of Eastern thought in his writings reflects his personal philosophical interests but does not imply that the Upanishads directly influenced the mathematical formalism of quantum mechanics."

It can be noticed that ChatGPT downplayed the Indian contribution to only 'philosophy' and not to hard science. One surely would wonder, why the British shipped tons of ancient manuscript to Britain which reached other countries, too. Oxford University library acknowledges that it has some 8000 ancient Indian manuscripts in its possession. This is only one university. Did all these manuscripts talk only about philosophy? Unlikely. For example, Baudhyana mentioned the "Pythagoras Theorem" much before Pythagoras. Yet even Indian students in all likelihood will credit Pythagoras with its discovery and know nothing about their own genius Baudhyana. Just look at the temples of India. To build these masterworks, maths, geometry, architecture, engineering, etc. were absolutely necessary. In fact, there are ancient buildings, like the Kailash Mandir, where it is highly doubtful that today, we would be able to create something similar. There was however not always an attempt to downplay the Indian contribution especially, philosophy. When the first ancient Indian texts reached Germany, there was great exhilaration.

Indian influence on German philosophers

Germans became interested in Bharat rather late, but when they finally came in touch with ancient Indian manuscripts and their translations, Germans became very interested. A few of them are being mentioned here.

Heinrich Heine, (1797 – 1856), a German author, wrote after listening to lectures on the Upanishads :

> "The Portuguese, Dutch and British have for a long time ferried huge treasures on big ships from India to their home countries. We Germans had to look on. But we will not be left behind. We take their knowledge. Our Sanskrit scholars provide us with this wealth from Bharat right here in Bonn or Munich."

Many German intellectuals became great admirers of India. Those early Germans never went to India. They knew it only from those ancient texts. They knew the profound philosophy of the Upanishads, the *Bhagavad Gita*, the *Ramayana* or *Shakuntala* by Kalidasa. India became for them the land of their dreams, where beautiful people and rich nature were still in harmony, and where the soul, which had gone dry in Europe, found plenty of nourishment.

The philosopher **Arthur Schopenhauer** (1788 – 1860) called Indians "the

most noble and most ancient people", and the Upanishads "the greatest gift of this century". He said, "Reading the Upanishads is comforting in my life and will be comforting when I die." He also wrote: "Our religion (Christianity) will never ever take roots in India... On the contrary, Indian wisdom will stream to Europe and will fundamentally change our knowledge and thinking."

Max Müeller did great harm to Bharat as a young, well-paid employee of the British East India Company. His job was to translate the Vedas, and he was eager to show that the Vedas are worthless and Christianity much superior. Moreover, he proposed without any archaeological evidence the Aryan Invasion Theory, which helped the British to divide and rule.

The older Max Müeller, however, seemed to have realised the depth of the ancient Indian tradition and praised Bharat highly. He said the famous sentences in his lecture in Cambridge: "If I were asked under what sky the human mind has most fully developed some of its choicest gifts, has most deeply pondered on the greatest problems of life, and has found solutions, I should point to India." "If I were asked from which literature, we here in Europe would get the refinement, which we need most to make our life more universal, inclusive and perfect,… I would again point to India."

Many more Germans would deserve to be mentioned:

For example, the historian and philosopher **Gottfried Herder** (1744 – 1803), who took the side of the Hindus in a fictional dialogue with a missionary, in spite (or may be because) he had also studied theology. In his lectures on philosophy, he saw in Bharat the Cradle of Humanity in a Golden Age.

Or the **Schlegel brothers** (born in 1767 and 1772), of whom the elder one established the first printing press in Devanagari in Bonn with the help of the Prussian King.

Or **Herman Hesse** (1877 – 1962), who wanted to visit India but reached only Ceylon, when he fell ill. He wrote "Siddhartha".

Or **Friedrich Nietzsche** (1844 - 1900), who is famous for claiming that "God is dead". Yet even Friedrich Nietzsche praised India's 'religion'. He wrote, "in regard to religion, Europe has not reached the subtleness of thought of the ancient Brahmins".

Graf von Keyserling was one of the first who travelled to Bharat after the

Suez Canal had opened. He wrote a book on yoga, which was a big hit in the 1920s after WW1. He wrote: "It is incredible, how important even short, but regular meditation is for inner growth."

However, one German philosopher, **Georg Wilhelm Friedrich Hegel** (1770 – 1831), considered Indian philosophy without any merit. Not only this. He also claimed that the character of Indians is "cunning and deceitful and that moral and human dignity are missing". He was especially harsh with the Brahmins: "The British say that they only eat and sleep" he wrote. He never was in India, but believed the British oppressors and yet he is praised as one of the greatest philosophers by Indians. Is Hegel preferably taught today, including to Indian students, because he helped in demeaning India?

Imagine the plight of the Church.

The intellectual elite of Germany praised the philosophy of 'heathens', whom the "only true" God, who according to the Church is the Christian God, won't allow into heaven. To keep its flock under control, the Church needed to prevent Indian thought from spreading among the common people and more important, it had to be seen as primitive. The Church was successful in vilifying Hindus and their tradition. Most people associate Bharat and Hinduism even today mainly with "an oppressive caste system and many strange gods". It was also what I had learnt in school about Hinduism.

It's a great irony that many of the Indian texts were looted by missionaries.

Missionaries were in Bharat already before the excitement about India's wisdom gripped the German thinkers. For example, Heinrich Roth (born 1620), a Jesuit, was the first German Sanskrit scholar. He died in Agra in 1668 as head of the Jesuit Residency. A few years earlier, he had visited Germany and Italy. Did he 'donate' Indian texts to the Vatican and German libraries, like the missionary Haeberl did to the Tuebingen University later in 1839? The Dean of Tuebingen University praised the "gift" from Haeberl of 11 volumes of ancient Indian texts, as a "great ornament for the university" but added "Of course our treasure is small compared to what is in the India House in London." This claim by the Dean was made four years after Thomas Macaulay, in 1835, introduced the English school system in India, telling Indian students that their tradition is worthless and half a shelf of English literature is more worth than all their literature. It was an insidious ploy to appropriate and benefit from Indian knowledge and at the same time, cut Indians off from it and make them look down on it.

Already 100 years before 1835, from 1735 to 1737, David Hume, one of the great figures of the European enlightenment, stayed in France in the Jesuit College La Fleche, which had 40,000 volumes in the library at that time, a lot of it from Asia, brought by the Jesuits working there to convert the "natives" to Christianity and at the same time, bring the new, Eastern insights to the West. One surely can assume that Hume was influenced by Indian thought for his opus "A Treatise of Human Nature". Typically, modern western scholars, who researched on Hume, stress that there may have been an influence of Buddhist philosophical traditions on his empiricism. Buddhism, which is not as dogmatic as the Abrahamic religions but nevertheless somewhat dogmatic, seems to be accepted in Western academia but not the vast, least dogmatic Hindu Dharma.

Even more guarded than the knowledge about the Indian influence on Western philosophers is the Indian influence on science. When one googles "greatest scientists of all time", again, not one single Indian name is among the 50 names listed. The old Greeks are there, Archimedes, Pythagoras, but not Baudhyana, from whom Pythagoras in all likelihood copied his theorem. Newton is of course there, but not "the great men on whose shoulders he stood", as he himself had acknowledged, one of them definitely was Kanad from India, whose treatise is there in the Oxford library.

Indian Influence on German scientists

Famous names are among those scientists of the late 1800s till middle 1900s: Einstein, Max Born, Max Planck, Heisenberg, Schroedinger, Weizaecker, Wernher von Braun… These scientists of the early 20th century knew about Indian philosophy and did not hide their knowledge of Vedanta. Schroedinger ended his lectures often with the Upanishadic quote, "Atma is Brahma". But these scientists did not disclose if they got concrete help from ancient manuscripts for 'their discoveries'. Einstein praised Bharat for the invention of Zero. But was this all, what he got from India? In all likelihood, he was not fully honest.

German scientists were very advanced in Germany in the 1930s. How?

Only while researching on this topic, I realised how advanced German scientists suddenly were, and why the Americans were so keen to capture them at the end of the war, including hardcore Nazis. They even tried to out manoeuvre their Russian allies in getting them in 1945. They secretly transferred hundreds of scientists from the Russian to the US sector and from there to the USA together with their families and tons of documents. Not only this, the Americans shipped

100 of the famed German V2 rockets across the ocean.

Russians were not for behind. They also captured Indian documents from Germany. This was revealed almost casually by Professor Dr K S Balasubramanian of the Kuppuswami Sastry Research Institute in Chennai. In an interview with Ashish Dhar (on the net under "Knowledge makes Bharat incredible" minute 47 onwards). Prof Balasubramanian recounts the following incident of what Dr Padma Subramanian, a famous dancer, had told him:

> Dr Padma Subramanian had once a performance in Leningrad in Russia. She also visited the museum. The director showed her some 1000 ancient Indian manuscripts. He told her, that they were captured by the Russians at the end of WW2 from Germany. Among them was a manuscript on missiles, and Russia was able to develop its first Inter Continental Ballistic Missile (ICBM) on the basis of this manuscript. Further, he said, among those manuscripts was also info on cloud piercing to manipulate the weather, which the Russians successfully did before Dr Padma Subramaniam's open-air performance.

Indian Influence

This is a big news and strangely, hardly anyone knows about it. Those Indian manuscripts were still in Germany, when in the 1930s, Heisenberg and Weizaecker worked on nuclear weapons and Wernher von Braun worked on missiles. Incidentally, all three also visited India. Moreover, a Brahmin, Dandibhabatla Vishwanatha Shastry was taken to Germany to help decoding Sanskrit texts on missiles. Einstein, too, was in Germany till 1933. He allegedly warned President Roosevelt that the Germans will soon have the atomic bomb.

Remember in 1903, the Wright brothers managed to fly only for 12 seconds up to only 38 meters high. How come the German air force had fighter jets in the 1930s and missiles which not only bombarded London but some of them also went into space over 80 km high? Further, they built an atomic reactor and worked on an anti-gravity space craft, the famous Nazi Bell. This Nazi Bell resembled in an uncanny way the Rukma Vimana which Shivkar Bapu Talpade had built. It is rumoured, it was secretly taken from Bombay to Germany. Unfortunately, many Indians ridicule the claim that ancient Indians had vimanas, while Germans took it seriously. Shivkar Bapu Talpade studied the Sanskrit texts and flew a remote-controlled machine in 1895 (eight years before the Wright

brothers) for 37 seconds and 457 meter high. Like so many other Indian achievements, this is not in history books. Shivkar Bapu Talpade had a sad life. He didn't get funds and was put into prison for trying to develop a mercury ion engine according to ancient texts. After his release, he worked on the anti-gravity Rukma Vimana. He died at age 57, disillusioned. Praveen Mohan has a YouTube video on him, where he puts the Nazi Bell and the Rukma Vimana side by side. I hope, research is done and credit is given to whom it is due.

Wernher von Braun was among the 1000 German the scientists, who, together with their documents and families, were taken to USA in the operation 'paperclip'. He started the space program of NASA in the 1950s which not only uses mercury ion engines, but also values Sanskrit highly. Yet Talpade was ridiculed and imprisoned by the British. Did NASA independently discover the suitability of mercury or did both get guidance from ancient Indian texts? Would NASA admit it?

Ancient Space Travel

It's surely incredible that "Western science" was suddenly so advanced as to go into space. Incidentally, the Indian Puranas are full of space travels, but vested interests convinced Indians that these are just fairy tales. In the *Srimad Bhagavatam* (book 3, discourse 23), Rishi Kardama, showed his wife Devahuti the whole world from an aerial palace which could fly at will and had all the comforts imaginable. Of course, any normal person would dismiss this as a fairy tale. But we forget that any ordinery person is brainwashed into believing that the present human is the most intelligent of all living beings and even only 10,000 years earlier, man was primitive. This narrative is in all likelihood wrong, and there is a good chance that certain powerful people know that it is wrong and prevent any research, for example in archeology. Otherwise, it is inexplicable, why certain findings are hidden and archeologists outed. Incidentally, in the late 1800s, spacious and comfortable 'airships', far larger than any Boeing today, were built and actually flew across the Atlantic to New York in around 55 hours. They were called Zeppelins, named after their German 'inventor' Count Zeppelin. Did he really invent the technology or did the Germans have manuscripts with concrete inputs, for example which gasses are lighter than air? It may remain a secret.

Great Indian Scientists are Overlooked by the West

During the Colonial Era, the British did not support Indian scientists, as

the example of Talpade showed. And even when Indian scientists discovered pathbreaking innovations like Jagadis Chunder Bose in wireless communication, the credit would be given to Westerners. If one googles “who invented the radio”, and one gets Western names, foremost Macroni. Even today Bose is excluded from Wikipedia. Did Bose have an advantage thanks to ancient manuscripts? Incidentally, Bose is also famous for detecting consciousness in plants. *Manu Smriti*, an ancient Dharmic text, mentions in chapter 1:49 that plants possess internal consciousness and experience pleasure and pain. I was intrigued when I read comments by Heinrich Hertz, who is described as a brilliant German scientist in the field theory of physics. He wrote: "It is impossible to study this wonderful theory without feeling as if the mathematical equations had an independent life and intelligence of their own, as if they were wiser than ourselves, indeed wiser than their discoverer, as if they gave forth more than he put into them." He further said, "We perceive electricity in a thousand places where we had no proof of its existence before. In every flame, in every luminous particle, we see an electric process. Even if a body is not luminous, provided it radiates heat, it is a centre of electric disturbances. Thus, the domain of electricity extends over the whole of nature." This sounds like Indian philosophy. And what he says about mathematics, reminded me of Srinivasan Ramanujan. He received his insights in dreams from a source that indeed was “wiser than ourselves”, from his family deity Namagiri. Incidentally, Hertz said this in 1889 during a lecture *“On the Relations Between Light and Electricity”,* which he delivered of all places in Heidelberg, the hub of Sanskrit learning in Germany.

The early philosophers and scientists, who came in touch with India’s wisdom, had no problem with the postulation of Vedanta that the one Brahman is consciousness. Even in the late 1960s and1970s, Western students learnt in psychology class about experiments with Yogis who had meditated for long and expanded their consciousness. Their extraordinary capabilities were studied, like controlling their physiology, having great strength, not being affected by cold or heat, out of body experiences, materializing things. India became again the dreamland for the youth in the West, and “self-realization”, “enlightenment”, “expanded consciousness” became buzzwords. “India shops” sprang up with books like “Autobiography of a Yogi” by Swami Yogananda. Maharishi Mahesh Yogi and Bhagawan Rajneesh, later called Osho, attracted the youth.

‘Cult Observers’ by the Church

Understandably, the Church didn’t like the fascination of the youth with

India and appointed ‘cult observers’. They warned parents that their children may become mad, if they fall for those Indian gurus. However, this time, the Church could not prevent a massive loss of faith among the youth. The churches became empty. Indian wisdom was in vogue, though ‘Hinduism’ was delinked from it.

At that time, yes, there were many hippies who misunderstood “Indian wisdom” and copied only the long hair and the chillum of the sadhus, and not the wisdom and discipline. But generally, Westerners felt, India had something which was badly lacking in the west. It had wisdom about who we are and what is the purpose in life. And it also still had a connection to a magical, supernatural dimension, which we so missed in the west, including snake charmers and rope trick.

In the 1980s, too, Indian wisdom was still acknowledged. The US military also showed interest. The US army intelligence sent a commander to the Bob Monroe Institute to learn about out-of-body experiences and tasked him to find out, if they are useful for the military. The commander wrote a 30-page report in 1983 about the Gateway experience, which was declassified only in 2003. This report makes interesting reading. Yes, he said, it’s useful, especially for intelligence gathering. He also supported the view that the universe is a hologram. He wrote:

> The classic description of the universal hologram is to be found in a Hindu sutra. In the heaven of Indra there is said to be a network of pearls so arranged that if you look at one, you see all the others reflected in it.
>
> I have cited this quotation because it shows that the concept of the universe which at least some physicists are now coming to accept, is identical in its essential aspects with the one known to the learned elite in selected civilisations and cultures of high attainment in the ancient world. The concept of the cosmic egg, for example, is well known to the scholars familiar with the ancient writings of the eastern religions. Remember, he wrote this in 1983, when several Western scientists were open to Indian wisdom that pure consciousness is the one basis for all the manifold appearances.

In 1982, I was asked to write about a conference in Mumbai about the “convergence between eastern wisdom and modern science” for the German

version of Psychology Today. The conference, was organized by the International Transpersonal Association - a new branch of psychology. The flyer of the conference acknowledged that the conference was held in India because Indian wisdom was the inspiration. The concept of Atma is not limited to an individual. It transcends the individual. This "transpersonal self" became central to this new branch of psychology.

Apart from psychologists, many important scientists, delivered their lectures. They included Fritj of Capra, a physicist, Karl Pribram, neurologist, David Bohm, who had worked with Oppenheimer and proposed the holographic theory of the universe, and Rupert Sheldrake, a biologist. Strangely, Indian scientists were missing. Were they worried about their reputation to associate with "new age" ideas, born from Hindu tradition? Only later I realised that the British had been successful to alienate Indians from their tradition and to make it look primitive. How insidious they were, because they very much knew the value and shipped truckloads of manuscripts to the India House in London.

Fritj of Capra presented the new paradigm of Physics in tune with India's wisdom and got a standing ovation: All is interconnected. Nothing is separate. All is one energy. Our senses deceive us. And he added: In all likelihood this energy is conscious. This was fully in tune with the Indian concept of Maya. I was happy that now Indian wisdom would become common knowledge, because science also supports it, and science had been elevated as the top authority. But strangely, now 40 years later, Indian wisdom is much less common knowledge than at that time. Even the term "Indian wisdom" has disappeared.

What could be the Reason?

Is the knowledge, preserved in Bharat, about the truth that the one underlying energy of science is pure CONSCIOUSNESS, meant to be kept secret? Is the goal of life, to discover the truth of our own being, meant to be kept secret? The Rishis say, there is an objective meaning to life. If we live in a make-believe world, in MAYA, and if it is possible to realise the truth, then to realise the truth would naturally be the goal of life and its meaning. Incidentally, in 2001, I got a strange letter from one of my German magazines, telling me "As you must have noticed, spirituality is out. Wellness is in." No, I had not noticed. Was "Indian wisdom" downplayed in the West because a certain revival of Hindu Dharma occurred in Bharat?

Around the same time, when my German magazine declared that

spirituality is out, an important shift occurred in India. Hindus finally realised that Hinduism was preferable to Abrahamic religions, and that it was intentionally shown in poor light to foster those invader religions and weaken India. The "internet Hindu" appeared and was heavily attacked by left 'intellectuals'. Those who had benefitted from the sleeping, ignorant Hindus, tried to obstruct this revival.

The vilification of Hindus and Hinduism got worse. The mainstream media worldwide portrayed Hindus and especially Brahmins wrongly as oppressors of minorities, when it is the other way round. At present, Hinduphobia has reached a dangerous level. Imagine, even conferences on "Dismantling Global Hindutva" and "eradicating Hinduism" were organised. Why is Indian wisdom so badly under attack, when it is so precious for all humanity? Is it directed from somewhere? Is it a danger for Christianity? Yes, it surely is. But even without this danger, people are leaving the Church in big numbers. So, who is interested, that Vedanta philosophy, which was acknowledged by Western scientists in 1982 in Mumbai does not become common knowledge?

There may be two reasons, if not more:

ONE, the big powers want to prevent Bharat from coming up. They may be afraid, that if Indians become interested in their ancient heritage, they may discover new technologies and overtake the powers that be. Why did several top Indian scientists die an unnatural death, starting with Homi Bhabha, or were so badly defamed that they had to stop working, like Nambi Narayanan?

It is claimed that 9 million texts were burnt in Nalanda alone by the invader Bakhtiyar Khilji. A mind-numbing amount of knowledge was lost in 1202 CE. Yet even today, after all the destruction and loot by Muslims, the British and others, there are still around millions of texts in Bharat, and only 5 percent have been studied, says Bibek Debroy. As Sanskrit is easier for Indians than for Westerners, and the interest in Sanskrit is on the upswing, it may worry those who so far used, but didn't acknowledge ancient Indian knowledge. Also, it's easier for Indians to understand pure (contentless) consciousness.

TWO: Hindu Dharma claims that beyond body and mind there is a conscious Essence (Atma or Sat-Chit-Ananda) and it shows ways how to establish a connection and ultimately merge with one's Atma, which is one with the great, all-encompassing Brahman. The goal of life is to realise this pure, thought-free Essence, which alone is really true. All else is more like a virtual reality. And

there are still Yogis and Sadhus in India, who have transcended this 'virtual reality' and realised their oneness with Brahman**.**

Yet it seems, this knowledge about one's Divinity and about how to realise it, is seen as dangerous by certain powerful lobbies, who want to control humans. The Israeli historian and philosopher Yuval Noah Harari, who is a prominent figure at the World Economic Forum (WEF), considers belief in God and a soul ridiculous. He said in all earnestness that the 4th Industrial Revolution is about producing bodies and minds and claimed in all earnestness that "Consciousness is not needed. Intelligence is needed," and that humans are 'hackable animals'. He suggested, that 'all the useless people' (who get replaced by robots) be kept busy with computer games and drugs. It means, they want not only mechanical robots, but also human robots, disconnected from their divine roots. It is surely ominous that attempts are on to get us interested in 'living in a metaverse', which is basically a virtual reality within this world which is also Maya. It removes us one layer further from realizing the truth, which is according to the Indian Rishis the goal of life.

Officially, science, 40 years after the Mumbai conference, still has not come to a conclusion if the energy of physics is conscious. Of course, science cannot prove it. But, it also cannot disprove it. So why is the theory, that the base of everything is consciousness, called fringe? And why is the theory, that the brain is the real thing and consciousness a kind of secretion from the brain, made to look respectable? Does it make sense that there is a vast, miraculous universe which is not aware that it is? Only a few humans on earth know about it? And they, too, lose consciousness after a few years for good and for ever?

Here the role of Bharat as Jagadguru comes in. In this context, the spread of the Indic knowledge system plays an important role. Naturally, the study must not only be intellectual. It needs to be backed up by sadhana. Only when a sincere attempt is made to get in touch with one's true Essence, worthwhile inspiration and knowledge can flow into the mind and intellect. This true Essence is always present and waiting for our attention. Getting in touch with it, greatly improves the quality of our life. That's guaranteed.

References:

- Quotes from German philosophers taken from "Sehnsucht nachIndien", compiled by Veena Kade Luthra, Verlag C.H. Beck, Munich
- Missionary Haeberlin 'gifted' Indian texts to Tuebingen University in 1839 link: file:///C:/Users/ASUS/Documents/old/Documents/Tuebingen%20Ind%20Handschriften.html
- 4 min video on knowledge from Bharat to Germany to USA on Indian influence https://www.youtube.com/watch?v=KsiDjZKhFSE
- on paperclip operation from minute 24: https://odysee.com/@Honkler:62/Adolf-Hitler---The-Greatest-Story-Never-Told---part6:f?lid=0796a541028dd982076c92c19a6126555ca2cb04
- Hitler invited Dandibhatla to decode ancient Sanskrit texts https://www.sanskritimagazine.com/history/hitler-invited-dandibhatla-viswanatha-sastry-to-decode-vedas-build-missiles-and-weapons/?amp=1&fbclid=IwAR1fk06HHwevYuY3VrFVpHSxEDzgF--v68-frywIEAROlZ5RwuG4NCOiRjU
- Could David Hume Have Known about Buddhism? Link: https://www.sjsu.edu/people/anand.vaidya/courses/comparativephilosophy/s1/Could-Hume-have-known-about-Buddhism-by-A.-Gopnik.pdf
- Video by Praveen Mohan on Shivkar Bapu Talpade https://www.youtube.com/watch?v=UNt_Ye51WDk
- In 2003 declassified document on analysis of the Gateway experience (out of body experience) https://www.cia.gov/readingroom/docs/CIA-RDP96-00788R001700210016-5.pdf
- Interview with Yuval Noah Harari: Will technology make us immortal: https://www.google.com/search?q=yuval+harari+on+immortality&rlz=1C1UEAD_enIN958IN958&oq=yuval+harari%2C+on+immoprtatlity&aqs=chrome.1.69i57j33i10i160l2.14648j0j7&sourceid=chrome&ie=UTF-8#fpstate=ive&vld=cid:8f99a93c,vid:XyqNhfjxcUc,st:169

●●●

ENVIRONMENT IN HINDU CONSCIOUSNESS

Susheel Kumar Sharma[1]

Abstract

The article is divided into four sections: Section one deliberates on Hindu consciousness; Section II deals with Hindus' philosophical take on environment; and Section III deals with the Hindus' treatment of the earth. Section IV, the conclusion, analyses the causes of environmental degradation and suggests a way out. The Vedic rishis (philosophers) hold that everything (irrespective of being living or non-living) is a manifestation of Brahma. In the later period, several texts like Smritis and Puranas were created to enable a person and society evolve a code of conduct for themselves in which due respect is shown to the non-human forms of life. The article focuses mainly on the philosophical background to environment in the Hindu consciousness. It also exemplifies the arguments with reference to the earth to indicate how a Hindu treats the so-called inanimate object like a planet respectfully by keeping a focus on the Vedantic ideas like non-duality, vyashti (an individual/ part) and smashti (the world/ whole), and purush (self) and prakrti (the manifest world). A frequent reference is made to the philosophical texts, ritualistic texts and current social and individual practices to indicate the continuity of the Vedantic tradition and its manifestation in one's daily routine.

Keywords: *Bhagavad-Gita, Brahman, earth, environment, Hindu, panch-mahabhoota, Purana, Samashti, Sanatana dharma, Upanishada, Veda, Vyashti.*

Understanding Hindu Consciousness

The term 'Hindu' is used for the people of India and, like many other words, it has several connotations viz. geographical, ethnic, cultural and religious. Hind and Hindu (as mispronunciation) for Sindh and Sindhu respectively by the

1. ORCid: 0000-0002-2220-072X, Professor of English & Head, Dept. of English & Modern European Languages, University of Allahabad, Prayagraj – 211002, UP, Mob./WhatsAp: 09450868483, Email: sksharma@allduniv.ac.in

Arabic and the Persian scholars and invaders for the river Indus and the people around the river hint at the geographical and demographic identity. In the *Book of Esther*[2] (1:1 and 8:9) the term 'Hodu' appears for India. Around 4th Century B.C.E., in Megasthenes' *Indica,* the term figures as a geographic name for Indians and India. Whether the term was used in the sense of territorial identity only by the foreigners is disputed by many scholars. For example, Ramdhari Singh 'Dinkar' quotes a verse of *Brihaspati Agam* to hint at the provincial definition of Hindu[3] in an Indian source. In his *Discovery of India,* Jawaharlal Nehru writes that the term refers to the ethnicity of the people:

> The first reference to [the word 'Hindu'] in an Indian book is, I am told, in a Tantrik work of the eighth century AC, where 'Hindu' means a people and not the followers of a particular religion. … the word is a very old one, as it occurs in the Avesta[4] and in old Persian. …The word is clearly derived from Sindhu, the old, as well as the present, Indian name for the Indus.[5]

> Nehru also refers to the Chinese tradition of the term: "The famous Chinese pilgrim I-tsing, who came to India in the seventh century AC, writes in his record of travels that the 'northern tribes', that is the people of Central Asia, called India 'Hindu' (Hsin-tu) but, he adds, 'this is not at all a common name …. and the most suitable name for India is the Noble Land (Aryadesha)."[6]

For a foreigner, the regional positioning is of a primary concern but not so for the native. So, the word has a cultural connotation when it is used as the second morpheme of the word VIBHINDU by Rishi Medhatithi (*Rig Veda*

2. It is a part of the Jewish *Tanakh* (the foundational text of Judaism) and Christian Old Testament.
3. "हिमालयं समारभ्य यावत् इंदु सरोवरम् । तं देवनिर्मितं देशं हिंदुस्थानं प्रचक्षते ॥" *"Himālayaṁ Samārabhya Yāvat Iṁdu Sarovaraṁ. Taṁ Devanirmitaṁ Deśaṁ Hinduśthānaṁ Prachakṣate"* Dinkar, Ramdhari Singh *Sanskriti Ke Char Adhyay*. Hindi. Patna: Udyachal, 1962, p. 94. Its English rendering is: Spreading from the great Himalayas in the north to the majestic Indu *Sarovaram* (Indian Ocean) in the south is the sacred land of *Hindusthanam* (India)
4. Sometime between c. 1500-1000 BCE.
5. Nehru, Jawaharlal. *The Discovery of India*, Introduction by Khilnani, Sunil, New Delhi: Penguin Books, 2010. Np.
6. Ibid.

8.2.41)[7], Rishi Kutsa (*Rig Veda* 1.103.3)[8] and Rishi Kakshivan (*Rig Veda* 1.116.20)[9]. The fourth connotation is mentioned by Yule and Burnell[10]when they define the term as: "A person of Indian religion and race."(*Hobson-Jobson* 415) They also cite a few references from different Arabic and Persian sources to give a glimpse of changing shades of meaning over a period of some centuries. Amir Khosru (c. 1290) is quoted[11] by them to indicate that the word was being used in the religious sense by 13th century. In his Preface Nathaniel Halhed[12], the translator, explains that the terms 'Hindustan' and 'Hindoo' are not the terms by which the inhabitants originally called themselves or their religion. It was only since the era of Tartars (Muslims) the name Hindus came into use to distinguish them from the Muslim conquerors. (Halhed xxii) John Hawley repeats Halhed

7. *शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत् । अष्टा परः सहस्रा ॥ śikṣā vibhindo asmai catvāry ayutā dadat | aṣṭā paraḥ sahasrā* || "Liberal Vibhindu, you have given to me four times ten thousand, and afterwards eight thousand." www.wisdomlib.org/hinduism/book/rig-veda-english-translation/d/doc835542.html

8. *स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः । विद्वान्वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥ sa jātūbharmā śraddadhāna ojaḥ puro vibhindann acarad vi dāsīḥ | vidvān vajrin dasyave hetim asyāryaṃ saho vardhayā dyumnam indra* ||"Armed with the thunderbolt, and confident in his strength, he has gone on destroying the cities of the Dasyus. Thunderer, acknowledging (the praises of your worshipper) cast, for his sake, your shaft agains the Dasyu, and augment the strength and glory of the Ārya." www.wisdomlib.org/hinduism/book/rig-veda-english-translation/d/doc830099.html

9. *परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः । विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ॥ pariviṣṭaṃ jahuṣaṃ viśvataḥ siṃ sugebhir naktam uhathu rajobhiḥ | vibhinduna nasatya rathena vi parvataṁ ajarayu ayatam* || "Undecaying Nasatyas, you bore away by night, in your foe-overwhelming car, Jahuṣa, surrounded on every side by (enemies), through practicable roads, and went to (inaccessible) mountains." www.wisdomlib.org/hinduism/book/rig-veda-english-translation/d/doc830272.html

10. Yule, Henry and A C Burnell. *Hobson-Jobson: A Glossary of Colloquial Anglo-Indian Words and Phrases and of Kindred Terms, Etymological, Historical, Geographical and Discursive.* New Edition; London: John Murray, 1903. p. 415.

11. "Whatever live Hindu fell into the King's hands was pounded into bits under the feet of elephants. The Musalmans, who were Hindis (country born), had their lives spared." (*Hobson-Jobson* 415)

12. Halhed, Nathaniel Brassey, *A Code of Gentoo Laws or Ordinations of the Pundits from a Persian Translation Made from the Original Written in the Shanscrit Language*. London: Printed in the year MDCCLXXVI. https://archive.org/details/codeofgentoolaws00halh/mode/2up.

when he (Hawley)[13] writes that Hindus also started using the term to distinguish themselves from the outsiders, especially Muslims:

> Even in the 16th century, 500 years after the Muslim conquerors had come, the term Hindu was rarely used - certainly never in Sanskrit or in any even vaguely scriptural document and when it was, its range was such that it would have embraced Buddhists and Jains as well as the people we today would call Hindus. (Hawley 23)

The Indian Constitution does not define of the term "Hindu"[14] though in most of the recruitment forms/ columns for the government posts the term is used to indicate the religious identity as it is bracketed along with religious identities like Christian, Muslim, Jew and Zoroastrian. Even in a popular slogan, "Hindu Muslim Sikh Christian, all are brethren [among themselves][15], the word, Hindu, is being used to denote the follower of a particular sect/ religion in distinction of the rest three. J B S Haldane writes: "[Hinduism] is an attitude toward the universe compatible with a variety of religious and philosophical beliefs."[16] There are also conjectures about the change of the plural nature of this attitude into a singular one by homogenising it for various ends.

For example, Shashi Tharoor contests the idea of a uniform Hindu identity in his several of his speeches, writings and book.[17] John Hawley opines that

13. Hawley, John Stratton "Naming Hinduism", *The Wilson Quarterly* (1976-), Summer, 1991, Vol. 15, No. 3 (Summer 1991), pp. 20-34. www.jstor.org/stable/40258117.

14. There are five references to indicate the limits of the term "Hindu" regarding applicability of the law. One reference is there in the *Constitution of India* where it is "construed as including a reference to persons professing the Sikh, Jaina or Buddhist religion" (25.2.b.Explanation II). The others are there regarding the applicability of The Hindu Marriage Act, 1955 (Clause 2.1.a, b, c), Hindu Adoption and Maintenance Act, 1956 (Clause 2.1.a, b, c), Hindu Minority and Guardianship Act, 1956 (Clause 3.1.a, b, c) and Hindu Succession Act, 1956 (Clause 2.1.a, b, c) to all Hindus "in any of its forms ordevelopments, including a Virashaiva, a Lingayat or a follower of the Brahmo, Prarthana or Arya Samaj, … Buddhist, Jaina or Sikh … any other person domiciled in the territories to which this Act extends who is not a Muslim, Christian, Parsi or Jew by religion… ." (*Constitution of India:* 13) Government of India, Ministry of Law and Justice. *Constitution of India,* 2020, https://legislative.gov.in/constitution-of-india.

15. *हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई, आपस में सब भाई-भाई। Hindu Muslim Sikh Isai, Aapas Sab Bhai-Bhai.*

16. Haldane, JBS "An Indian Perspective of Darwin", *The Centennial Review of Arts & Science*, Fall 1959, Vol. 3, No. 4, p. 357. //www.jstor.org/stable/23737640.

17 Tharoor, Shashi. Why I am a Hindu. Brunswick: Scribe Publications, 2018.

"Hinduism - the word, and perhaps the reality too - was born in the 19th century, a notoriously illegitimate child. The father was middle-class and British, and the mother, of course, was India."[18]

The above discussion implies that the word 'Hindu' gives many identities to the land and its people based on collective, demographic, geographical and behavioural characteristics. Nonetheless, the word "Hindu" is largely considered to be an exonym and an umbrella term[19]. The Hindus, however, prefer the term *Sanatana Dharma* ("the eternal way") to describe their way of life. In this connection Vidyaniwas Mishra writes: It is true that in the ancient texts only the word Dharma has been used, with certain adjectives as prefixes like *Manava Dharma, Sanatana Dharma,* and *Arya Dharma*. Buddhists have used *Arya Dharma* and *Sad-Dharma* in relation to *Ashtangic Marg* (Eight-fold path) though most of the scriptures have used only 'Dharma'.[20] He further writes: "Dharma is essentially a way of leading one's entire life."[21]

Hinduism (*Sanatana Dharma*) defies all the narrow traditional features of any religion or creed. Haldane, therefore, writes: "Hinduism is not a religion as this term is understood by the adherents of proselytizing religions."[22] It has been accepted as the oldest surviving religion in the world, which unlike Abrahamic faith systems, has multiple books, prophets (*avatar*), gods, prayers and prayer rituals, rites or performances, images (*vigraha*) for worship and reverence,

---

18 Hawley, John Stratton. "Naming Hinduism", The Wilson Quarterly, Summer, 1991, Vol. 15, No. 3 (Summer, 1991), pp. 20-34. www.jstor.org/stable/40258117.

19. "The very word Hinduism is misleading. The word was coined by the British as an umbrella term, referring to any and all forms of religion in India, many of which share few if any common features. It was used to describe all sorts of beliefs and practices, from simple nature worship to the most highly sophisticated ritual and philosophical systems. Hinduism is a vast religious tradition, encompassing various and contradictory strands and ideas. It has usually defied all the usual strategies for categorization and classification. There is no founder, no definitive scripture, no centralized authority, no single supreme god, no creed of essential beliefs, and no heresy. Thus, it would be more accurate to think of the religion as Hinduisms rather than Hinduism, since this would reflect the rich diversity one encounters." Lochtefeld, James G. *The Illustrated Encyclopedia of Hinduism*, New York: The Rosen Publishing Group, Inc., 2002, p. vii.

20. Mishra, Vidyaniwas "Hindu Dharma: samanya lakshan", *Hindu Dharma: Jeevan mein sanatan ki khoj* (Hindi). Bikaner, Vagdevi Prakashan, 2016, p. 25.

21. Mishra, Vidyaniwas Ibid.

22. JBS Haldane, "An Indian Perspective of Darwin", p. 357.

philosophical concepts, paths to liberation (*Moksha*) and the like. The faith has survived, developed and prospered in the Indian subcontinent despite several waves of insults, deprivations, threats, torments, oppressions and slaughters both by the internal and foreign aggressions in its history of several thousand years. The Supreme Court of India has repeatedly observed: "When we think of the Hindu religion, we find it difficult, if not impossible, to define Hindu religion or even adequately describe it. … It may broadly be described as a way of life and nothing more."(1966 AIR 1119, 1976 (Sup) SCR 478, 1995 AIR 2089, 1996 AIR 1113) However, the former Vice President of India, Mohammad Hamid Ansari, has questioned this by rhetorically asking: "Which religion is not a way of life? Is Judaism not a way of life? Is Islam not a way of life? Is Christianity not a way of life? Is Buddhism not a way of life?"[23]In the same interview, he further says, "Afterall, Judges are very eminent people but they are not infallible."[24]David Frawley too disagrees with the opinion of the Supreme Court and maintains that to describe Hinduism as "a way of life"[25] is not only fallacious but also demeaning. He describes it as a way to live in harmony with the entire cosmos; it is a name of a behaviour and a *Sadhana*; it is the quest of self and not some external faith.[26](Frawley) Likewise, Maria Wirth writes: "Hinduism is an ideal way of life which is helpful in realising one' ONENESS with the Supreme Being. This ideal way of life is not based on a dogmatic belief system, but on experiential wisdom."[27] (Wirth) Haldane calls Hinduism an attitude (see supra). Vidyaniwas Mishra put it differently when says: "Hindu dharma propels one to live in the

23. Chopra, Aman "Hamid Ansari Exclusive Interview: Former VP Hamid Ansari *का धर्मनिरपेक्ष साक्षात्कार*", Zee News, Jan 30, 2021, www.youtube.com/watch?v=7uU6xzuntoE.
24. Ibid.
25. "Hinduism is first and foremost a way of life. This means that Hinduism has tended to be orthoprax (stressing correct behavior) rather than orthodox (stressing correct belief). It tends to be woven through the differing elements of everyday life, rather than only performed as practices or rituals for certain days and times. Hindu religious expression is conveyed through every facet of society: music, dance, art and architecture, philosophy, politics, literature, and social life." Lochtefeld, James G. *The Illustrated Encyclopedia of Hinduism*. New York: The Rosen Publishing Group, Inc., 2002, p. viii.
26. Frawley, David & Archana Sharma. "Secularism is Means to Control Religion: A Long Conversation", https://epaper.navbharattimes.com/Mumbai/2023-4-1/16/page-10.html.
27. Wirth, Maria. "Is Hinduism a religion or a way of life?". October 16, 2023. https://mariawirth.com/is-hinduism-a-religion-or-a-way-of-life-by-maria-wirth/

present; it is a union of truth and cosmic order/divine law (*rta*)."[28] (Mishra 11) What these three scholars are saying is that Hinduism explores the relationship between *Vyashti* (the particularised thing, *अपरा प्रकृति*) and *Samashti* (the generalised and the abstract universal whole, *परा प्रकृति*). It is, therefore, imperative to identify the parameters to the Hindu ways of life.

The best description of a Hindu way of life is: "a constant engagement to shed one's ignorance and pettiness"[29] (*Shabdakalpadruma* 537). What binds various denominations (like Shaivism, Shaktism, Smartism Vaishnavism, Saurism and others) of the Hindus and different sects of Indian origin (like Buddhism, Jainism, Sikhism, Arya Samaj, Mahima Dharma, Prarthana Samaj and others) together is the acceptance and belief in the following three doctrines: the doctrines of i) action (*Karma*) ii) rebirth (*punarjanm*) and iii) liberation (*Moksha*). To my mind these are also the necessary and sufficient conditions to identify or to describe somebody as a Hindu. There are three parameters to decide the worthiness of an act (*Karma*). The first one has been suggested by Gandhi very succinctly as: "a relentless pursuit after truth*"* (Gandhi: 1). Secondly, the Hindus believe that every human being is indebted to five sources for his/her existence and survival. Therefore, through his/her actions, a person should strive to repay the five ethical and spiritual debts[30] (*Shatpath Brahmana:* 1.7.2.1-6) in one's life-time. So, each action of a Hindu should be directed towards an effort to repay at least one of the following five debts: indebtedness to the sages (*rishi rin ऋषिऋण*), indebtedness to the ancestors (*pitra rin पितृऋण)*, indebtedness to the deities (*deva rin देवऋण*), indebtedness to humanity (*manushya rin मनुष्यऋण*) and indebtedness to the objects of nature like plants and animals (*bhuta rin भूतऋण*). The third parameter to judge the value and validity of an action is that it should be performed for the fulfilment of at least one of the four proper goals/aims of life (*purusartha पुरुषार्थ)*: righteousness/ moral values (*Dharma धर्म*)[31], prosperity/ economic values (*Artha*

28. "हिन्दू धर्म वर्तमानजीवी धर्म है, वह सत्य और ऋत का गठबन्धन है." Mishra. Vidyaniwas "Bhumika", *Hindu Dharma: Jeevan mein sanatan ki khoj* (Hindi). Bikaner, Vagdevi Prakashan, 2016, p. 11.

29. *"हीनं दुष्यति इति हिन्दू" hinam dushyati iti hindu*

30. ऋणं ह वै जायते योऽस्ति । स जायमान एव देवेभ्य ऋषिभ्यः पितृभ्यो मनुष्येभ्यः| Verily, whoever exists, he, in being born, is born as (owing) a debt to the gods, to the Rishis, to the parents, and to men. (*Shatpath Brahmana:* 1.7.2.1)

31. *धारयति इति धर्मः Dharayati iti Dharmaha* "That which upholds, sustains and even uplifts is Dharma".

अर्थ), passion/ love/ psychological values (*Kama काम*) and happiness/ spiritual value (*Moksha मोक्ष*). All these four values are independent as well as inter-dependent. Other characteristics like (non) acceptance of the all-pervasive Supreme Being who is both immanent and transcendent, (non) acceptance of the Vedas as a *Pramana* (means of valid authority) in religious and philosophic matters, (non) allegiance to a particular tenet or philosophic concept, (non) practice of multifarious rituals, (non)acceptance of great world rhythm, vast period of creation, maintenance and dissolution that follow each other in endless succession (four *Yugas* viz. *Satyuga, Treta, Dwapar* and *Kaliyuga* followed by *Pralya*) are just the examples of different stages of realization by different sages and spiritual leaders in their quest of truth. Even the evolution of the *Chaturashrama*[32] (four-

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः। हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत। vidvadbhiḥ sevitaḥ sadbhirnityamadveṣarāgibhiḥ |hṛdayenābhyanujñāto yo dharmastaṃ nibodhata || Manusmriti 2.1 || Learn that Dharma, which has been ever followed by, and sanctioned by the heart of, the learned and the good, who are free from love and hate. (*Manusmriti* 2.1) "Vaśiṣṭha, *Dharmaśāstra* 'Dharma is that which is enjoined in Śruti and Smṛti. Jaimini, *Mīmāṃsā-Sūtra*, 1.1.2. 'Dharma is that which is described in the Veda as conducive to good.' Kaṇāda, *Vaiśeṣika-Sūtra*, 1.2.2. 'That is Dharma which brings about prosperity and the highest good.' Āpastamba, *Dharma-Sūtra*, 1.20.7. 'That the doing whereof gentlemen praise is Dharma, and that which they deprecate is Adharma.' Kumārila, *Ślokavārtika*, 2.14. 'The fact of these acts being conducive to good is, in every case, learnt from the Veda; and in this sense are they regarded as Dharma; and for this reason Dharma is not perceptible by the senses.' Viśvāmitra (quoted in *Parāśaramādhava*, p. 80). 'That the doing of which men learned in the scriptures praise is Dharma; that which they deprecate is called Adharma.' Under all these definitions 'Dharma' is the name of the 'meritorious act'; but the term has also been used in the sense of the merit acquired by the doing of the act. Nyāya view (quoted in *Vīramitrodaya-Paribhāṣā*, p. 29). 'Dharma is that quality of man which is brought about by the performance of the enjoined act: Adharma is that quality of man which is brought about by the performance of the forbidden act.' "www.wisdomlib.org/hinduism/book/manusmriti-with-the-commentary-of-medhatithi/d/doc145572.html."

32. *Chaturashrama: Brahmacharya*, *Grihastha*, *Vanaprastha* and *Sannyasa*, *चतुराश्रमः ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास.* The four Ashramas consist of *Brahmacharya* up to 25 years for learning and grooming for life; *Grihastha* from 26 to 50 years for marriage and worldly activities; *Vanaprastha* from 51 to 75 when one retires from active family/social life to be a forest-dweller and devote one's time in religious, philosophical pursuit. In *Sannyasa*, one lives, from 75 till end of one's life, the life of an ascetic, contemplating on supernatural, pure philosophy, accepting whatever is available for sustaining the life. One helps the society in whatever manner possible, giving benefit of long experience and knowledge accumulated during the lifetime.

age-based Monastery System) and the *Chaturvarna*[33] (four order/ class system)is to put the principle of Karma in its proper place effectively. Similarly, different kinds of rituals, surrender to God, sticking to *chaturashrama* and *chaturvarna*, *japa* (prayers) to different deities, and having qualities like contentment (*santosh*), tolerance, annihilation of ego, love of life, flexibility, humility, austerity, charity, rationalism etc are just different types of *karmas* for different occasions and purposes in consonance with the parameters specified above. From this exploration one realizes that nothing is to be wasted rather everything is to be utilised in an optimum manner. From this emerges the tangential characteristic of Hinduism: it is way of living with responsibility and duty, not with authority and rights. It may be reiterated that one's responsibility and duty are not confined to only human world but include all the objects in the cosmos. Similarly, authority and rights of the human beings neither override nor interfere with the rights of the other objects in the cosmos. Griswold[34] has pointed out the following six characteristics of a Hindu:

1. Hinduism has always had the general animistic or pantheistic tendency to deify whatever is.
2. A second general characteristic of Hinduism is the tendency to syncretism.
3. A third characteristic of Hinduism is the contrast which it accepts and justifies between "hieratic" and "popular" religion.
4. A fourth characteristic of Hinduism is the dominance of the religious point of view in all the affairs of life, or the supremacy of the religious consciousness.
5. A fifth characteristic of Hinduism is great reverence for the ideal of renunciation and great capacity for sacrifice.
6. A sixth and last characteristic of Hinduism to be mentioned is the existence in it of aspirations and anticipations still largely unfulfilled and unsatisfied." (Griswold)

33. *Chaturvarna: Brahmana, Kshatriya, Vaishya and Shudra*, *चतुर्वर्ण: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र*
34. Griswold. Hervey D. "Some Characteristics of Hinduism as a Religion".*The Biblical World*, Sep., 1912, Vol. 40, No. 3 (Sep., 1912), pp. 163-172. www.jstor.org/stable/3141428.

However, Christians [35] consider Hindus to be heathens and Moslems consider them to be infidels (*kafirs*)[36]; both Christians and Moslems[37] believe that Hindus shall be burning in the fire of Hell because of their faith. Therefore, both the groups, perhaps out of compassion or because of divine proclamation[38], make efforts to convert Hindus to their fold. The church "deceives, threatens and lures people away from their tolerant, inclusive tradition into an arrogant, divisive mindset. Some followers of Islam … kill [the nonbelievers]."[39] Both these groups have therefore turned "arrogant, self-righteous and [are fully] convinced that they are meant to rule the world in the name of their god." (Wirth) They leave no opportunity to demean the Hindus. Here is one example of the arrogance of a Christian: "It is difficult to estimate Hinduism's contribution to the world. ... But perhaps, when all is said, Hinduism's greatest contribution to the religious progress of humanity will prove to be a negative one." (Griswold) That Griswold's opinion is baseless can be proved by discussing the Hindu take on the environmental issues, a crisis that has endangered the very existence of the mankind and the planet earth.

In the Hindu consciousness there is no duality in environment and man. Man is not the master of nature/ environment rather he is a part of it; they both survive and thrive because of each other just like the mother and baby do. The Hindu way of life stands on the pillars of "reduce, reuse, and recycle". A Hindu is also told to take only that much from Nature as will be sufficient for one's needs. Taking more than required is put under the category of greed. Hindus are also taught not to waste food and other things; it has been ingrained in their consciousness. Therefore, a Hindu does not believe in the concept of use and throw wastefully. For example, a Hindu will not discard even the worn-out tooth brush. Once its bristles are distorted or spoiled, he is supposed to make some alternate use of it according his needs. I, for example, use it as an instrument for drawing the string (*nada*) in my pyjamas or shorts. Naturally this sort of frugality helps in protecting and saving the environment in several ways.

35. Matthew 13: 49-50.
36. *Quran* 22:19-22.
37. *Quran* 4:51-56, 9:74.
38. Matthew 28:19-20, Quran 9.5.
39. Wirth, Maria "Of Course, Hindus Won't Be Thrown Into Hell". February 18, 2018. www.hvk.org/2018/0218/89.html

Ecology in Hindu Philosophical Texts

The foundational texts of Hinduism, the Vedic literature, provide glimpses of environmental protection, ecological balance, weather cycles, hydrologic cycle, rainfall phenomena and related subjects through hymns and rituals. In the *Atharvaveda,* words such as *Vritavrita (वृतावृंता)*[40]*, Abhivāraḥ (अभिऽवार)*[41]*, Āvṛtāḥ (आऽवृंता)*[42]*, Parivṛtā(परिऽवृता)*[43] have been used for environment[44] (*Paryāvaraṇa, पर्यावरण*). The Abrahamic hierarchical dualism concerning humans and the environment is not there in the Hindu texts. For example, it has been proclaimed that all the entities proceed forth from Brahma and return to the same[45]. This idea has been explained using a simile of fire and sparks in the *Mundaka Upanishada*: "This is true; as from the flaming fire issue forth, by thousands, sparks of the same form, so from the immortal proceed, good youth, diverse *jivas* and they find their way back into it." (2.1.1)[46] The *Rig Veda,* the oldest of the Vedas, contains several verses that highlight the interconnectedness of humans and nature. This connectedness operates at two levels. First, since all creatures and plants are the manifestations of Brahma/ God himself, there is a filial tie amongst all; the metaphor of river and sea is used to explain this relationship in the *Chhandogya*

40. *Atharvaveda*, 12.1.52
41. Ibid, 1.32.4.
42. Ibid, 10.1.30
43. Ibid, 10.8.31
44. The Environment (Protection) Act, 1986 defines the environment as follows: "Environment includes water, air and land and the inter-relationship which exists among and between water, air and land, and human beings, other living creatures, plants, micro-organism and property." (The Environment (Protection) Act, 1986 (Act No.29 of 1986), Chapter I, 2 (a)) From the above definition, it is apparent that environment consists of two components namely living organisms (biotic) and non-living materials (abiotic) factors.
45. It is very explicit in following pronouncements of Lord Krishna: "Earth, water, fire, air, space, mind, intellect, and ego—these are eight components of My material energy." (*Bhagavad Gita* 7.4:) and "I am the source of the entire creation, and into Me it again dissolves." (*Bhagavad Gita* 7.6). www.holy-bhagavad-gita.org/chapter/7/verse/4.
46. *तदेतत्सत्यंयथासुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाःसहस्रशःप्रभवन्तेसरूपाः। तथाक्षराद्विविधाःसोम्यभावाःप्रजायन्तेतत्रचैवापियन्ति॥१॥* tadetatsatyaṃ yatha sudiptatpavakadvisphuliṅgaḥ sahasraśaḥ prabhavante sarupaḥ |tathakṣaradvividhaḥ somya bhavaḥ prajayante tatra caivapi yanti || 1 || www.wisdomlib.org/hinduism/book/mundaka-upanishad-shankara-bhashya/d/doc145099.html

Upanishad (6.10.1)[47]. Secondly, *Chhandogya Upanishad* (6.10.2)[48] says in very explicit terms that Brahma alone is not responsible for the birth/creation of a particular *jiva* (soul or life form)[49], the individual soul, in a specific body/shape like that of a strong lion or an insect like flea; even their own *karmas*/ actions contribute to it. *Sat*, the pure Existence, thus binds all karmas of a *jiva*/ soul to give it a physical shape. That trees have life on account of a spirit (*jiva*) is made clear in the *Chhandogya Upanishad* (6.11.1-2)[50]. A tree will not die, like a human being, till the spirit/ soul (*jiva*) leaves the tree/body. The conversation between

47. इमाः सोम्या नद्यः पुरस्तात्प्राच्यः स्यान्दन्ते अप्रतीच्यस्ताः समुद्रात् समुद्रमेवापियंति समुद्र एव भवति ता यथा तत्र न विदुरियमहमस्मीयमहमस्मीति॥६.१०.१॥ imāḥ somya nadyaḥ purastātprācyaḥ syandante paścātpratīcyastāḥ samudrātsamudramevāpiyanti sa samudra eva bhavati tā yathā tatra na viduriyamahamasmīyamahamasmīti || 6.10.1 || O Somya, those rivers belonging to the east run to the east, and those belonging to the west run to the west. Rising from the sea, they go back to it and become one with it. Just as, when they reach the sea, they do not know their separate identities—'I am this river,' or 'I am that river.' (*Chhandogya Upanishad* 6.10.2) www.wisdomlib.org/hinduism/book/Chhandogya-upanishad-english/d/doc239309.html

48. एवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सत आगम्य न विदुः सत आगच्छामह इति त इह व्याघ्रो वा सिंहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दँशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदाभवन्ति || *6.10.2* || *llevameva khalu somyemāḥ sarvāḥ prajāḥ sata āgamya na viduḥ sata āgacchāmaha iti ta iha vyāghro vā siṃho vā vṛko vā varāho vā kīṭo vā pataṅgo vā daṃśo vā maśako vā yadyadbhavanti tadābhavanti* || *6.10.2* || In the same way, O Somya, all these beings, having come from Sat [Brahman], never know this. They never think, 'We have come from Sat.' Whatever they were before in this world—whether a tiger or lion or leopard or boar or bug or insect or flea or mosquito—they are born again [according to their karma. They never know that they came from Sat]. (*Chhandogya Upanishad* 6.10.2). www.wisdomlib.org/hinduism/book/Chhandogya-upanishad-english/d/doc239309.html

49. The *jiva* may be the microcosm and the macrocosm simultaneously.

50. अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्यो मध्येऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्योऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेत्स एष जीवेनात्मनानुप्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति॥६.११.१॥अस्य यदेकाँ शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति तृतीयां जहात्यथ सा शुष्यति सर्वं जहाति सर्वः शुष्यत्येवमेव खलु सोम्य विद्धीति होवाच॥६.११२॥ *asya somya mahato vṛkṣasya yo* mūle'bhyāhanyājjīvansravedyo madhye'bhyāhanyājjīvansravedyo'gre'bhyāhanyājjīvansravetsa eṣa jīvenātmanānuprabhūtaḥ pepīyamāno modamānastiṣṭhati || 6.11.1 ||asya yadekāṃ śākhāṃ jīvo jahātyatha sā śuṣyati dvitīyāṃ jahātyatha sā śuṣyati tṛtīyāṃ jahātyatha sā śuṣyati sarvaṃ jahāti sarvaḥ śuṣyati || 6.11.2 ‖1-2. O Somya, if someone strikes at the root of a big tree, it will continue to live, though it may exude some juice. If he strikes at the middle, it will still live, though it may exude some juice. If he strikes at the top of the tree, it will survive, though it may exude some juice. Pervaded by the self, the tree will keep drinking juice and living happily. But if the self leaves a branch of a tree, that branch withers away and dies. If it leaves a second branch, that branch too will die. If it leaves a third branch, that branch also will die. If the self withdraws from the whole tree, then the whole tree will die. www.wisdomlib.org/hinduism/book/Chhandogya-upanishad-english/d/doc239313.html

Gargya and Ajatashartu (*Brihadaranyaka Upanishad* 2.1.1–12)[51] reveals that one may meditate on numerous phenomena (like lightning, shadow) or the objects of nature (like space, air, fire, water, mirror, sound, and directions) which are to be meditated as Brahman. But one has to transcend one's awareness to higher planes of consciousness. The objects of nature here signify the worldly riches. If one meditates upon them only, at some stage their exploitation will take place. On the contrary, if one meditates on Brahma, one's identification with all (*sarvatmabhava*) takes place and the exploitation of nature does not place. So, in the conversation how to conserve nature is also being reflected upon.

The Vedic seers, unlike modern scientists, do not see the earth, fire, cloud, food as independent units but conceive them as dependent elements on one another. For example, in the *Atharvaveda* (18.1.17) the three coverings of our surroundings are referred as *Chandamsi*: "The wise [men] utilize three elements variously which are varied, visible and full of qualities. These are water, air and plants or herbs. They exist in the world from the very beginning. They are called as *Chandamsi* meaning coverings available everywhere."[52] In *Yajurveda* (3:5)[53] the fire element is told to be present in the earth, sky and heaven (cloud). The Vedic literature often portrays nature as sacred and divine. For example, the *Aitareya Upanishad* (3.3)[54] proclaims that the Universe consists of five elements

51. www.wisdomlib.org/hinduism/book/the-brihadaranyaka-upanishad/d/doc117945.html

52. *त्रीणिछन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरूरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्। आपो वाताओषधयस्तान्येकस्मिन्भुर्वन आर्पितानि ॥17॥*

53. *भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेग्निमन्नादमन्नाद्याया दधे ॥ (यजुर्वेद 3:5)* Tr."In expanse as vast as the bright heaven, in virtue as firm and generous as the earth, Agni is ever present on the earth, in the sky and in heaven. Earth Mother, seat of yajna by the devas (noble people and the powers of nature) for the devas (good people and the powers of nature), here on the ground in the vedi on your surface, I place the sacred fire, consumer of the oblations of food, for the sake of food and energy." (*Yajur Veda* 3:5)

54. He is Brahma, he is Indra, he is Prajapati. He is all these gods. He is the five elements, namely the earth, air, ether, water and light, a combination of which forms into seeds of different kinds, the ones born out of eggs, the ones born out of wombs, the ones born from sweat, the ones born from sprouts, horses, cows, people, and elephants, all the creatures that breath here, moving, flying or stationary. All this is led by intelligence. The world is led by intelligence, is established in intelligence. The world is led by intelligence. The support is intelligence. Brahman is intelligence. (*esha brahmaisha indra esha prajapatirete sarve deva imani cha pa~nchamahabhutani prithivi vayurakasha apo jyoti.nshityetanimani cha kshudramishraniva . bijanitarani chetarani chandajani cha jarujani cha svedajani chodbhijjani chashva gavah purusha hastino yatki~nchedam prani ja~ngama.n cha patatri cha yachcha sthavara.n sarva.n tatpraj~nanetram praj~nane pratishthitam praj~nanetro lokah praj~na pratishtha*

representing the states of matter in nature often called the "*Panch Mahabhoot*" (the macrocosm): Earth (*Bhumi*), Water (*Jal*), Light (*Prakash*), Air (*Vayu*) and Ether (*Aakash*). In *Prashna Upanishad* these elements are considered manifestations of one divine energy: "He created Prana; from Prana faith, akasa, air, fire, water, earth, senses, mind and food; and from food, strength, contemplation, mantras, karma and worlds; and in worlds name also." (6.4)[55] The *Rig Veda* venerates deities that are responsible for maintaining the requisite balance in the functioning of all entities of Nature whether the *Bhumi*/ earth (plains including mountains), *Jal/*water (lakes/rivers), *Aakash/*Ether (heaven), *Vayu/*Air, *Prakash/*Light and the *aranya*/ forests. Again, the Hindus believe that God pervades everywhere and in every being: "All of this is Brahma" [56] (*Chhandogya Upanishad* 3.14.1). Lord Krishna in the *Bhagavad Gita* refers to two types of his (Brahma's) energy: the material energy (*prakritiḥ*) which consists of the following eight components: earth, water, fire, air, space, mind, intellect, and ego, and the soul energy (*jiva shakti*) which is manifested in all the living beings. Lord Krishna proclaims very clearly that he is the source of the entire creation, and into him it again dissolves. (*Bhagavad Gita* 7.4-6)

God in the Abrahamic religions is a separate entity from his creations but the Hindus believe both visible and invisible is nothing else but Brahma for it is all a manifestation of Brahma (God): "I am one; let me become many"[57] (*Chhandogya Upanishad* 6.2.3), "Gaining the vision of Enlightenment, perceive the world as Brahman"[58] (*Tejobindu Upanishad* 1.29); "All this that is in front is but Brahman, the Immortal. Brahman is at the back, as also on the right and the left. It is extended above and below, too. This world is nothing but Brahman, the Highest"[59]

praj~nanam brahma .. 3.. Aitareya Upanishad 3.3 www.hinduwebsite.com/aitareya-upanishad-translation.asp)

55. *स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनः अन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्मलोका लोकेषु च नाम च ॥ ४ // sa praṇamasṛjata praṇacchraddhaṃ khaṃ vayurjyotirapaḥ pṛthivindriyaṃ manaḥ annamannadviryaṃ tapo mantraḥ karmaloka lokeṣu ca nama ca || 4 ||* (*Prashna Upanishad* 6.4) *www.wisdomlib.org/hinduism/book/prashna-upanishad-shankara-bhashya/d/doc145343.html*

56. *सर्वं खल्विदं ब्रह्म sarvam khalvidam brahma*

57. *एकोहम बहुस्याम Ekoham bahusyam*

58. *दृष्टिं ज्ञान मयींकृत्वा पश्येद्ब्रह्ममयं जगत् drishtim jñắnamayim kritva pashyed brahmamay jagat*"

59. *ब्रह्मैवेदम् अमृतं पुरस्तात्ब्रह्म पश्चात्ब्रह्मदक्षिणतश्चोत्तरेण।/ अधश्चोर्ध्वंचप्रसृतंब्रह्मैवेदंविश्वमिदंवरिष्ठम् ॥ Brahmeivedam amritam purstat brham pashchat brahm dakshinatashchottaren/ adhschordhavam cha prsartam barhmaeivedam vishvamidam varishtham"*

(*Mundakopanishad* 2.2.12) and "The Mover of the Tree I am; my fame like the mountain' peak. The High One making (me) pure, I am the very Immortal One as He is in the sun; I am the Lustrous Wealth. Of High wisdom (I am), immortal, undecaying." (*Taittiriya Upanishad*1.10)[60] The belief "oneness of all"— "I am the only one, there is none other"[61], a non-anthropocentric concept in *Sanatan Dharma*, is popularly known as the principle of non-dualism[62]. Since there is no "other" for the Hindus, they feel empathy for all living and non-living things; they feel the presence of God in all living beings and all living beings in God[63]. (*Bhagavadgita* 6.29)

In the *Bhagavadgita*, Lord Krishna says that His divine manifestations are endless (10.40) and there is nothing higher than Him (7.7); he describes himself as the uniting force (like a thread as a string of beads) of all the living and non-living things (7.7); he not only permeates them but also sustains the entire creation (10.41). His divine energy Maya, very difficult to overcome, has three states of material existence—goodness, passion, and ignorance (7.12-14). In the book, Lord Krishna lists the positive abstract qualities through which he manifests himself. Almost each one of them is from nature: the taste in water (7.8), the radiance of the sun and the moon (7.8, 10.26), the brilliance in fire (7.9) and the splendour of the glorious (7.10), the pure fragrance of the Earth (7.9), the sound in ether (7.8), the ability in humans (7.8), the penance of the ascetics (7.9), the life-force in all beings (7.9), the intellect of the intelligent (7.10), the strength (devoid of desire and passion) in strong persons (7.11), the eternal seed of all beings (7.10), and sexual activity, not conflicting with virtue or scriptural in junctions, (7.11). In the tenth chapter, he gives a sample of his infinite glories which cover concrete objects like the human beings, various elements of nature like animals, birds, trees and water bodies, various virtues, celestial and non-celestial beings. Lord Krishna describes himself to be the source of all beings and all creation

60. *अहं वृक्षस्य रेरिवा । कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव । ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि ।*

द्रविणं सवर्चसम् । सुमेध अमृतोक्षितः । इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम् ॥ १ //

ahaṃ vṛkṣasya reriva | kirtiḥ pṛṣṭhaṃ gireriva | urdhvapavitro vajiniva svamṛtamasmi | draviṇaṃ savarcasam | sumedha amṛtokṣitaḥ | iti triśaṅkorvedanuvacanam || 1 || (Taittiriya Upanishad 1.10*) www.wisdomlib.org/hinduism/book/the-taittiriya-upanishad/d/doc79787.html*

61. *एकोहं द्वितीयो नास्ति Ekoham dwitiyo nasti*

62. *अद्वैतवाद Advaitvad*

63. *आत्मानं सर्व भूतानि atmanam sarva bhutani*

(*Bhagavadgita* 10.8, 10.20, 10.31); a sun amongst the luminous objects, Marichi amongst the maruts, and the moon amongst the stars at night (10.26); Shankar among Rudras, Kuber amongst the semi-celestial beings and demons, Agni amongst the *vasus*, Meru amongst the mountains (10.23); the ocean amongst reservoirs of water (10.24); the sacred sound Om amongst sounds and syllable amongst Vedic mantras (7.8 & 10.24), the Himalayas amongst immovable things (10.24); the peepal tree (sacred fig tree) amongst trees, Narad among the celestial sages, Chitrath amongst the gandharvas, Kapil amongst the siddhas (10.26); Ucchaihshrava amongst the horses, Airavata amongst the elephants (10.27); the Vajra (thunderbolt) amongst weapons. Kamadhenu amongst the cows, Kaamdev, (the god of love) amongst all causes for procreation, Vasuki amongst serpents (10.28); Anant amongst the snakes, Varun amongst the aquatics, Aryama amongst the departed ancestors, Yamraj (the lord of death) amongst dispensers of law (10.29); the lion amongst animals, Garud amongst the birds (10.30); the wind amongst the purifiers, a crocodile among the water creatures, the Ganges amongst the flowing rivers (10.30); the beginning "A" amongst all letters, the dual word in grammatical compounds, the endless Time, and Brahma amongst creators (10.31); fame, prosperity, fine speech, memory, intelligence, courage, and forgiveness amongst feminine qualities (10.34); spring among seasons (10.35); the splendour of the splendid (10.36); and the life force of all moving or non-moving creatures (10.39). Whatever is being proclaimed by Lord Krishna about Himself has also been promulgated about the goddess Durga in different words in the fifth chapter of Durga Saptshati[64].

What is being explicated and exemplified by Lord Krishna/ Goddess Durga is Vedic manifestation of all pervading Brahma in multiple forms, including the objects of nature covering the entire environment/ cosmos. In this philosophical background, it is no wonder that from the earliest days of the *Sanatan* civilization, reverence for the environment has been an integral part of Hindu society. The Hindus feel God's presence around them through nature; they consider all the natural forces to be the manifestations of the Supreme Being or God named Brahman. This perspective encourages humans to treat nature with reverence and respect. Hindus, therefore, worship/ revere stars (like Sun, Moon, Jupiter, Saturn etc), hillocks/ mountains (like Govardhan, Kailash, Kamadgiri, Nanda Devi, etc), trees (like vat, peepal, neem, tulsi etc), oceans (like Kshirasagara, Samudra devta

64. For example, kindly see verse nos. 9 –80: *नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म तम् ॥9॥* Durga Saptshati, (Sanskrit-Hindi), Gorakhpur: Gita Press, Samvat 2051, pp. 110-115.

etc), lakes (Panch Sarovar like Mansarovar, Narayan Sarovar, Brahma Sarovar etc), rivers (like Ganga, Yamuna, Narmada etc), water bodies (like a well or a *stepwell* etc), animals (like Nandi, elephant, cow, snake etc), birds (like Garuda, peacock, swan, crow etc), insects (like black ants, spider and honey bees etc) and a drain and a midden (घूरा *ghura*). Sadhguru is largely right in his claim: "In this culture, we never worshipped unknown gods somewhere."[65] (sadhguru)

The worship of Nature once prevalent all over the world in one form or other, with a philosophy or without a philosophy, is often considered primitive (regressive) and is derided as paganism (retrograde) by the practitioners of Christianity and Islam. F. Hageneder[66] says that the worship of trees once occurred throughout Europe but declined with the rise of religions such as, Judaism and Christianity which regarded such activity as pagan. Al Gore's *Earth in the Balance: Forging a New Common Purpose* (Earthscan, 2007) is just one of many books that blames the falling away from Pagan gods and the rise of the environmentally unfriendly followers of Jesus Christ for the modern environement crises. In his blog, Jesus Creed, Scot McKnight, a *New Testament* scholar, historian of early Christianity, and theologian, writes: "Most churches seemingly show very little regard for environmental issues as a concern for serious thinking Christians. Environment is not found in most books about the Christian life or discipleship studies. It's not part of our "introduction" to what Christians believe."[67] (Mcknight)

According to Sankhya philosophy, the world is a unification of *Prakriti* and *Purush*; this amalgam is also described as fusion of *para* and *apara*. The synthesis leads to the creation of "Panch Mahabhoot" (five elements) which, in turn, in different proportions are responsible for the creation of different objects including a human body. For example, the human body consists of 72% water, 12% earth, 6% air, 4% fire and the rest is ether. Each element is responsible for different structures in the body. Usually, the percentages of the first four elements remain constant but the percentage of ether can be enhanced. The source of

65. https://isha.sadhguru.org/us/en/wisdom/video/why-rivers-worshiped-in-indian-culture
66. F. Hageneder, *The Spirit of Trees: Science, Symbiosis and Inspiration.* New York: Continuum, 2000, p. 56.
67. Mcknight, Scot "Why Don't Evangelicals Care about the Environment?: Politics, Privilege, and Posturing". June 2, 2020, https://www.christianitytoday.com/scot-mcknight/2020/june/why-dont-evangelicals-care-about-environment.html

chronic (self-manifested) diseases is the impurity of any of the elements or if the elements are out of balance with another element in the body. Similarly, a disturbance in the percentage of any constituent of the environment beyond certain limits disturbs the natural balance and any change in the natural balance causes lots of problems to the living creatures in the universe. The *Rig Veda* venerates deities that are responsible for maintaining the requisite balance in the functioning of all entities of Nature whether the mountains, lakes, heaven and earth, the forests or the waters. Rigvedic hymns are largely devoted to the deities/ gods (*devta*) like Indra, Adityas, Agni, Apas, Asvins, Brhaspati, Dyáus Pitŕ, Maruts, Mitra Aditi, Parjanya (Rain), Prthvi Matŕ, Pushan, the Rbhus, Sarasvati River, Savitr (Sun), Soma, Vayu, Varuna, Ushas, and many others who are just the geological aspects of nature. They are the presiding deities of the respective natural phenomena. If the natural devastation is an expression of their wrath, the natural benevolence in the form of wind, rain, sun etc is an expression of their kindness. Collectively these gods are called Vasus, Rudras and Adityas, they are by their nature – donors/givers (hence *devta*). The hymns of the *RigVeda* glorify the gods to appease them; they are regarded as the ruler who protects men and dispenses happiness. Similarly, there are many hymns seeking the blessings of these gods. In *Yajur Veda* (14.19-20)[68] various celestial bodies are worshipped and their blessings are sought. People in Vedic days, therefore, were careful to refrain from activities that could cause harm to Nature's bounties. It was understood that the well-being of Mother Earth depended on the preservation and sustenance of the environment.

The Earth

In *Rig Veda* (1.89.4)[69] the earth has been described as our mother and Dyau sky (heaven) as the father who are being requested to send proper medicines. This indicates that the Vedic rishis considered human beings to be

68. *पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनुश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजाच्छन्दोऽश्वश्छन्दः ॥१९॥ ॐ अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवता ऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता॥* (*Yajur Veda* 14.20)

69. *तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः । तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् // tan no vato mayobhu vatu bheṣajaṃ tan mata pṛthivi tat pita dyauḥ | tad gravaṇaḥ somasuto mayobhuvas tad aśvina śṛṇutaṃ dhiṣṇya yuvam* || Tr. "May the wind waft to us the grateful medicament; may mother earth, may father heaven, (convey) it (to us); may the stones that express Soma, and are productive of plural asure (bring) it (to us); Aśvins, who are to be meditated upon, hear (our submission)."

sustained by them and the humans were not the masters of the earth but were expected to enjoy the things with gratefulness like a sibling (not like an exploiter) does. In *Rig Veda* (4.1.10)[70] Dyau (the Rigvedic sky deity) is identified as the Sire and begetter, and it is said that he as "Heaven, the father" showers true blessings. No independent verses for Dyau are there in the *Rig Veda.* He only appears in the verses dedicated to the Visvadevas, who are a regiment of gods dedicated to multiple universal functions, including – time, speech, dawn, and winds. This also appears quite appropriate as the sky (ether) regulates time and speech etc. In the *Rig Veda* the blissful nature of the environment has been noted. It provides bliss to people leading their life perfectly. The winds bring sweet (rewards); the rivers bliss us with sweet water and provide us health, night, morning, vegetation. The sun blesses us with peaceful life and the cows provide us milk (*Rig Veda* 1.90.6)[71].

In the *Rig Veda, Prthivi*[72] is invoked in hymns dedicated to Heaven and Earth. *Prthivi* often called Bhumi or the Earth is personified as a loving, caring and all-powerful goddess in the Vedic literature. There is only one sukta in *Rig Veda* (V. 84)[73] addressed to Prithvi/ earth. In this *sukta,* the strength and might of

70. *स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य। धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ॥ sa tu no agnir nayatu prajanann accha ratnaṃ devabhaktaṃ yad asya | dhiya yad viśve amṛta* akṛṇvan dyauṣ pita janita satyam ukṣan || Tr. "May that wise Agni conduct us to that wealth which is desired by the devout; he whom all the immortals have created for (the performance of) sacred oblations, the most rresplendent, liberate us from all animosities."

71. *मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः // madhu̲ vata ṛtayate madhu kṣaranti sindhavaḥ / madhvirnaḥ santvoṣadhiḥ //* (*Rig Veda* 1.90.6)

72. *Nighantu* gives 21 and *Amarakosha* gives 28 synonyms of "prithvi". www.wisdomlib.org/hinduism/book/rig-veda-english-translation/d/doc829925.html.

73. *बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि। प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि // ba̲littha parvatanaṃ khidram bibharṣi pṛthivi | pra ya bhumim pravatvati mahna jinoṣi mahini || Tr.*: "Verily you sustain here, Pṛthivi, the fracture of the mountains; mighty and most excellent, you are she who delight the earth by your greatness." (*Rig Veda* 5.84.1) *स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः। प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि // stomasas tva vicariṇi prati ṣṭobhanty aktubhiḥ | pra ya vajaṃ na heṣantam perum asyasy arjuni* ||Tr.: "Wanderer in various ways your worshippers hymn you with (sacred) songs; you who, bright-hued, tosses the swollen (cloud) like a neighing horse." (*Rig Veda* 5.84.2) *दृळ्हा चिद्या वनस्पतीन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा। यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः // dṛ̲ḷha cid ya vanaspatin kṣmaya dardharṣy ojasa | yat te abhrasya vidyuto divo varṣanti vṛṣṭayaḥ* ||Tr.: "You who, with solid earth, sustain by your strength the forest lords, when the showers of your cloud fall from the

the earth as the bearer of the mountains and sustainer of the forest and as the cause of clouds/ rains have been described. As a female deity, she enjoys an exalted position in the *Atharvaveda; she is* the dispenser of every sort of good. However, from the lore of the pious king, Prithu, in the *Vishnu Purana*, one may form the idea that the earth will yield fruits only when men will work hard.

The Hindus do not view the earth as an inanimate or non-living thing; rather they view it as a living entity which is efficient, effective and self-sustaining. The earth is viewed as mother; without a mother, creation and procreation comes to a standstill. As a mother, the earth provides us with the seasons, the fruits and other foods, the medicines, the air and atmosphere and so many other necessities of life. These ideas have very well been documented in the *Bhumi Sukta* or *Prithvi Sukta* of the *Atharva Veda* (12.1-63)[74]. It describes the beauty of the earth in poetic, mystical, and very realistic terms. It is unquestionably the oldest and the most evocative environmental invocation. It holds the ethical position that material prosperity is not an end in itself. The Hindu tradition of reverence for nature in all forms of life is expressed at its best; the ecological theme in sixty-three verses dedicated to Mother Earth is so clear in this *Sukta*. The hymns to Mother Earth in the *Sukta* present a striking cosmogonic and anthropological sequence.

The earth is depicted as a cosmic power, divine mother, the receiver of prayers and the bestower of blessings in this *Sukta*. Mother earth is praised for all her natural bounties[75] and celebrated for her gifts of medicinal plants, herbs and vegetation[76]. A soul-stirring prayer is sung in one of the hymns for the preservation and conservation of hills, snow-clad mountains, and all brown, black and red earth, unhurt, unsmitten, unwounded, unbroken and well defended by Indra.[77] The blessings of Mother Earth are sought for prosperity in all endeavours and fulfilment of all righteous aspirations.[78]

---

shining sky." (*Rig Veda* 5.84.3) www.wisdomlib.org/hinduism/book/rig-veda-english-translation/d/doc833649.html

74. sa.wikisource.org/s/1d6l

75. *असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्यतः प्रवतः समं बहु। नानावीर्या औशाधीर्या विभर्ति पृथिवी नः प्रचतम राध्यातामनः॥२॥*

76. *यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा। पृथिवीं विश्वधायसं धृतामछावदामसि ॥२७॥*

77. *गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु । बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् । अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥११॥*

78. *सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति । सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥१॥ भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥६३॥*

The earth is the source and dwelling place of all creatures, not for the different races of men alone. (*Atharva Veda* 12. 15) It is composed of mountains and plains, of snow-clad peaks, of deserts, oceans and rivers, of lakes and streams, trees and plants, rocks and stones (*Atharva Veda* 12. 26-27). She is called *Vasudha* for containing all wealth and *Hiranyavaksha* for having a golden bosom. However, the vitals of the earth are not for excavation with a craving, rather her gifts are to be used with all care. We are cautioned in the very first mantra of the *sukta* (12.1.1)[79] which states – the Earth sustains truth, cosmic order, initiation, penance, Brahman and sacrifice. The message is clear and loud – the earth can be sustained not with longing and hankering but with sacrifice. The *Prithvi Sukta* (12.1-63) depicts the importance, nature and remarkable features of the universal mother earth – considered to be not only a devi but also a living body[80]. This is wide earth which supports varieties of herbs, oceans, rivers, mountains, hills etc. She gives us water as a mother gives milk to her son (*Atharvaveda* 12.1.10). She has at places different colours as dark, tawny, white. She is raised at some place and lowered at some places. She is the representative of the universe and holds everything. The earth is fully responsible for our food and prosperity. The seer suggests the principle of replenishment: "And whatever is wanted of you for such growth, Prajapati, first self-manifest Divinity and father creator and sustainer of life forms, in the course of creative evolution and the Law of Mutability,

79. *सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवी धारयन्ति।/ सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः क्रणोतु॥/ ॥1॥ satyaṃ bṛhadṛtamugraṃ dikṣa tapo brahma yajñaḥ pṛthiviṃ dharayanti / sa no bhutasya bhavyasya patnyuruṃ lokaṃ pṛthivi naḥ kṛṇotu //1 //.* (*Atharvaveda*, 12.1.1) www.sanatanatva.com/articles/bhumi-suktam

80. In the 1970s, a British scientist named James Lovelock put forth a hypothesis that viewed the Earth as a single organism and suggested that living organisms on earth interact with their physical and chemical surroundings to form a synergizing and self-regulating complex system that co-evolves life on Earth. He named it the Gaia Hypothesis — Gaia being the Goddess Mother Earth in Greek Mythology and popularized 'geophysiology'. According to Lovelock, the evolution of Earth and the life forms on earth, was a tightly coupled process and not separate parallel processes. The Earth's habitability, the global temperature, its oxygen-rich atmosphere, the ocean salinity, and its relatively stable climate are maintained in a state of homeostasis not just by abiotic processes but regulated by the beings on her and by Gaia herself, as a superorganism.'Gaia Theory' is supported and backed by numerous scientific experiments and the theory is being researched further in the multidisciplinary fields of Earth science, evolutionary biology, and biogeochemistry.

replenishes and fulfils."[81] It has also been suggested to look at every entity of Nature with the eyes of a friend and sympathiser: "Let all the creatures of the world see us with friendly eyes, And we should also look at all the living beings with a friendly attitude. Lord! Please give us such a *sadmegha*, May the eye of a friend awaken"[82] It is she who diversifies speech into different languages. Hence, she is addressed as the mother of all and the human beings as children, *mata bhumih putro ham prithivyah* (*Atharva Veda* 12.1.12). Therefore, a Hindu seeks forgiveness before digging the land and *Atharva Veda* promises not to injure her vitals or her heart.[83] This is also a sort of injunction for not over-exploiting the earth by means of digging. Hindus are also aware of the fact that ploughing a plot of land is doing violence to the earth and to the creatures living there. They are made conscious of this sin in *Agnipurana*[84] where a process the expiation has been laid.

A study of the proper nouns (synonyms) used for the earth and the adjectives/ attributes for it may highlight the reverence of the Vedic sages to the earth: she is addressed as *Paprathana* (*Atharva Veda* 12.1.61) and *Prathamana* (*Atharva Veda* 12.1.55) for her being spread, *Agnivasa* (*Atharva Veda* 12.1.21) for holding fire, *Indragupta* (*Atharva Veda* 12.1.11) for Indra made her free from

81. *यत्त ऊनं तत्त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य॥१.६१ ॥* (*Atharva Veda*, 12.1.61) Tr. "Aditi, eternal nature, is our origin, earth our mother, heavenly light our father, sky our brother: may they save us from sin and imprecation, and give us peace and freedom of being. O man, born in such home and family, do not fall from this paradise of filial piety."

82. "*मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।*" *Mitrasyaaham chakshushaa sarvaani bhootaani sameekshe* (*Yajurveda*36.18)

83. *यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सख्यमभि भूमे पार्श्वम्। उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत्पृष्टीभिरधिशेमहे। मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥१.३४॥ यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु। मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥ ॥१.३५॥ yachchhyaanah prayavarte dakshinam sakhyambhi bhume paarshvam / uttanastva pratichim yatprishtibhirdhishemahe / ma himsistatr no bhume sarvasya pratishivari // 1.34 // yatte bhume vikhanami kshipram tadapi rohatu / ma te marm vimrigvari ma te hridayampirpam // 1.35 // Tr. O Mother Earth, when I dig and till the soil to sow the seed, let the seed grow soon and the ground fill up. O gracious, purifying and regenerative Mother, never would I hurt your vitality and fertility, never will I rip up your heart. Whatever I may dig from thee, O Earth, may that have quick recovery again; let me not hit thy vitals nor thy heart, O cleansing one. (Atharva Veda 12.1.34-35)*

84. *भूमिं भित्वौषधीश्छित्वा हुत्वा कोटपिपीलिकान् । पुनन्ति खलु यज्ञेन कर्षका देवपूजनात् ॥ ३ ॥*
bhumiṃ bhitvauṣadhiśchitva hutva koṭapipilikan | punanti khalu yajñena karṣaka devapujanat || 3 || One gets purified from the sin accruing from ploughing the earth and cutting the plants and killing insects and ants by doing a sacrifice. The cultivator (gets free from the sin) by worshipping the god. (*Agni Purana* 152.3)

enemies, *Visvaṃbhara* (*Atharva Veda* 12.1.6) for holding everything within, Vasudhani (*Atharva Veda* 12.1.6) for her richness in resources, *Vardhamana* (*Atharva Veda* 12.1.13) i.e. increasing everything, *amartya* (*Atharva Veda* 12.1.24) for being immortal, *Sindhurapo* (*Atharva Veda* 12.1.3) for being enwrapped by water bodies like rivers, lakes and oceans, *Bhuridhara* (*Atharva Veda* 12.1.9) for water unceasingly flows on her, *Payasvati* (*Atharva Veda* 12.1.59) for being rich in food, *Hiranyavaksa* (*Atharva Veda* 12.1.6) for her possession of riches like gold, *Kamadugha* (*Atharva Veda* 12.1.61) for granting one' wishes, *Visvadhayas* (*Atharva Veda* 12.1.27) for being all supporting, *Vasuda* and *Rasamana* (*Atharva Veda* 12.1.44) for feeding all like a mother, *Parjanyapatni* (*Atharva Veda* 12.1.42) for being the spouse of *Parjanya* (cloud), and she is addressed as *Janani* (*Atharva Veda,* 6.120.2)[85] for giving birth and sustenance. All these adjectives and nouns have positive connotations which highlight the reverence of the rishis to the planet earth. These words also provide an appreciation for the inter-relatedness to each other in the natural world. They provide us a great insight to care, love and venerate the earth and implore the reader to live in harmony with Mother Earth. A Hindu, therefore, before laying his feet out of bed every morning prays to the earth in the following words: "(O Mother Earth) O Devi who is having ocean as her garments and mountains as her bosom, who is the consort of Sri Vishnu, I bow to you; please forgive me for touching you with my feet."[86] Such a practice encourages one to be mindful of one's activities one the earth which supports and natures one and all.

Conclusion

Lynn White, Jr. correctly maintains that: "Human ecology is deeply conditioned by beliefs about our nature and destiny - that is, by religion." (White 1205)[87] The following lines, though not from any religious book, tell the concerns

85. *भूमिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशस्त्या नः। द्यौर्नः पिता पित्र्याच्छं भवाति जामिमृत्वा माव पत्सि लोकात् ॥*
bhumirmataditirno janitraṃ bhratantarikṣamabhiśastya naḥ / dyaurnaḥ pita pitryaccham bhavati jamimṛtva mava patsi lokat // (*Atharvaveda*, 6.120.2) Tr. "Aditi, eternal nature, is our origin, earth our mother, heavenly light our father, sky our brother: may they save us from sin and imprecation, and give us peace and freedom of being. O man, born in such home and family, do not fall from this paradise of filial piety."

86. *समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्वमे॥ Samudra-Vasane Devi Parvat-Stana-Mandale| Vishnu-Patni Namastubhyam Pada-sparsham Kshama-Svame ||*

87. Lynn White, Jr. "The Historical Roots of Our Ecologic Crisis" Science, New Series, Vol. 155, No. 3767 (Mar. 10, 1967), pp. 1203-1207, http://www.jstor.org/stable/1720120.

and the beliefs of an earth's inhabitant in a very positive way:

We are the birds of the same nest,
We may wear different skins,
We may speak different languages,
We may believe in different religions,
We may belong to different cultures,
Yet we share the same home - OUR EARTH.
Born on the same planet
Covered by the same skies
Gazing at the same stars
Breathing the same air
We must learn to happily progress together
Or miserably perish together,
For man can live individually,
But can survive only collectively.[88]

However, thoughts of all those who share this planet are not the same because all the religions do not share a common belief, knowledge and inheritance. Some consider this planet and the universe to be of common inheritance while some others consider themselves to be born with special privilages to be their masters. Unfortunately, the latter are assuming control and power very fast.Some use persuasive language in a suave manner to tell human beings that God has given them special status over others.Various tricks have been used to control the other group, one being education. The following extract from Macaulay's letter to his father (dated 12 October 1836) is a proof of how innocent-looking "education" was used as a tool to convert Hindus' ethos:

> Our English schools are flourishing wonderfully. We find it difficult, indeed at some places impossible, to provide instruction for all who want it. At the single town of Hoogley fourteen hundred boys are learning English. ***The effect of this education on the Hindoos is prodigious.*** No

88. This is told to be the translation of a few verses from the *Atharva Veda*. Kindly see: http://www.mountainman.com.au/news98_h.htm and https://www.grangetown.sunderland.sch.uk/News--Events/Birds-of-the-same-nest/index.asp. However, there is a contrary view too: Kindly see: https://www.advaita-vedanta.org/archives/advaita-l/2010-September/025419.html, https://ask.metafilter.com/55568/Is-this-from-the-Atharva-Veda and https://en.wikipedia.org/wiki/Talk%3AAtharvaveda.

> Hindoo who has received an English education ever continues to be sincerely attached to his religion. Some continue to profess it as a matter of policy. But many profess themselves pure Deists, and some embrace Christianity. The case with Mahometans is very different. The best-educated Mahometan often continues to be a Mahometan still. ***The reason is plain. The Hindoo religion is so extravagantly absurd that it is impossible to teach a boy astronomy, geography, natural history, without completely destroying the hold which that religion has on his mind.*** But the Mahometan religion belongs to a better family. It has very much in common with Christianity; and even where it is most absurd, it is reasonable when compared with Hindooism. It is my firm belief that, ***if our plans of education are followed up, there will not be a single idolater among the respectable classes in Bengal thirty years hence. And this will be effected without any efforts to proselytise, without the smallest interference with religious liberty, merely by the natural operation of knowledge and reflection.*** I heartily rejoice in this prospect...." [89] (Trevelyan 455-456)

Unfortunately, despite so many commissions, we have not been able to replace the colonial system of education even after 75 years of our political independence. The present-day ecological crisis is a fall-out of the Western education system, a euphuism for Christian education system. That Christian thinking is detrimental to ecology is now a known fact. The danger of Christian thinking and education can be understood from the following unambiguous words of Lynn White, Jr: "Christianity, in absolute contrast to ancient paganism and Asia's religions (except, perhaps, Zoroastrianism), not only established a dualism of man and nature but also *insisted that it is God's will that man exploit nature for his proper ends*." (White 1205, emphasis added) Unless, the Indian/ Christian education system is replaced by Indian Knowledge System the situation is going to prevail and persist.

●●●

89. Trevelyan,Sir George Otto.*The Life and Letters of Lord Macaulay*,Vol. I. London: Longmans, Green, 1876, pp. 454-56. https://archive.org/details/lifelettersoflor01trevuoft.

इतिहास की भारतीय अवधारण एवं भारत में इतिहास बोध

प्रो.दीनबंधु पाण्डेय[1]

सारांश

प्रस्तुत आलेख 'प्राचीन भारत में इतिहास-बोध और उसकी संकल्पना तथा लेखन' पर एक विमर्श है। भारत में इतिहास लिखे जाने की परम्परा अति प्राचीन काल से अविच्छिन्न रही है विद्या के अन्यान्य ग्रन्थों में उन विद्याओं के आरम्भकर्ता एवं उसे आगे संवर्धित करने वाले ससम्मान उल्लिखित है पराक्रमी पूर्वजों को यश और कीर्ति की ही आकांक्षा होती थी क्योंकि इतिहास के रूप में वही बचता है। यहाँ तक कि प्रागैतिहासिक काल के बारे में परम्परा से जानकारी प्राप्त थी; जैसा कि वायु, मार्कण्डेय एवं ब्रह्माण्ड पुराण के विवरणों से भी समर्थित होता है। वेदों के कई सूक्ते इतिहास सूक्ते के नाम से जाने जाते हैं। ब्राह्मण, आरण्यक में भी इतिहास का वर्णन है। रामायण और महाभारत को इतिहास ही कहा जाता है। सभी पौराणिक आख्यान इतिहास का ही वर्णन करते हैं। धार्मिक कृत्यों (व्रत-यज्ञ) में पाठ के क्रम में इतिहास पढ़े जाने का उल्लेख है। परम्परया इतिहास के अधिकारी विद्वान् सूत कहे गए हैं। हम अपने देश में अपनी प्राचीन गौरवमयी सांस्कृतिक परम्परा की विरासत के साथ है; अतः १९४७ ई.के पूर्व के इतिहास की पुनर्रचना में हमारी उस विस्तृत भूमि का इतिहास होगा जहाँ ऋषियों की वैदिक संस्कृति का पल्लवन था। इतिहास केवल राजकीय ही नहीं, लोक का भी होता है। इन दोनों पक्षों का आपसी घनिष्ट आदान-प्रदान रहता है।

मुख्य शब्द *- प्रशस्ति, गाथा, नाराशंसी, चरित, सूत, कीर्ति, यश, ऋग्वेद, अथर्ववेद, संहिता, ब्राह्मण, धर्मसूत्र, नाट्यशास्त्र, पुराण, महाभारत, कौटिल्य, गुप्तकाल*

प्रस्तुत आलेख 'प्राचीन भारत में इतिहास-बोध और उसकी संकल्पना तथा लेखन' पर एक विमर्श है। ऋग्वेद में इतिहास का उल्लेख प्रशस्ति, गाथा, नाराशंसी और आख्यान के रूप में प्राप्त है। नवें मण्डल के दसवें सूक्त के तीसरे मन्त्र में राजा की प्रशस्ति का उल्लेख है—

राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासोगोभिरञ्जते। यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥८/१०/०३

जिस प्रकार राजा प्रशंसाओं से और यज्ञ सात होताओं से प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार सोम गाय के दूध-दही आदि से मिलकर संस्कृत होते हैं।

ऋग्वेद में इतिहास और आख्यान के सन्दर्भ निरुक्त (२/१०,२४; १०/२६; १२/१०) एवं बृहद्देवता (३/१५६, ४/४६; ६/१०७, १०९; ७/१५३) में उल्लिखित हैं। ऋग्वेद के अग्नि से सम्बन्धित चतुर्थ मण्डल का छठा सूक्त

[1] पूर्व विभागाध्यक्षण् कला, इतिहास एवं पर्यटन प्रबंधन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं पूर्व सदस्यण् भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद्

(४/६) यास्क के अनुसार ऋक के साथ गाथा और इतिहास का सम्मिश्र रूप है। इतिहास का संकेत करने वाले विभिन्न सूक्त सन्दर्भ बृहद्देवता में भागुरि, यास्क (६/१०७) एवं शौनक (७/१६३) के सन्दर्भ से उल्लिखित हुए हैं। इतिहास का प्रथम सन्दर्भ ऋग्वेद के १०वें मण्डल के इन्द्र देवता वाले सूक्त १०२ के १२ मन्त्रों-

प्र ते रथं मिथूकृतमिन्द्रोऽवतु धृष्णुया।
अस्मिन्नाजौ पुरुहूत श्रवाय्ये धनभक्षेषु नोऽव। ।१०/१०२/१
उत्स्म वातो वहति वासोऽस्या अधिरथं यदजयत्सहस्रम्।
रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना । ।१०/१०२/२
अन्तर्यच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्राभिदासतः ।
दासस्य वा मघवन्नार्यस्य वा सनुत्तर्यवया वधम् । ।१०/१०२/३
उद्नो ह्रदमपिबज्जह्रषाणः कूटं स्म तृंदभिमातिमेति।
प्र मुष्कभारः श्रव इच्छमानोऽजिरं बाहू अभरत्सिषासन् । ।१०/१०२/४
न्यक्रन्दयन्नुपयन्त एनममेहयन्वृषभं मध्य आजेः।
तेन सूभर्वं शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय । । १०/१०२/५
ककर्दवे वृषभो युक्त आसीदवावचीत्सारथिरस्य केशी।
दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋच्छन्ति ष्मा निष्पदो मुद्गलानीम् । ।१०/१०२/६
उत प्रधिमुदहन्नस्य विद्वानुपायुनग्वंसगमत्र शिक्षन् ।
इन्द्र उदावत्पतिमघ्न्यानामरंहत पद्याभिः ककुद्मान् । ।१०/१०२/७
शुनमष्ट्राव्यचरत्कपर्दी वरत्रायां दार्वानह्यमानः ।
नृम्णानि कृण्वन्बहवे जनाय गाः पस्पशानस्तविषीरधत्त । । १०/१०२/८
इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम् ।
येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु । ।१०/१०२/९
आरे अघा को न्वित्था ददर्श यं युञ्जन्ति तम्वा स्थापयन्ति ।
नास्मै तृणं नोदकमा भरन्त्युत्तरो धुरो वहति प्रदेदिशत् ॥१०/१०२/१०
परिवृक्तेव पतिविद्यमानट् पीप्याना कूचक्रेणेव सिञ्चन्।
एषैष्या चिद्रथ्या जयेम सुमङ्गलं सिनवदस्तु सातम् । । १०/१०२/११
त्वं विश्वस्य जगतश्चक्षुरिन्द्रासि चक्षुषः ।
वृषा यदाजिं वृषणा सिषाससि चोदयन्वध्रिणा युजा । ।१०/१०२/१२

से माना जाना चाहिए, जिसे बृहद्देवता में शकटायन की मान्यतानुसार इतिहास सूक्त के नाम से उल्लिखित किया गया है।

प्रेतीतिहाससूक्तं ससूक्तं तु मन्यते शाकटायनः ।

यास्को द्रौघणमैन्द्र वा वैश्वदेवं तु शौनकः ॥ बृहद्देवता , ८/११

इसी प्रकार ऋग्वेद के सूक्त ८/९१ को यास्क और भागुरि इतिहास मानते हैं

इतिहासमिदं सूक्तम् आहातुर्यास्कभागुरी। - बृहद्देवता, ६/१०७

और ऋग्वेद के मन्त्र १०/१७/१-२ को भी यास्क ने इतिहास कहा है-

इतिहासमिमं यास्कः सरण्यूदेवते ददृचे। बृहद्देवता, ७/७

ऋग्वेद के कई सूक्त सन्दर्भों में (ऋ. ५/२१; ११/१९, २५, ३४; १०/१०; १२/४१)निरुक्त और (ऋ. १/३६, ५३) बृहद्देवता आख्यान प्रस्तुति की झलक मानते हैं। बृहद्देवता में ही शौनक ने लिखा है-

इतिहासः पुरावृत्तं ऋषिभिः परिकीर्त्यते । (४/४६)

प्रो. विश्वम्भर शरण पाठक जी के अनुसार (Ancient Historians of India : A Study in Historical Biographies, Bombay, 1966, अध्याय १, पृ. ३) वाह्य सन्दर्भों के माध्यम से प्राप्त इन सन्दर्भों को छोड़ भी दिया जाय तो भी ऋग्वेद में राज-प्रशस्तियों के रूप में गाथा और नाराशंसी की रचनाएँ प्रचलित थीं। गाथा का सम्बन्ध राजपुरुषों और ऋषियों से था (Vedic Index, भाग १, पृ. २२४)। ऋग्वेद के मन्त्र ९/९९/४ में एक प्राचीन गाथा का सन्दर्भ है ।

तं गाथया पुराण्या पुनाननभ्यनूषत।
उत्तो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥९/९९/४

नाराशंसी पूर्व पुरुषों की प्रशस्ति थी (ऋ. १०/५७/३) -

मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन। पितृणां च मन्मभिः ॥

[पितरों के चमस में स्थित सोम के द्वारा हम मन को शीघ्र बुलाते हैं। हम पितरों के स्तोत्र द्वारा मन को बुलाते हैं।]

प्रशस्ति शब्द का प्रयोग विभिन्न रूपों में ऋग्वेद के १४ स्थानों पर आया है, जिनके उदाहरण प्रस्तुत है-

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्वृहती विभाहि।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे। ।१/११३/१८
नित्ये चिन्नु यं सदने जगृचे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः । ।१/१४८/३
अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि।।२/४१/१६
तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।
द्वेशोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ।।५/६६
बृहद्वयो हिभानवेऽर्चा देवायाग्नये।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ।।५/१६/१
मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम् ।

स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुतप्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे । ।६/१५/२
बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां या ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ७/२२/३
तवेदिन्द्र प्रणीतिषूत प्रशस्तिरद्रिवः ।
यज्ञो वित्तन्तसाय्यः ॥ ८/६/२२
महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः। विश्वा वसूनि दाशुषे व्यानशुः ॥ ८/१२/२१
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभगभ द्रो अध्वरः। भद्रा उत प्रशस्तयः । ८/१९/१९
तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिरग्ने तव प्रशस्तिभिः । त्वामिदाहुः प्रमतिं वसो ममाग्ने हर्षस्व दातवे । ८/१९/२९
तमू षु समना गिरा पितृणां च मन्मभिः ।
नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे ॥८/४१/२
यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।
प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥८/७४/२
तं त्या मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे। तव प्रशस्तयो महीः ॥९/२/८

विश्वम्भर शरण पाठक जी ने ऋग्वेद की ऋचा ८/१०/३ में कही गई राज-प्रशस्ति को यत्र-तत्र प्राप्त कई एक सन्दर्भों में से ऐतिहासिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से उल्लेखनीय मानते हए उद्धृत किया है (Ancient Historians of India: A Study in Historical Biographies, Bombay, 1966, अध्याय १, पृ. १ टिप्पणी संख्या १)-

राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरंजते । यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ त्रक्. ९/१०/३

परवर्ती काल में चरित लिखने की परम्परा का आरम्भ भी ऋग्वेद में प्राप्त चरित शब्द के आधार पर माना जा सकता है-

चरत, चरतो और चरितवे शब्द का प्रयोग ऋग्वेद (क्रमशः ऋ. १/११३/२,३,५) से ही प्राप्त होता है-

जिह्मश्ये ३ चरितये मघोन्याभोगय इष्टये राय उत्वम्।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा । ।१/११३/५

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र (१/५) में इतिवृत्त (अर्थात् चरित) को पुराण, आख्यायिका एवं उदाहरण के साथ समानार्थक माना है-

पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः ।
प्राचीनतम चरित-काव्य वाल्मीकीय रामायण (१/१/९८, १/२/४३; १/३/९)है -
यः पठेत् रामचरितं.....
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥
रघुवंशस्य चरितं चकार भगवान् मुनिः ।

यह भी बात ध्यान देने की है कि निरुक्तकार यास्क ने ऋग्वेद के कई मन्त्रों के निघण्टु के शब्दों के स्पष्टीकरण में इतिहास (इतिहासमाचक्षते, २/१०, २/२४, ९/२३, १०/२६, १२/१०)

ऐतिहासिकाः २. निरुक्त २/१६/ २; १२/ १/ ८; १२/ १०/ १ के साथ-साथ ऐतिहासिकों के मत को सन्दर्भ में लिया है (ऐतिहासिका, २/१६-- इन्द्र-वृत्र युद्ध के ऋक् मन्त्र १/३२/१० का वृत्र वस्तुतः त्वष्टा का एक असुर पुत्र है; १२/१-- दो-अश्विन् वस्तुतः दो पुण्यकर्मा राजा थे: १२/१०-- सरण्यू और अश्विन देवों के सन्दर्भ ऋक् मन्त्र १०/८६/१३ में मिथुन यम-यमी हैं) जिससे संकेतित होता है कि ऋग्वैदिक काल के लोगों में इतिहास-बोध निश्चित रूप से था।

पश्यन्त्यस्याश्चरित पृथिव्या पृथंनरो बहुधा मीमासमाना। -(ऋग्वेद ६/२/३)

ऋग्वेद का ऋषि मधुछन्दा वैश्वामित्र प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त के द्वितीय मन्त्र में तत्कालीन बीते हुए और वर्तमान के भाव-बोध को उल्लिखित करते हैं 'पूर्वेभिऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत' (ऋग्वेद, १/१/२)। इतिहास अर्थ इसमें निहित है। पूर्व-कालिक का भाव-बोध ऋग्वेद, १०/१४/१५ में भी महत्वपूर्ण है 'इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः'॥

अथर्ववेद की शौनक संहिता भी इतिहास का उल्लेख काण्ड १५ के पर्याय सूक्त ६ में दो बार करती है। अथर्ववेद के इन दो मन्त्रों (१५/६/११-१२) में ऋषि अथर्वा का कथन है कि व्रात्य के सर्व दिक्-पराक्रम करने के कारण इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी उसके अनुगामी हो उसमें स्थित हुए—

तामीतिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्य चलन्॥
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद। (मन्त्र संख्या ११ एवं १२)

अथर्ववेद २५/३०/२ में अनेक विद्याओं के साथ पुराण शब्द भी पढ़ा है- 'तमितिहासं च पुराणं च'।

'इतिहास' शब्द से ही सम्बद्ध 'ऐतिह्य' शब्द है (पारम्पर्योपदेशः स्यात् ऐतिह्यम् इतिह अव्ययम्। अमरकोश, १/६/१२) जिसका प्रथम उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यक (१/२/१ स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्याम् ... और इस पर ११वीं शताब्दी में भाष्य करने वाले भट्ट भास्कर ने स्पष्ट ही लिखा है - ऐतिह्य शब्देनैतिहासपुराणं गृह्यते।

इतिहास गाथा की हमारी यह परम्परा अथर्ववेद से निस्सृत है –

यस्यां पूर्व पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।- अथर्ववेद, १२/१/५

पृथ्वी पर पूर्वकाल में हमारे पूर्वजों ने अनेकशः पराक्रम किये, उन देव वृत्ति वाले पूर्वजों ने असुरों को विजित किया।

कालान्तर में इतिहास के विविध स्वरूप (फोर्मेट) निर्मित हो गए, जो आगे चलकर वंशानुचरित, चरित काव्य व चारण गीतों तक पहुँचे। गौतम धर्मसूत्र के भाष्यकार मस्करी (Gautama Dharmasutra, Maskari Bhashya, Laksmipuram, Srinivasacarya,. 1917) ने सूत्र १/३९ (द्विः परिमृभ्यात्) के अपने भाष्य में 'अथर्ववेदेतिहासपुराणानि ध्यायन्' लिख कर इतिहास की अथर्ववेद से निस्सृति की पुष्टि की है (भगवद्दत्त,

भारतवर्ष का इतिहास, लाहौर, १९४६, पृ. १७)।

पराक्रमी पूर्वजों को यश और कीर्ति की ही आकांक्षा होती थी, क्योंकि इतिहास के रूप में वही बचता है। अथर्ववेद के मन्त्र ११/७/२५ के ऋषि ब्रह्मा ने यश की कामना की है और पुनः वे मन्त्र ११/७/२६ में आभा युक्त तेजस्वी होने की बात करते हैं-

चक्षुरू श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यान्नम् रेतो लोहितमुदरम् ॥ अथर्ववेद, ११/७/२५
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गल: पृथिव्यम् ॥ अथर्ववेद, ११/७/२६

गौरवमयी परम्पराओं, व्यवहार और चारित्रिक मानदण्ड स्थापित कर के भी यश और कीर्ति कमाई जाती थी, जैसा कि अतिथि के सत्कार के सम्बन्ध में ऋषि ने कहा है-

कीर्ति च या एष यशश्च गृहाणामश्राति यः पूर्वोऽतिथेरश्राति ॥ अथर्ववेद, ९/३/५

इसी के साथ यश और कीर्ति एवं तेज और दीप्ति के साथ बृहस्पति द्वारा धारण की गयी मणि की प्राप्ति का भी उल्लेख है-

स मायं मणिरागमत तेजसा त्विष्या यशसा कीर्त्या सह ॥ अथर्ववेद, १०/६/२७

इसी प्रकार १०वें काण्ड के तृतीय सूक्त में मन्त्र १७ से २५ तक यश और कीर्ति एवं तेज की अनेकशः चर्चा है।

इतिहास कुल-विद्या के रूप में इतिहासोपनिषद के अनुसार इतिहास शिबि-राजकुल की कुल विद्या थी

ॐ वृषादर्विकुलँ ह वै शिबिकुलं बभूव। तस्यायमितिहासः कुल-विद्या बभूव।

नवोन्मेष इतिहास की निर्मिति है

भरत मुनि की नाट्यशास्त्र की नवीन रचना भी एक ऐतिहासिक कार्य थी (नाट्यशास्त्र, १.१९), जिससे उन्हें यश और कीर्ति प्राप्त हुई, उन्होंने कहा है- इतिहासो मया सृष्टः।

नाट्य के मंचन के लिए भरत मुनि (नाट्यशास्त्र, १८.१०) एवं दण्डिन् (काव्यादर्श, १.१५) तथा विश्वनाथ (साहित्यदर्पण, ६/३१८) ने इतिहास से ही कथानक चुने जाने की बात कही है, स्पष्ट ही इसलिए कि पूर्व जनों के यश व कीर्ति को लोगों तक पहुँचाने का यह एक अच्छा साधन था।

इतिहास वेद

इतिहासपुराणाख्यमुपाप्रं च प्रकीर्तितम्। वास्तुवेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्च तथा मुने। आयुर्वेदश्च पत्रऋचौते उपवेदाः प्रकीर्तिताः। सीतोपनिषद्

आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्व-वेदमात्मनः, स्थापत्यं चासृजद्वेदं क्रमात् पूर्वादिभिर्मुखैः ॥ ३८ ॥

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः 39 ॥ श्रीमद्भागवत महापुराण। १३/ १२/ ३८- ३९

अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने इतिहास को वेद के रूप में उल्लिखित किया है

अथर्व-वेद-इतिहास-वेदौ च वेदाः ॥१/३/२

और साथ ही विद्या के सन्दर्भ में भी उल्लेख किया है

अहर्गच्छेत् विनयं विद्यासु-प्रहरण-रथ-अश्व-हस्त्य् भागं ॥१/५/१२ ॥
पश्चिमं इतिहास-श्रवणे॥१/५/१३ ॥
पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः । ।१/५/१४ ॥

आगे ५वें अधिकरण में भी इतिहास को पुराण के साथ उल्लिखित किया है

'इतिहास-पुराणाभ्यां बोधयेदर्थ-शास्त्रवित्' ॥ ५/६/४७

पालि-नीति साहित्य में इतिहास १८ शिल्पों में कहा गया है

(इतिहासा.. सिप्पाट्ठारसका)
लोकनीति, पण्डितकण्डो, ११
तिकिच्छा इतिहासा च, जोति माया च छन्दति।
केतु मन्ता च सहा च. सिप्पाट्ठारसका इमे ॥

पुराणों में 'इतिहास' के अनेक सन्दर्भ

पुराणों में इतिहास के अनेक सन्दर्भ हैं। कुछ विशेष की चर्चा करते हैं। विष्णु पुराण में वंशानुचरित के रूप में इतिहास का उल्लेख है-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च।
सर्वेष्येतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितं च यत् ॥३/६/२४

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में इतिहास के महत्त्व की स्थापना करते हुए उसका श्रवण गोदान करने के फल के बराबर कहा गया है। 'इतिहासानथाश्राव्य गोदानफलमाप्नुयात्' । । (२/९२/५५)

गो-दान के क्या-क्या फल हैं यह उल्लिखित करना विषय का व्यतिरेक होगा, अतः पुराणकार का दूसरा कथन मनन के लिए प्रस्तुत है -इतिहास प्रदानेन बुद्धिमान जायते नरः ॥ (३/२८८/३७)जहाँ इतिहास को मनुष्य में ज्ञान और चातुर्य के विकास में सहायक कहा गया है। साथ ही इतिहास के वाचन के फलस्वरूप पाप से मुक्ति भी कही गयी है- वाचनादितिहासानां पापमोक्षमवाप्नुयात् ॥३/२८८/३५ ॥

महाभारत में 'इतिहास' के सन्दर्भ

भीष्म ने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को शिक्षित करने के लिए गुरुकुल में भेजा, वहाँ जिन विद्याओं को पढ़ाया गया उनमें इतिहास का उल्लेख प्रथम स्थान पर अंकित है-

इतिहास पुराणेषु नाना शिक्षासु बोधिता।
वेद वेदांग तत्त्वज्ञाः सर्वत्र कृत निश्चयाः ॥ महाभारत, १/१०८/२०

इन पौराणिक एवं परवर्ती काव्यात्मक परम्परा का मूल स्रोत महाभारत है, जहाँ इतिहास को सूर्य की भाँति तमान्धाकार को दूर करनेवाला, ज्ञानांजन की शलाका की भाँति नेत्र का उन्मीलन करने वाला तथा इसके अध्ययन से पुण्य फलित होता है ऐसा कहा गया है-

तथा भारत सूर्येण नृणां विनिहितं तमः ।।१/१/८५ ।
ज्ञानाञ्जन शलाकाभिर्नेत्रोन्मीलन कारकम् ।। १/१/८४॥

महाभारतकार के उपर्युक्त भावों को ही नवीं शताब्दी में काव्यमीमांसा के रचयिता राजशेखर (लगभग ८९३ ई.) ने भी बताया है इतिहास और पुराण विवेक के सुरमे से निखरी हुई वे आँखें है जिनके द्वारा मेधावी सूक्ष्म विषयों को भी देख-समझ लेता है-

इतिहासपुराणाभ्यां चक्षुर्भ्यामिव सत्कविः ।
विवेकाञ्जनशुद्धाभ्यां सूक्ष्ममप्यर्थमीक्षते ॥ काव्यमीमांसा, बड़ौदा, १९२४, पृ. ३६

महाभारत इतिहास-ग्रन्थ है और इसका अध्ययन का कार्य परम्परया पुण्य की श्रेणी में कहा गया है-

भारताध्ययनं पुण्यं - १/१/२५४
नृ बुद्धि कैरवाणां च कृत्मेतत प्रकाशनम् । १/१/८६

महाभारत, भारत और पूर्वाभिधान जय तीनों ही इतिहास के पर्याय थे, -जयो नामेतिहासोयं (१/६२/२०), भारतस्येतिहासस्य (१/१/२८), भरतानां महज्जन्म महाभारतमुच्यते ।(१/६२/१)

महाभारत में कहा गया है कि इतिहास ज्ञान का आलोक देता है-

इतिहास प्रदीपेन मोहावरण घातिना।
लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत्सम्प्रकाशितम् ॥ महाभारत, १.१.१०३

राजशेखर से थोड़ा ही पहले ८९४ विक्रम संवत् (८३७ ई.)में प्रतिहार बाउक के अभिलेख में इतिहास को पूर्व-पुरुषों के गुणानुकीर्त्तन के रूप में परिभाषित किया गया है

गुणाः पूर्व्वपूरुषाणां कीर्त्यन्ते तेन पण्डितैः।
गुणकीर्त्तिरनश्यन्ती स्वर्गवासकरी यतः ॥
जोधपुर अभिलेख का मंगलाचरण, श्लोक २ एपिग्राफिया इण्डिका, भाग २८.पू.९६

इतिहास ग्रन्थ

भारत में इतिहास लिखे जाने की परम्परा अति प्राचीन काल से अविच्छिन्न रही है। विद्या के अन्यान्य ग्रन्थों में उन विद्याओं के आरम्भकर्ता एवं उसे आगे संवर्धित करने वाले ससम्मान उल्लिखित है। व्याकरण, अर्थशास्त्र, नाट्य, आयुर्वेद, धनुर्वेद, स्थापत्य आदि के अनेक उदाहरण हैं जिनमें उनके इतिहास अंकित है। मत्स्यपुराण (२५२/२-४) में स्थापत्य के १८ पूर्व विशारदों का उल्लेख है-

भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा
नारदो नग्नजिच्चैव विशालक्षः पुरंदरः
ब्रह्मा कुमारो नन्दीश शौनको गर्ग एव च
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः

स्थापत्य के विकास का विवरण देते हुए 'समराङ्गणसूत्रधार' के रचयिता भोजदेव ने सहदेवाधिकार अध्याय में आरम्भिक काल में 'अश्म' निर्मित कुठार से वृक्षों को काट कर लकड़ियों से घरों की रचना का वर्णन किया है।

हिमानिलादिवारणाद्यर्थे तेपां गृहपेक्षा गृहनिर्माणायच तैरूपात्तः प्रथमोपायश्च- समराङणेसूत्रधारे सहदेवाधिकार षष्ठोऽध्यायः

हिमनीहारशीताम्बुवाताद्यापच्छिदेऽपि च॥३५॥
अजातप्रीतयो वृक्षैः कुट्टिमानि गृहाणि ते।
व्यधुश्छित्वाश्मभिर्वृक्षानन्यान् दुःखार्तचेतसः॥३६॥
स्मृत्वा कल्पद्रुमाकारास्तद्रूपाणि गृहाणि ते।
एकद्वित्रिचतुः सप्तदशशालानि चक्रिरे॥३७॥

इस प्रकार प्रागैतिहासिक काल के बारे में परम्परा से जानकारी प्राप्त थी; जैसा कि वायु, मार्कण्डेय एवं ब्रह्माण्ड पुराण के विवरणों से भी समर्थित होता है। अर्थात्, प्रागैतिहासिक काल की जानकारी ११वीं शती में शास्त्र-अध्येताओं द्वारा पढी-पढ़ाई जाती थी (द्रष्टव्य, 'An 11th Century Literary Reference to Prehistoric Times in India, Who Needs the Past? Indigenous Values and Archaeology, edited by Robert Laton, published by Unwin Hyman, London, 1989, pp. 57-58) 1

मनुष्यों द्वारा घरों की रचना के आद्यकालिक उल्लेख वायु एवं मार्कण्डेय पुराण में भी प्राप्त हैं जिन्हें त्रेता युग के आरम्भ में निर्मित कहा गया है। वायु पुराण के अष्टम अध्याय में कहा गया है -

चर्तयन्ति हि तेन्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजाः॥८२
तेन ता वर्तयन्ति स्म सुखे त्रेतायुगस्य वै। ९१

कृत्वा द्वन्द्वप्रतीकारं निकेतानि छि भेजिरे। ९६
यथायोग्यं यथाप्रीति निकतेष्ववसन्पुनः । ९७

त्रेता युग की प्रथम अवस्था में गृहहीन प्रजागण गात्रावास द्वारा वायु, शीत और घाम के कष्ट का निवारण करने के लिये घर बना कर रहने लगे। गृह निर्माण कर सुख से निवास करने लगे ।

मार्कण्डेय पुराण अध्याय ४९
कृत्रिमञ्च तथा दुर्ग मित्वा मित्वात्मनोऽङ्गुलै।
मानार्थानि प्रमाणानि तांस्तु पूर्व प्रचक्रिरे। ३६

उन्होंने पुरों का निर्माण किया। अपनी अंगुलियों से नाप कर दुर्ग बनाने लगे तथा नापके लिये एक प्रमाण भी स्थिर किया।। ३६ ।।

मार्कण्डेय पुराण गृह की वास्तु-रचना के लिए मानक अंगुल प्रमाण (मित्वात्मनोऽङ्गुलैः, मानार्थ प्रमाणानि, ४९/३६) का भी उल्लेख करता है, जिसका सन्दर्भ,इण्डोलॉजी फाउण्डेशन के संस्थापक ललित मिश्र ने अपनी एक प्रस्तुति ('Science and Technologies of Prehistoric India, 8th National Seminar on Ancient Indian Science and Technologies, IIT Kharagpur, 12th November, 2019) में किया और साथ ही यह भी सन्दर्भ है कि सिन्धु-सभ्यता कालीन लोथल के पुरतात्त्विक उत्खनन में हाथी दाँत का निर्मित प्रमापक प्राप्त हुआ है। लम्बाई-प्रमापक की प्राप्ति कालीबंगा के पुरातात्विक उत्खनन में भी हुई है।[2]

सैन्धव-सभ्यता के इन लम्बाई प्रमापकों को वैज्ञानिक अध्येताओं ने अंगुल-प्रमाण आधारित माना है (द्रष्टव्य, V. B. Mainkar, 1984, "Metrology in the Indus Civilization' in Frontiers of the Indus Civilization. Sir Mortimer Wheeler Commemoration Volume, B.B. Lal and S.P. Gupta (eds.),. New Delhi: Books and Books, 1984, pp. 147-148 एवं Michel Danino, Issues in Indian Metrology, from Harappa to Bhaskaracharya, Gaita Bharatb, Vol. 37, No. 1-2 (2015), pp. 125-143)।

Lothal's measuring scale (27 graduation lines spanning 46 mm): 1 unit = 1.77mm.

V. Mainkar in 1984: 10 Lothal units come close to the Arthashastra's angula (1.778 cm in his estimate). D108 x 1.77 cm (0.4%)

स्पष्ट ही सैन्धव-सभ्यता त्रेता युग की परवर्ती है।

2. Kalibangan 'scale (Courtesy: Archaeological Survey of India) ((Michel Danino, Ganita Bharati Vol. 37, No. 1-2 (2015) p. 130))

उपरि-सन्दर्भित पुराणों और समराङ्गणसूत्रधार को विवरणों से स्पष्ट होता है कि हमारे देश में इतिहास के महत्त्व और उसकी शिक्षा का कितना ध्यान रखा जाता रहा है, ये बाते गौरव के साथ उल्लिखित की जानी चाहिए। इतिहास नाम से रामायण और महाभारत प्रसिद्ध है। अनेकशः नृपतियों के विवरण इनमें प्राप्त हैं। वाल्मीकि ने अपने ग्रन्थ रामायण को आख्यान कहा है (युद्धकाण्ड, १३१/११८-११९)

आयुष्यमारोग्यकरं यशस्यं
सौभ्रातृकं बुद्धिकरं शुयं च।
श्रोतव्यमेतन्नियमेन सिद्धिः
आख्यानमोजस्करमृद्धिकामैः ॥१७८ ॥

यह काव्य आयु आरोग्यता और यश को बढ़ाने वाला है। भाइयों में प्रेम उत्पन्न करने वाला, सुबुद्धि देने वाला और शुभप्रद है। अतः सज्जनो को उचित है कि वे इस तेजवर्द्धक और अभीष्टप्रद आख्यान को नियमपूर्वक सुनें॥१७।

एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः।
प्रव्याहरत्त विस्रब्धं बलं विष्णो प्रवर्धताम्। ११९

विष्णु का बल बढ़े इस प्रकार की प्रार्थना करके प्राचीनकाल में उन्नतिशील देवता इसका पाठ किया करते थे। अथवा इस प्राचीन इतिहास को भली भांति श्रद्धापूर्वक पढ़ो जिससे तुम्हारा कल्याण हो और विष्णु का वल बढ़े॥ ११६ ॥

पारम्परिक इतिहास में प्रसिद्धि प्राप्त नृपों के वर्ग बनाकर विशेष विवरण महाभारत में प्राप्त है। महाभारत के ही अंशों से संकलित इतिहाससमुच्चय नामक ग्रन्थ में ऐसे ३२ राजपुरुषों के यश गान संकलित है (इतिहाससमुच्चय, बस्तीराम एवं कालीचरण शर्मा, मुंशी नवल किशोर प्रेस लखनऊ संस्करण)। उनमें से पृथु और मान्धाता के आख्यान उनकी कीर्ति और यश के कारण विशेष हैं। महाभारत पाण्डयों के यश की गाथा (१/५८/६) है-

महाभारतमाख्यानं पाण्डवानां यशस्करम्।
परम्परया पराक्रम (वीर्य) को ही यश कहा गया है-
वीर्य यश आदत्ते/आदत्से/आदिथा (जैमिनीय ब्राह्मण, ३/३६०)
स्कन्दपुराण (५/५६(२) ३२] विजय को ही यश कहता है - विजयो यश ऊर्जितम्॥

कीर्ति और यश का भेद

दान आदि धार्मिक कार्यों के फलस्वरूप कीर्ति और शौर्यपूर्ण कार्यों से यश की प्राप्ति होती है (दानादि प्रभया ख्यातिः कीर्त्तिः शौर्यादिना ख्यातिर्यश इति, दानादि धर्मेणैव कीर्त्तिः शौर्यादिना यश – वाचस्पत्यम्, पृ.२०६०)। इसी प्रकार वाग्व्यवहारादार्श नामक ग्रन्थ का कथन है- भूयसी कीर्त्तिर्भवति भूयो यशः (विकिस्रोत)। इतिहास की दृष्टि से कीर्ति और यश एक-दूसरे से संयुक्त हैं। मेहरौली स्तम्भ-लेख में राजा चन्द्र की भुजा पर खड्ग

से उसके प्रदर्शित शौर्य की कीर्ति अंकित हुई कही गयी है (वङ्गेष्वाहव वर्त्तिनोऽभिलिखिता खड्गेन कीर्त्तिर्भुजे)।

रघुवंश, १/७ में रघुवंश के नृपों की महानता के विवरण में कालिदास ने उनके यश का उल्लेख किया है

त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ॥

इन्द्र द्वारा अपने यश के रक्षार्थ दिलीप के १००वें अश्वमेध यज्ञ का अश्व चुरा लिया गया था-

यदात्थ राजन्यकुमार तत्तथा यशस्तुक्ष्यं परतोयशोर्धनैः।
जगत्प्रकाशं तदशेषमिज्यया भवद्गुरुर्लङ्घयितुं ममोद्यतः ॥ रघुवंश, ३/४८

यादव राजा सिंहण के समय का प्रकाश अभिलेख (१२३३-३४ ई.)इसी प्रकार यश की चर्चा करता है

अधीतं कर्मणे येषां तथा कर्म विमुक्तये।
यशसे जीवितं येषां प्रजायै दारसंग्रह ॥
यथा दिवि विराजन्ते तेजोभिस्तारकास्त्विमाः ।
तथा भुवि विराजन्ते यशोभिस्तेतिमानुषैः ॥
एपिग्रफिया इण्डिका, भाग ३६. पू.२१, श्लोक ४ एवं ६

वैदिक काल से मध्य काल के बीच मौर्य एवं गुप्त-काल के अग्रोल्लिखित उदाहरण विशेष महत्वपूर्ण है-

मौर्य सम्राट् अशोक ने ऐसी ही यश और कीर्ति की आकांक्षा की थी। अपने दसवें शिलाभिलेख में इसी की प्राप्ति हेतु यह धम्मलिपियों का अंकन करा रहा था (गिरनार, दसवाँ अभिलेख, पंक्ति २, राजबली पाण्डेय, अशोक के अभिलेख, वाराणसी, संवत् २०२२, पृ.१९) -

देवानं पियो पियवसि राजा यसो व किति व इछति

गुप्तकाल में अपने गुणों के विस्तृत विवरण के साथ समुद्रगुप्त अपनी कीर्ति को इन्द्र के भवन तक पहुँचने वाली और अपने यश को प्रकट करने वाले स्तम्भ को पृथ्वी की भुजा की उपमा दी है साथ ही अपने यश को गंगा की धारा के समान तीनों लोकों को पवित्र करने वाला' कहा है (प्रयाग-कौशाम्बी स्तम्भ-लेख पक्ति २९-३०) -

महाराजाधिराजस्य श्री समुद्रगुप्तस्य सर्व पृथिवी विजित जनितोदय व्याप्त निखिलावनितलां कीर्त्तिमितस्त्रिदशपति भवन गमनावाप्त ललित सुख विचरणामाचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुच्छ्रितरू स्तम्भः। यस्य प्रदान-भुजविक्रम-प्रशम-वाक्योदयै-परिसञ्च-योच्छ्रित्मनेकमाग्रं यशः। पुनाति भुवनत्रयं पशुपतेर्ज्रजटान्तर्गुहा निरोध-परिमोक्षशीघ्रमिव पाण्डुगांगं पयः ॥

निखिलावनितलां कीर्त्तिमितस्त्रिदशपति

योच्छ्रित्मनेकमार्गं यशः

इसी के साथ चन्द्रगुप्त द्वित्तीय विक्रमादित्य द्वारा भी प्रयुक्त कीर्त्ति और यश के प्रयोग को विचारणार्थ लेते हैं। दिल्ली में मेहरौली के लौह स्तम्भाभिलेख में चन्द्रगुप्त की भुजा पर युद्ध में खड़ग से अंकित हुई कीर्ति और उसके पराक्रम (वीर्य) से सुवासित दक्षिण जलनिधि का उल्लेख हुआ है-

यस्योद्वर्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून्समेत्यागतान् वङ्गेष्वाहव वर्त्तिनोऽभिलिखिता खड्गेन कीर्त्तिर्भुजे।
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्विनिलैर्दक्षिणः ॥

परम्परा को भलीभाँति समझाने की दृष्टि से श्रीमद्भागवत का एक श्लोक (१२/३/१४)

उद्धरणीय है-

कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम्।
विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो यचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम् ॥

हे परीक्षित! इस लोक में अनेक बड़े-बड़े महापुरुष हो चुके है जो इस पृथिवी पर अपने तेज और यश का विस्तार करके चले गये। उनकी इतिहास-कथाएँ तुम्हें विज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति के लिए कही गई हैं। इन्हें तुम वाणी का वैभव और विलास मात्र न समझो, इनमें जीवन का परम अर्थ और तत्त्व समाहित है।

भारत में 'इतिहास' ज्ञान 'इतिहास वेद' कहा गया

अथर्ववेद के १६वें काण्ड के अध्यात्म सूक्त संख्या ६ के मन्त्र ११-१२ में उल्लिखित इतिहास -

तामीतिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ॥
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां व प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥

को वेद कहे जाने का सन्दर्भ शतपथ (१३/४/३/१२ अथाष्टमेऽहन् -----तानुपदिशतीतिहासो वेदः सोऽयेमिति कंचिदितिहासमाचक्षीतैवमेवाध्वर्युः सम्प्रेष्यत्ति न प्रक्रमान्जुहोति) एवं गोपथ ब्राह्मण (१/१/ १० एवं १/ २/१०) में है

गोपथब्राह्मणे पूर्वभागे प्र.१ का १० ॥ स दिशोऽन्वैक्षत प्राची दक्षिणा प्रतीचीमुदीची ध्रुवाध्वामिति। तास्तत्रेवाभ्यश्राभ्यदभ्यतपत्ममतपसभ्य श्रांताभ्यस्ताप्ताभ्य संततप्ताभ्य पञ्च वेदान्निरमिमस सपंवेदं पिशाचवेदमसुरवेदमितिहासवेदं पुराणवेदमिति। स खलुप्राच्या एव दिशा संपवेद निरमिमत, दक्षिणस्या पिशाचवेदं, प्रतोच्या असुरवेदं-मुदीच्या इतिहासवेदं श्रुयाश्चोद्ध्वार्याश्च पुराणवेदम॥१०॥

गोपथ ब्राह्मणे पूर्वभागे प्र.२। क.१०॥ एवमिमे सर्वे वेद निर्मिता सकत्पा सरहस्या सब्राह्मणा सोपनिप-त्का ऐतिहासा सान्वाख्याता सपुराणा सस्वरा ससस्फारा सनिरुक्ता, सानुशासना सानुमाजना सवाकोवाक्यास्तेषा यज्ञमभिपद्यमानाना छिद्यते नाम धेय यज्ञ इत्येवाचक्षते ॥१०॥

तथा शांखायन श्रौतसूत्र (१६/२/२४ इतिहासवेदो वेदः सोऽयमितीतिहासमाचक्षीत) में मिलता है और उसका प्रथम औपनिषदिक सन्दर्भ छान्दोग्य में प्राप्त है (३/४/१ (अ)थर्वाङ्गिरस एव मधुकृत इतिहासपुराणं पुष्पं ता

अमृता आपः- २ ते वा एतेऽथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपँस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यँरसोऽजायत॥२॥

पुराण को साथ में जोड़ते हुए यहाँ इतिहास को पञ्चम वेद कहा गया है- पञ्च वेदान् निरमिमत (सर्प पिशाच असुर इतिहास पुराण)- (गोपथ ब्राहाण, १/९/५०) इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं (छान्दोग्य, ७/१/२)। विष्णु पुराण (१/२२/८३) इतिहास को वेद की संज्ञा नहीं देता किन्तु क्रम में पाँचवे स्थान पर रखता है-

ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि वै।
इतिहासोपवेदाश्च वेदान्तेषु तथोक्तयः ॥ विष्णु पुराण १/२२/८३

देवीभागवत पुराण, १/२/२५-२६ इतिहास को भारत (अर्थात् महाभारत) कहते हुये पाँचवें वेद की संज्ञा दी है-

पञ्चलक्षणयुक्तानि भवन्ति मुनिसत्तमाः ॥
सपादलक्षं च तथा भारतं मुनिना कृतम्।
इतिहासइति प्रोक्तं पञ्चमं वेदसम्मतम् ॥

शांखायन (१/२४) एवं वैखानस गृहासूत्र (१/२/१६)में भी इतिहास को अलग से वेद की संज्ञा (इतिहास-वेद) दी गयी है। महाभारत को इतिहास के रूप में (जयोनामेतिहसोऽयम्, १/ ६२/ २०)वेद समान कहा गया है (१/ ६२/१६,४९)-इदं हि वेदैः समितं पवित्रैः चोत्तमम्।

हम यहाँ येद का अर्थ ज्ञान की एक नई विधा मानते हैं। वैदिक सन्दर्भों में इतिहास का उल्लेख वैदिक पादानुक्रम कोष (होशियारपुर)के सन्दर्भ से २+८+४+२+१६+१५+२२+२४+७ =कुल १०० बार प्राप्त होता है। हम यहाँ पुराण और इतिहास ग्रन्थों के अनेकशः उल्लेखों को नहीं ले रहे हैं।

संहिता में इतिहास दो बार, ब्राह्मण-आरण्यक में इतिहास आठ बार, इतिहास-पुराण चार बार, वेद दो बार उपनिषद में इतिहास सोलह बार, इतिहास-पुराण पंद्रह बार, वेदांग में इतिहास बाईस बार, इतिहास-पुराण चौबीस बार, धर्मशास्त्र, मंगल, मिश्र, वेद और सूक्त शब्दों के साथ सात बार उल्लिखित है।

शंकराचार्य ने शारीरक भाष्य में व्यास के माध्यम से इस प्रकार उल्लिखित किया है-युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान्सेतिहासान् महर्षयः।

महाभारत आदिपर्व के प्रथमाध्याय में पहले चौबीस पुरातन राजाओं का नाम-कीर्तन है-

इति राज्ञां चतुर्विरान्नारदेन सुरर्षिणा।
पुत्रशोकाभितप्राय पुरा श्वैत्याय कीर्तितम् ॥ २३०॥
इति वृत्तं नरेन्द्राणामृषीणां च महात्मनाम् ॥ १६ ॥
भारतस्येतिहासस्य पुण्यां ग्रन्थार्थसंयुताम्।
संस्कारोपगतां ब्राह्मीं नानाशास्त्रोपबृंहिताम् । ।१८

आचख्युः कवयः केचित् सम्प्रत्याचक्षते परे।
आख्यास्यन्ति तथैवान्ये इतिहासमिमं भुवि ॥ २६ ॥

श्लोक २८. के बाद का निम्नोघृत अंश भी बहुत महत्वपूर्ण है, जिसमें इतिहासकार को बीते हुए काल में जा कर घटनाओं को प्रत्यक्ष जैसा देखने की बात कहीं गई है, जो इतिहास-लेखन की पद्धत्ति का उल्लेख है-

शुचिः सनियमोव्यासः शान्तात्मा तपसि स्थितः।
भारतस्यतिहासस्य धर्मेणान्वीक्ष्य तां गतिम् ॥
प्रविश्य योग ज्ञानेन सोऽपश्यत् सर्वमन्ततः ।

और ऐसा ही कल्हण की राजतरङ्गिणी (१/४)तक प्राप्त है

रम्य निर्माण करने वाले ऐतिहासिक स्रष्टाओं को छोड़ कर और कौन बीते काल को प्रत्यक्ष बनाकर दिखा सकता है?

महर्षि व्यास ने तदनुरूप ही इतिहास की रचना की-

इतिहासाः सवैयाख्या विविधाः श्रुतयोऽपि च।
इह सर्वमनुक्रान्तत्तं ग्रन्धस्य लक्षणम् ॥ ५० ॥
इतिहासमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवतीसुतः ॥५४॥
इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्।
भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिविधं कालसंज्ञितम् । । ६३ ॥
पर्जन्य इव भूतानामक्षयों भारतद्रुमः ॥ ९२ ॥

संसारमें जितने भी श्रेष्ठ कवि होंगे उनके काव्यके लिये यह मूल आश्रय होगा। जैसे मेघ सम्पूर्ण प्राणियों के लिये जीवनदाता है, वैसे ही यह अक्षय भारत-वृक्ष है॥ ९२ ॥

हमारी परम्परा में ३२ राजाओं के चरित्र महाभारत से एकत्र कर के इतिहाससमुच्चय नामक ग्रन्थ प्रयोग में था। (इतिहाससमुच्चय, बस्ती राम एवं कालीचरण शर्मा, मुंशी नवल किशोर प्रेस लखनऊ संस्करण)।

धार्मिक कृत्यों (व्रत-यज्ञ) में पाठ के क्रम में इतिहास पढ़े जाने का उल्लेख है (शतपथ ब्राह्मण, ११/५/६/८, १३/४/३/१२) । आठवें दिन के विवरण में इतिहास वेद कथित है (शतपथ ब्राह्मण, १३/४/३/१२)। इतिहास का गायन अश्वमेध के अवसर पर होता था (वही, अश्वमेध काण्ड)।

महाभारत भी जनमेजय के सर्प यज्ञ के अवसर पर महाभारत की कथा लोगों को सुनाये जाने का उल्लेख करता है (१/१/९-११)। एक समय नैमिषारण्य में जब शौनक ऋषि के १२ वर्षों तक चलने वाले सत्र में लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा जनमेजय के सर्प यज्ञ से होते हुए पहुँचे और यहाँ उपस्थित ऋषियों के आग्रह पर यह पूछते हुए कि पुराणों की कथा या ऋषियों व सम्राटों के इतिहास (श्लोक में इतिवृत्तः शब्द है- इतिवृत्त नरेन्द्राणां ऋषीणां च महात्मनाम्, १/१/१६) सुनाऊँ तो उनके चयन के आधार पर भारत नाम का इतिहास (भारतस्येतिहास, १/१/११)

सुनाया। आगे के अंश (श्लोक २८ के बाद दूसरे अतिरिक्त श्लोक) में यह कहा गया है कि अन्तर्चक्षुओं से अन्वीक्षण करके इस इतिहास को प्रस्तुत किया गया (धर्मेणान्वीक्ष्य------- ज्ञानेन सोऽपश्यत्)। महाभारत का आख्यान परम्परा में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है (आख्यान वरिष्ठस्य, १/१/१८)।

स्वाध्याय के क्रम में मनुस्मृति भी इतिहास का उल्लेख करती है-

स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च॥ मनुस्मृति, ३/२३२

परम्परया इतिहास के अधिकारी विद्वान् सूत कहे गए हैं। (भागवत पुराण, १/१/६., मत्स्य पुराण, ५७/१५, ५८/४, ६९/३३, ७२/६, २४७/१७)।

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र (५/६/४७ कांगले पृ. १६८) में भी इतिहास को राजतन्त्र में महत्ता दी है।

मुख्यैरवगृहीतं वा राजानं तत्प्रियाश्रितः।
इतिहासपुराणाभ्यां बोधयेदर्थशास्त्रवित्॥

सम्बन्धी जनों के प्रभाव में घिरे राजा या राजकुमार को उनके साथ ही रहते राज्य के हित में सही कार्य को अंजाम देते रहने के लिए कौटिल्य ने अमात्य को इतिहास का आश्रय लेने का दिशा निर्देश किया है। यह भी ध्यातव्य है कि कौटिल्य प्रथम अधिकरण के तीसरे अध्याय में ऋक, यजुस् व साम को त्रयी कहते हुए फिर अथर्व और इतिहास को समन्वित करके वेद की संज्ञा देते हैं

सामग् र्यांजुर्वेदास्त्रयी॥ अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः॥१/३/२

साथ ही ५वें अध्याय में निर्देश करते हैं कि अपराह्न काल में राजा को इतिहास सुनना-गुनना चाहिए।

पूर्व महर्भागं हस्त्यश्वरथप्रहरणविद्यासु विनयं गच्छेत्॥ पश्चिममितिहासश्रवणे॥
पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः॥

कौटिल्य ने राजा के लिए इतिहास का अध्ययन यूँ ही नहीं संस्तुत किया होगा। आरम्भ के अंश में विष्णुधर्मोत्तर पुराण का सन्दर्भ (पूर्वोद्धृत, ३/२८८/३७) दिया गया है कि इतिहास के अध्ययन से ज्ञान रूपी अंजन नेत्रों को उन्मीलित कर अज्ञान का अन्धकार दूर करता है एवं व्यक्ति बुद्धिमान होता है। भीष्म ने भी इसी दृष्टि से कौरव राजपुत्रों को इतिहासाध्ययन की व्यवस्था की थी (पूर्वोद्धृत, १/१०८/२०)।

अज्ञानतिमिरान्धस्य लोकस्य तु विचेष्टतः।
ज्ञानानशलाकाभिर्नेत्रोन्मीलनकारकम्।। महाभारत १/१/८४
इतिहासोत्तमाद् अस्मात् जायन्ते कविबुद्धयः। महाभारत, १/२/२/३७

इन्हीं दृष्टियों से 'इतिहास' राज-कुलों की कुल विद्या हुई, जैसा कि इतिहासोपनिषद् में उल्लिखित है कि शिबि-राजकुल में इतिहास कुल-विद्या के रूप में गृहीत था-

ॐ वृषादर्विकु कुलं ह वै शिबिकुलं बभूव।
तस्यायमितिहासः कुल-विद्या बभूव।

इतिहास की परिभाषा

इतिहास की परिभाषा क्या है, उसका स्वरूप महाभारत में स्पष्टतः वेद का व्याख्यापन है

इतिहासपुराणाभ्यां वेद समुपबृंहयेत् (महाभारत, १/१/२६७)

पुराण-ग्रन्थ भी यही उद्घोष करते हैं-

वायु पुराण, १/१८१: पद्म पुराण, १/२/५२: ब्रह्माण्डपुराण, १/१/७१: शिव पुराण, ७/१,१/४०

इतिहास की अग्रोल्लिखित परिभाषा लोक में प्रचलित है-

धर्मार्थ-काम-मोक्षाणामुपदेश-समन्विताम् पूर्ववृत्तं कथायुक्त इतिहासं प्रचक्षते।
आर्यादिबहुव्याख्यानं देवर्षि-चरिताश्रयम् इतिहासमिति प्रोक्तं भविष्याद्भुतधर्मयुत्॥

इति ह आस

इतिहास शब्द की व्युत्पत्ति 'इति ह आस' से है, जिसका अर्थ है कि बीता हुआ ऐसा ही था। आचार्य दुर्ग ने यास्क के निरुक्त (२/१०- २४; ९/२३; १०/२६ एवं १२/१०) के इतिहास पर भाष्य करते हुए इसे स्पष्ट किया है कि-

'इति हैवमासीदिति यत् कथ्यते तत् इतिहासः' [यह निश्चय से इस प्रकार हुआ था)। मोनियेर विलियम्स ने अपने संस्कृत-इंग्लिश कोष (पृ.१६५) में भारतीय परम्परा में इतिहास के अर्थ को इस प्रकार बताया है -

> Iti-ha, ind. thus indeed, according to tradition. Iti-hasa, as, m. (iti-ha-asa, 'so indeed it was'), talk, legend tradition, history, traditional accounts of former events, heroic history

शब्दकल्पद्रुम (भाग १, पृ.२०५)इतिह एवं इतिहास को निम्नवत स्पष्ट करता है,- इतिह, व्य, (इति एवं च ह किल च।) पारम्पर्यो-पदेशः। तत्पर्य्यायः। ऐतिह्य २। इत्यमरः॥ इतिहासः, पुं, (इतिह आस्तेऽस्मिन्। इतिह+ आस + घञ्।) पूव्ववृत्तान्तः। प्राचीनकथा। तत्पर्य्यायः। पुरावृत्तः २। इत्यमरः॥

किन्तु ध्यान देने की बात है कि समस्त जो काल-गत हुआ, वह पूर्णतः पुनर्रचित इतिहास में समुपस्थित नहीं होता। सम्भवतः इसी बात को ध्यान में रखते हुए भारतीय परम्परा में यश और कीर्ति को पैमाना बनाते हुए कथ्य के प्रस्तुतीकरण का मानक प्रचलित रहा। यश किसी का भी गाया जायेगा और कीर्ति की पताका किसी की भी फहरायेगी।

भारतीय इतिहास का भू-क्षेत्र और इतिहास निर्माता

आज के भारत का भू-क्षेत्र १९४७ ई. का सीमित भू-खण्ड है, किन्तु हमारे प्राचीन परम्परा के भारत की भूमि विस्तृत थी। उत्तर में हिमालय और दक्षिण में समुद्र तक--

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ।।
नवयोजनसहस्रो विस्तारोस्य महामुने। विष्णु पुराण, २/३/१-२

इसी भूमि-भाग का गान देवतागण करते हैं, यह विवरण २४ वे श्लोक में है-

गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत्।
वर्ष यद्भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा ।। वायु पुराण, ४५/७६
आयातो आकुमारिक्यादागंगाप्रभावाच्च वै। वायु पुराण, ४५/५१

हम अपने देश में अपनी प्राचीन गौरवमयी सांस्कृतिक परम्परा की विरासत के साथ है; अतः १९४७ ई. के पूर्व के इतिहास की पुनर्रचना में हमारी उस विस्तृत भूमि का इतिहास होगा जहाँ ऋषियों की वैदिक संस्कृति का पल्लवन था। इतिहास केवल राजकीय ही नहीं, लोक का भी होता है। इन दोनों पक्षों का आपसी घनिष्ट आदान-प्रदान रहता है।

भूमि ही हमारी माता है। 'इतिहास' का उद्घोष (अथर्ववेद, १५/६/११-१२) करने वाले ऋषि अथर्वा ने एक मन्त्र (१२/१/१२) में 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' कहा है। हमारा भू-क्षेत्र हिमालयात् आसमुद्राः है। इस क्षेत्र का इतिहास इस भूमि के पुत्रों द्वारा लिखा जाना चाहिए। आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल का कथन उल्लेख्य है-

अथर्ववेद का पृथिवी सूक्त पृथिवीपुत्रीय भावना का आदि स्रोत है। उसके अध्ययन से अनमोल सामग्री मिलती है। भारतीय इतिहास और संस्कृति के अध्ययन में सबसे पहले इस सूक्त के मन्त्रों का अध्ययन करा देना चाहिए। राष्ट्र संवर्धन की सब भावनाओं का वह सूक्त अक्षय स्रोत है। राष्ट्र की परिभाषा का सूत्र इसी से निकलता है। भूमि, भूमि पर बसने वाला जन और जन की संस्कृति इन तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनाता है (द्रष्टव्य, वासुदेव शरण अग्रवाल के पत्र, पृ.४० एवं पृथिवीपुत्र, पृ.९१)।'

भारत के इतिहास निर्माता

मैं यहाँ यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि भारत का मूल इतिहास उनके द्वारा संरचित है जो युग-युगान्तर से भारत के निवासी हैं। किसी भी वाह्य क्षेत्र से आकर भारत की भू-सम्पदा का उपयोग जिन्होंने किया उनके क्रिया-कलाप भारत देश एवं भारत-भूमि की सन्तानों के यश वा कीर्ति के उद्घोष नहीं है।

पराजय का कोई इतिहास नहीं लिखा जाता। हाँ, पराजित के उन प्रयासों का इतिहास होगा जो अपने को स्वतन्त्र रखने, अपने विकास को बाधित न होने देने के प्रयत्न एवं संस्कृति और परम्पराओं की अक्षुण्णता के उद्योग

तथा बागडोर फिर से हाथ में लेने के लिए तत्पर रहने का भाव-प्रदर्शन किया हो। ये प्रयास ही उनके यश को फैलाते हैं और उनकी कीर्ति की पताका फहराती है। इस सन्दर्भ में महाराणा प्रताप का उदाहरण सम्यक है। उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता पर आँच नहीं आने दी। उनका यश और उनकी कीर्ति दिग्दिगन्त में वर्तमान है। यदि पूरे देश में शोध करें तो न जाने कितने लोग मिलेंगे जिन्होंने किन्हीं भी परिस्थितियों में अपने स्वतन्त्र चिन्तन को दबने नहीं दिया।

ग्यारहवीं शती के आरम्भ में गज़नी से आया अलबरूनी अपनी पुस्तक 'अल-अथर-अल-बाकियाह' में कहता है कि हिन्दू हमें राक्षस कहते हैं (केगन पॉल, दि क्रोनोलॉजी ऑफ ऐन्शिएण्ट नेशन्स, लन्दन, १९१०, पृष्ठ २०-२२)।

भारत के लोक-जन ने विदेशी अधिपों के प्रति अपनी अस्मिता को उजागर करते हुए विरोध व घृणा का भाव रखा। मैं यहाँ एक कलाकार का उदाहरण देना चाहूँगा, जिसने जयदेव के गीतगोविन्द के विष्णु-दशावतार के चित्रण में कल्कि अवतार को चित्रित करने में मुगलों के प्रति अपने भाव को चित्र में उतारा है। मुगल काल का यह चित्र काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विश्रुत 'कला भवन' नामक संग्रहालय में सुरक्षित है, जिसमें विष्णु के कल्कि अवतार के अंकन में अश्व के साथ कल्कि सामने के राक्षस को मारते हुए अंकित किया गया है किन्तु कलाकार ने राक्षस के चित्र के ऊपर उसे मुगली (मुगल)लिखा है। संग्रहालय के पूर्व निदेशक श्री टी.के.विश्वास जी ने चित्र मुझे दिखाया था, जो लक्ष्मीदत्त व्यास जी के माध्यम से प्राप्त हुआ है। मुगलों का प्रशासन भले रहा हो भारत के जन-मानस ने उनका विरोध ही रखा था। उस चित्रकार के यश का दिग्दिगन्त में प्रसार का अवसर आज मिला है।

रामदास द्वारा मराठी में लिखी गई रामकथा में औरंगजेब को रावण करार किया गया है। सिक्खों के नौवें गुरु तेगबहादुर को कश्मीरी ब्राह्मणों को बलात् मुसलमान बनाने का विरोध करने पर औरंगजेब ने उन्हें फाँसी पर लटका दिया। इस दिन को सिक्ख आज भी अपने त्यौहारों में याद करते हैं। इस बात का उल्लेख करते हुए एस.बी.त्यागी ने कहा है कि कालनेमि नाम का राक्षस ही औरंगजेब के रूप में पैदा हुआ था। इतिहासकारों का कर्त्तव्य बनाता है कि इतिहास के लेखन में परिवर्तन लायें, दृष्टिकोण बदलें। यह सारी बातें केवल हिन्दू-मुसलमान के सन्दर्भ की नहीं है। यह मुसलमानी राज्यतन्त्र के विरोध और उनकी सत्ता न स्वीकारने का भी स्वर है।

बारहवीं शताब्दी में काशी के यशस्वी नरेश यवनारि (यवनों के अरि) उपाख्य बन्नार(बनार)ने गिरिजापुर नगर (आज का मीरजापुर)को सुचारु रूप से बसाया था। ये यवनारि गाहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र देव थे जिन्होंने दुष्ट तुरुष्कों से वाराणसी की रक्षा की थी (सारनाथ कुमारदेवी अभिलेख)

वाराणसी भुवन रक्षणदक्ष एको
दुष्टातुरुष्कसुभटादवितुं हरेण।
गोविन्दचन्द्र इति प्रथिताभिधानः ।। श्लोक १६

यवानारि उपाधि उसी प्रकार की थी जैसे कि शकारि। संस्कृत भाषा के कवि बलभद्र रचित चेतसिंहविलास नामक ग्रन्थ में राजा यवनारि उपाख्य बन्नार के यश-विक्रम का सुन्दर वर्णन किया गया है-

अत्रान्तरे शशासौर्वी यवनारिर्नराधिपः।
वाराणसीमधिष्ठाय राजधानी प्ररद्विषः ।।
चन्द्रवंशः समुद्भूतः प्रचण्ड भुजविक्रमः।
चतुरङ्ग बलाधीशः श्रुत्वा काशीनरेश्वरः ।।

मुगलकाल में मथुरा का नाम बदला गया था। बात सन् १६६९ ई.की है, जब मुगल बादशाह औरंगजेब (१६५८-१७०७ ई.) ने श्रीकृष्ण जन्मस्थान, मथुरा के प्रसिद्ध केशव देव मन्दिर को तोड़कर उस स्थान पर मसजिद बनाने का आदेश दिया। किन्तु इस के साथ ही एक आदेश और दिया, वह यह कि मथुरा का नाम बदलकर इस्लामाबाद और वृन्दावन का नाम बदल कर मोमिनाबाद कर दिया जाये और यह आदेश पूरी तरह से अमल में भी लाया गया, पर यह दोनों नाम साधारण जनता में कभी प्रचलित नहीं हो सके और केवल मुगल शाही दफ्तरों तक ही सीमित रह गये। पर फारसी दस्तावेज़ों में एक लम्बे समय तक मथुरा के लिए इस्लामाबाद और वृन्दावन के लिए मोमिनाबाद लिखने की परम्परा चलती रही। 18वीं सदी के मध्य में जब मथुरा-वृन्दावन जाट शासकों के अधिकार में आये तो उन्होंने सिक्के ढ़ालने के लिए मथुरा और वृन्दावन में अपनी टकसालें स्थापित की। किन्तु पुरानी चली आ रही परम्परा के अनुसार सिक्के मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय के नाम पर ही जारी किये गये और सिक्कों पर भी फारसी में मथुरा टकसाल के नाम पर इस्लामाबाद और वृन्दावन टकसाल के नाम पर मोमिनाबाद ही अंकित किया जाता रहा। इस दौर के कई महत्वपूर्ण दस्तावेज और मथुरा-वृन्दावन की टकसालों में ढले वह दुर्लभ सिक्के ब्रज संस्कृति शोध संस्थान, वृन्दावन में संग्रहीत हैं, किन्तु जन-मानस ने कभी इन नामों को स्वीकार नहीं किया।

औरंगजेब ने १६६९ ई.में बनारस का नाम भी बदल कर मुहम्मदाबाद रखा था, किन्तु लोक में इन्हें कोई मान्यता न मिली। जन-मानस का यह भारी विरोध और सत्ता को चुनौती थी। जाने कब भारत का इतिहास तत्कालीन उद्वेलित जनसमूह के प्रयासों को अपनाएगा और भारतीय इतिहास की सही रचना हो सकेगी।

दो-एक अन्य समकालिक उदाहरण भी उल्लेख्य हैं। १२वीं शती में (११४८-११५० ई.) कश्मीर के सुप्रसिद्ध इतिहासकार कल्हण अपनी राजतरंगिणी में उद्भाण्डपुर पर आक्रमण करने वाले मुसलमान हम्मीर को चाण्डाल कहा है-

गते त्रिलोचने दूरमशेषं रिपुमण्डलम् । प्रचण्डचण्डालचमूशलभच्छायमानशे ।। ७/६३

भरत पुर के जाट राजा सूरजमल के दरबारी कवि मथुरा में जन्मे सूदन ने अपनी कृति सुजानचरित में बाबर को 'बब्बर' कहा और उसे 'उदण्ड' कहा है, इसी प्रकार हुमायूँ को भगोड़ा [गो पलाई] और अकबर को बाबर जैसा ही उद्दण्ड कहने में तनिक हिचक नहीं की-

बब्बर जु साहि कौ उदंड।। ६/१२/१२, वह साहि हिमाऊँ गौ पलाई।।६/१२/१४

दोहा

प्रगट हिमाऊँ के भयौ, अकबर साह उदंड। तिन पठान मारे सबै राज करयौ अति चड ॥ ६ । । १३ ॥
सूदन विरचित सुजान-चरित्र षष्ठ जंग १५६, प्रथम अंक

राजपूतनी किरण देवी के साथ अकबर की ओछी हरकत और राजपूतनी की कटार से भयभीत अकबर का माफी माँग कर जान बचाने की घटना प्रसिद्ध है। गिरधर आसिया ने अपने सगत रासो (सम्पादक, कृष्णचन्द्र श्रोत्रिय एवं हुकमसिंह भाटी, उदयपुर, १९८७, पृ.६३२) में उल्लिखित किया है। दुरसा आढ़ा(१५३५-१६५५ ई.)ने अपनी विरुद छहत्तरी (रामप्रसाद दधीच, राजस्थानी के पाँच महाकवि, जयपुर, १९७९, पृ. ११) में अकबर को पाप का अवतार की संज्ञा दी थी और महाराणा प्रताप को पुण्य का अवतार कहा-

अकबर अघ अवतार, पुन अवतार प्रतापसी ॥

स्पष्ट ही अकबर को जनता बहुत ही गिरी निगाह से देखती थी। अकबर के बारे में लिखी गयी पुस्तक अकबरनामा में वर्णित है कि १५६७ ई में संन्यासियों को न्याय देने के बदले आपस में युद्ध करा कर अकबर तमाशबीन की तरह युद्ध देखता रहा। ऐसे अकबर को जिसने प्रजा के न्याय माँगने पर युद्ध में ढकेल दिया उसे अंग्रेजों ने महान् की उपाधि दे रखी है। भारत भूमि की परम्परा में जिस प्रकार पृथ्वीराज चौहान के साथ चन्द्रबरदाई को याद किया जाता है वैसे ही हमें राणा प्रताप और दुरसा आढ़ा को इतिहास में याद करना चाहिए।

अकबर के समय में गोस्वामी तुलसी दास जी ने हिम्मत से बाबर को बर्बर करार दिया और एक इतिहासकार की भांति उसके द्वारा अंजाम दी गयी निन्दनीय घटना की तिथि को भी उल्लिखित किया है -

जब

बाबर बर्बर आइ के कर लीन्हें करवाल
हने पचारिपचारि जन-, तुलसी काल कराल॥
संवत सर वसु बान नभ ग्रीषम ऋतु अनुमानि।
तुलसी अवधहिं जड़ जमन अनरथ किय अनखानि।
तुलसी रची मसीत तहँ मीरबाँकी खल नीच।

(इस दोहा ८८ में ज्योतिषीय काल गणना में अंक दायें से बाईं ओर लिखे जाते थे, सर (शर) =५, वसु=८, बान (गण)=५, नभ = १ अर्थात विक्रम संवत् १५८५ और विक्रम संवत् में से ५७ वर्ष घटा देने से ईस्वी सन् १५२८ आता है।) तुलसी दोहा शतक- ८७, ८८, ९१

अकबर को आमतौर से हिन्दू जन अकब्बर कहा करते थे, जिससे उसके नाम के साथ हास्य (मजाक)का एक पुट जुड़ता था। अकबर के दरबारी कवि नरहरि ने गौओं पर होने वाले अत्याचार के प्रति ध्यान आकृष्ट करने की लिए गौ की पुकार वाला छप्पय पद इस प्रकार लिखा है-

अरिहु दन्त तृन धरइ ताहि मारत न सबल कोइ।

हम सन्तत तुन चरहिं बचन उच्चरहिं दीन होइ।।
हिन्दुहिं मधुर न देहिं कटुक तुरकहिं न पियावहिं।
पय विशुद्ध अति स्रवहिं बच्छ महिं थम्मन जावहिं ।।
सुनु शाह अकब्बर! अरज यह करत गऊ जोरे करन।
सो कौन चूक मोहि मारियतु मुयेहु चाम सेवत चरन ।।

दरबार में बैठ कर शाहंशाह अबुल फतह जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर को अकब्बर कह कर सम्बोधित करना इतिहास को संकेत तो देता ही है।

कुम्भनदास को अकबर ने फतेहपुर सीकरी बुलाया था। सम्राट की भेजी हुई सवारी पर न जाकर वे पैदल ही गये और जब सम्राट ने इनका कुछ गायन सुनने की इच्छा प्रकट की तो इन्होंने अकबर को दुख का कारण कह कर सम्बोधित किया-

भक्तन को कहा सीकरी सों काम।
आवत जात पनहियाँ टूटी बिसरि गयो हरि नाम।
जाको मुख देखे दुख उपजत ताको करबे परी सलाम।
कुम्भनदास लाल गिरिधर बिन यह सब झूठो धाम।

हम कवि भूषण को नहीं भूल सकते जिन्होंने औरंगजेब से शिवाजी के वीरता पूर्वक किसी युद्ध के परिणाम को इतिहासकार जैसा अंकित किया है —

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहन वारी, ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं।
कन्द मूल भोग करैं कन्द मूल भोग करैं, तीन बेर खातीं ते वे बीन बेर खातीं हैं।
भूषन शिथिल अंग, भूष(ख)न शिथिल अंग, बिजन डुलातीं ते वे बिजन डुलाती हैं।
भूषण मनत शिवराज वीर तेरे त्रास नगन जड़ातीं ते पे नगन जड़ातीं हैं।।
(मिश्रबन्धु की भूषण ग्रन्थावली के शिवा बावनी का कवित्त संख्या ८)

भूषण ने केवल यह कविता मात्र नहीं लिखा है, किसी न किसी युद्ध का यह वास्तविक विवरण है। यह किसी इतिहास लेखन से कम नहीं है। मुगल जब युद्ध पर जाते थे तो उनका रनिवास भी साथ जाता था। भूषण का वर्णन किसी ऐसी ही घटना का है जिसमें मुगलों को हारना पड़ा और रनिवास वालों को किसी जंगल-झाड़ी में भूख से व्यथित और कम वस्त्रों में रातें गुजारनी पड़ीं।

परवर्ती मुगलों के समय अवध के नवाबों में सआदत खां से अमेठी में गुरुदत्त सिंह (शासन १७४१-१७७४ ई.) को युद्ध में बीस पड़ने का रीतिकाल के सुविख्यात महाकवि उदयनाथ कवीन्द्र का यह पद प्रसिद्ध है-

समर अमेठी वो सरोस गुरुदत्त सिंह,

सादत की सेना समसेरन सों मानी है।
भनत 'कवीन्द्र' काली हुलसी असीसन को,
ईसन के सीस की जमाति हुलसानी है।
ताहाँ एक जोगिनी सुभट खोपरी लै उड़ी,
सोनित नियति, ताकी उपमा बखानी है।
प्यालो लौ चिनी को छकी जोबन-तरंग मानौ,
रंग हेत पीवति मँजीठ मुगलानी है।।

हमें अपना इतिहास सही रूप से उपस्थित करने के लिए ऐसी घटनाओं के अन्यान्य विवरणों को संज्ञान में लाना होगा और उनकी प्रामाणिकता के लिए शोध भी करना होगा। एक और बात बड़ी मजेदार है। शौनक के बृहद्देवता नामक ग्रन्थ का परिष्करण करते समय काशी के ही श्री रामकुमार राय (बृहद्देवता, हिंदी अनुवाद, वाराणसी,१९८९, भूमिका, पृष्ठ.क) ने मैक्डोनल की भारतीयता के विपरीत भावों को परखते हुए यह लिखने में तनिक हिचक नहीं की कि, जहाँ तक हिन्दी अनुवाद का प्रश्न है मैंने मैकडॉनेल के अंग्रेजी अनुवाद से कोई विशेष सहायता नहीं ली है क्योंकि मेरी समझ से उनका अंग्रेजी अनुवाद कहीं-कहीं भ्रामक और भारतीय आत्मा के विपरीत भी है। विदेशी शासकों ने अपना भरपूर इतिहास स्वयं लिखा, जैसे कि बाबरनामा, अकबरनामा, जहांगीरनामा आदि-आदि या अपने लेखकों द्वारा लिखवाया हुआ है।

तुलसीदास जी ने चुटकी ली थी इस प्रवृत्ति की कि साहित्यिक कला का यह कैसा दुरुपयोग है कि देवी सरस्वती भी अपना माथा पीट रही है--

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना
सिर धुनि लागि गिरा पछिताना।
(तुलसी कृत रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा १० ख के बाद चौपाई ७)

हम क्या उन्ही प्राकृत जन का इतिहास लिखते रहेंगे। भारत के आक्सफोर्डी या कैम्ब्रिजी इतिहास ने विदेशियों के इतिहास को भारत के इतिहास में घुसेड़ रखा है। इससे निजात मिलनी चाहिए। भारत के इतिहास की नई संकल्पना की जरूरत है।

राष्ट्र की अस्मिता और गौरव, जिसका भागीदार देश का हर भारतीय है, उसकी प्रतारणा के इतिहास लेखन की कोशिश न की जानी चाहिए। किसी वास्तु संरचना की रचना प्रक्रिया का इतिहास होता है उसके भभर कर गिरने का नहीं वह केवल एक घटना या दुर्घटना हो सकती है। मेरा अपना मानना है कि नगरों के पतन का इतिहास लिखने वालों का अब पतन होना चाहिए। भारत के हर उस वैभव का गान होना चाहिए जो विश्व के लिए एक मानक हो। हर खोज सतर्कता पूर्वक निष्पक्ष और वैज्ञानिक रूप से पुष्ट राष्ट्र के यश का गान हो कि हमारी कीर्ति की पताका फहरे जैसा कि अथर्ववेद के मन्त्रद्रष्टा ऋषि ने इतिहास को 'यशसा कीर्त्या सह' (अ.१०/६/२७)

दृष्टिगत किया था।

भारतीय इतिहास में शोध और इतिहास लेखन

शोध-कर्ता की पैनी दृष्टि ही उद्भूत प्रश्नों के समाधान निकाल पाती है। दो-एक उदाहरणों के माध्यम से समझे तो अच्छा होगा।

यहाँ हम रायबहादुर काशीनाथ दीक्षित जी का स्मरण करते है, जिन्होंने भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण का भार १९३७-१९४४ तक सम्हाला था और जॉन मार्शल उनके बाद आये। दीक्षित जी ने पुरातात्विक उत्खननों को मूर्त रूप में प्राप्त इतिहास कहा था।

काशीनाथ दीक्षित जी यह पहले इतिहासकार है जिन्होंने सिन्धु सभ्यता की विशाल वास्तु-संरचनाओ में प्रयुक्त ईंटों को कश्यप संहिता के विशेष सन्दर्भ से अधीत किया, जहाँ ईंटों के आकार-प्रकार लम्बाई, चैड़ाई, मोटाई के अनुपात [1:½:¼] दस अगुल, पांच अंगुल और ढाई अंगुल, वही थे, जो हड़प्पा सभ्यता में प्राप्त (11 इंच 5¼ या 5½ इंच एवं 2½ इंच) हुए थे और इस सम्बन्धानुपात से प्राप्त होने वाले संरचनाओं की सर्वाधिक मजबूती को निर्देशित किया था (Prehistoric Civilization of the Indus Valley. Madras, 1939. pp. 14-15)

P. 14 the true proportion of length, breadth and thickness as1:½:¼ which makes for an excellent bond. p.15. That this ideal proportion was not entirely forgotten is shown by the fact that a later text (*Kasyapa Samhita*) prescribes proportion of 10 fingers of length to 5 fingers of width and half of the latter for thickness

अंगुल प्रमाण आद्यतन त्रेता युग में ज्ञात था (मार्कण्डेय पुराण, ४९/३६ उपर्युल्लिखित)।

भारतीय परम्परा में पकाई हुई ईंट का सर्वप्राचीन उल्लेख शतपथ ब्राह्मण (पक्वेष्टका भूत्वाप्यपद्यत ताद्यदिष्टात्सम्भवस्तदिष्टकास्तस्मादग्निनेष्टकाः पचन्ति, ६/१/२/२२) में मिलाता है। इस सन्दर्भ में मन्त्र ८/ ७/२/१६ एवं १०/४/२/१९ भी द्रष्टव्य है, जिनमें ईंटों को पकाने की बात कही गई है और उस मन्त्र में भारद्वाज अग्नि का उल्लेख है जिससे ज्ञात होता है कि गृह-निर्माण के लिए ईंटों के पकाने की प्रविधि का आरम्भ भरद्वाज ऋषि ने किया होगा। ईंटों के परिमाप के सम्बन्ध में भी आरम्भिक जानकारी शतपथ ब्राह्मण से ही मिलाती है (८/७/२/१७) जिसमें ईंट की लम्बाई पाँव के बराबर कही गयी है और बड़ी ईंटों को जंघे की अस्थि के बराबर (उर्वस्थिमात्रि) कहा है। किन्तु, पकी ईंटों (इष्टकाश्च सुपक्या) के परिमाप के सन्दर्भ में अग्निपुराण (४१/२-३) १२अंगुल लम्बी (स्युर्द्वादशाङ्गुलसम्मिताः) और ४ अंगुल मोटी (स्वविस्तारत्रिभागेनवैपुल्येन्समन्विताः) होने का उल्लेख करता है और एक हाथ लम्बी शिला इष्टका को श्रेष्ठ बताया है (करप्रमाणा श्रेष्ठा)। पकी ईंट के लिये लम्बाई और मोटाई का स्पष्ट अनुपात ३:१ भी दिया गया है।

यह दुःखद है कि मुम्बई के विद्या भवन द्वारा रचे गए इतिहास की श्रृंखला के प्रथम भाग के सिन्धु घाटी की सभ्यता नामक नवें अध्याय में मोहनजोदड़ों के उत्खननकर्ता भी रहे काशीनाथ नारायण दीक्षित जो भारतीय

पुरातत्त्व सर्वेक्षण के १९३७-१९४४ तक महानिदेशक रहे, उनके १९३९ में प्रकाशित तथ्यों का सदुपयोग करना तो दूर सन्दर्भ तक नहीं लिया गया।

यहाँ सभी सन्दर्भ प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक प्रविधियों के ज्ञान की पुष्टि करते हैं, जो इतिहास लेखन में महत्त्व के साथ प्रस्तुत होने चाहिए। दीनदयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति विश्रुत इतिहासवेत्ता प्रो.विश्वम्भर शरण पाठक ने बुद्ध के महापरिनिर्वाण की तिथि अशोक के अहरौरा लघु शिलालेख के 'व्युथ' एवं विवास तथा संदर्भित संख्या २५६ के आधार पर ई.पू. ४८७-४८८ सुनिश्चित किया है (द्रष्टव्य Probes in to Indian Culture, Delhi, 2015, पृ. ११८-१३७)।

उन्होंने कालिदास के 'कपोलपाटनादेशि बभूव रघुवेष्टितम्' (४/६८) और मेहरौली लौह स्तम्भ में वाह्लीक विजय (तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोर्ज्जिता वाह्लिका) के आधार पर कालिदास द्वारा ग्रन्थ की रचना तिथि ४१० ई. निर्धारित की। यह सम्भव हुआ सासानी यज्दगर्द प्रथम (३९९-४२० ई.) के एक सिक्के पर ब्राह्मी लिपि के प्रयोग (Sasanian Coins, Furdoonjee D.J. Paruck Bombay, 1924, reprinted New Delhi, 1976). और तरमेज के खोआदेओ बौद्ध-विहार में गुप्तकालीन ब्राह्मी प्रभावित लेख 'माहेश्वर-धर्मस्य' की प्राप्ति और रघुवंश के विवरण 'तत्र हुणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रम' (४/६८) के शोधात्मक आलोडन से (द्रष्टव्य, Probes in to Indian Culture, Prof. V. S. Pathak Commemoration Volume, Delhi, 2015, पृ १४८-१५१)।

कालिदास को भारतीय परम्परा केवल कवि ही नहीं बल्कि एक इतिहासदर्शी के रूप में स्वीकारती है-

पठेत्समस्तान्किल कालिदासकृतप्रबन्धानितिहासदर्शी

इसी प्रकार आज के इतिहासकारों को यह भी बताना चाहिए कि ६ठी शती ई. में काबुल पर हिन्दू शाहि राजा तिगिन का शासन था, जिसके अग्निमूर्ति अंकित सिक्के भी मिले हैं, जिन पर ब्राह्मी अभिलेख में उसे 'पमेश्वर' उपाधिधारी कहा गया है। इतना ही नहीं उद्‌द्भाण्डपुर (ओहिन्द) के शासक कमलवर्मन के समय उसका प्रतिनिधि गजनी पर शासन कर रहा था (C. E. Bosworth, 'Notes on Pre- Ghaznavid History of Eastern Afghanistan, Islamic Quarterly, Vol. XI, 1965)। यह इतिहास की पुस्तकों में प्रमुखता से उल्लिखित करने योग्य है।

HINDU RULE AT GHAZNI

During the reign of KAMALAVARMAN, the Saffarid rule weakened precipitately and ultimately Sistan became a part of the Samand Empire. The disorder generally prevailed and the control of Zabulistan changed hands frequently. Taking advantage of the situation, the SHAHIS stepped up activites on their western frontier. The result was the emergence of a HINDU POWER at Ghazni, supported by the SHAHIS.

"The authorities either themselves of early date or enshrining early information mention "LAWIK" who was a Hindu as the ruler at Ghazni, before this place was taken over by the Turkish slave governor of the Samanids,

13.C.E. Bosworth, "Notes on Pre-Ghaznavid History of Eastern Afghanistan, Islamic Quarterly, Vol. XI, 1965. https://www.wikiwand.com/en/Hindu Shahi

दृष्टिकोण भेद से लिखे गए इतिहास का समाकलन और सुधार

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के चश्मे से भारत के इतिहास को जान-बूझ कर तोड़-मरोड करने वाले इतिहासकारों को क्या कहा जाय। उन्होंने सपने में भी न सोचा होगा कि कभी कलई खुलेगी तो क्या होगा।

सैन्धव सभ्यता की प्राप्ति के पूर्व साहित्यिक दृष्टि से प्राचीन भारतीय साहित्य विशेषतः वैदिक की अपनी व्याख्याओं के आधार पर आर्यों का भारतेत्तर देश खोजने का भरपूर प्रयत्न यद्यपि कभी सार्थक नहीं हुआ, परन्तु लिखाना और पढ़ाना तो उनकी मुट्ठी में था; अत: आर्य बाहर से आये, उनका रास्ता, उनकी भाषा का विकास आदि साम्राज्यवाद के इशारों पर परोसते रहे। मोहनजोदड़ो के एक घर में सामूहिक रूप से मृत लोगों के कंकाल मिलने को आधार बना कर आर्यों के आने और सिन्धु घाटी के लोगों से युद्ध की कल्पना को साकार रूप दे दिया गया। आर्य बाहर से आये तो कहीं से तो वेदों के अंश मिलने चाहिए थे, विश्व का सर्व प्राचीन ऋग्वेद तो भारत की ही थाती है।

विद्वानों के खेमों में यद्यपि आर्यों से जुड़ी यात्रा की विचारणा मांस-मज्जा हीन हो चुकी है किन्तु पुस्तकें सदाबहार हैं। भारत के इतिहास में इतने सारे शोध हो रहे हैं किन्तु इतिहास लेखन में उनका सदुपयोग नहीं हो रहा है।

भारतीय इतिहास लेखन

साम्राज्यवादियों का एक पड़ाव भारत पर सिकन्दरी दस्तक थी। सिकन्दर के लगभग ढाई सौ वर्ष बाद पहली शती ई.पू. के दो (जस्टिन, डायोडोरस) एवं परवर्ती काल लगभग तीन सौ वर्ष बाद ४१ई.-१८०ई. के तीन (कर्टियस, प्लूतार्क, एर्रियन) यूनानी लेखकों और इनमें भी सबसे परवर्ती एर्रियन को अधिक महत्त्व के आधार पर (J. W. McCrindle, Invasion of India by Alexander the Great as described by Arrian, Q.Curtius, Diodorus, Plutarch and Justin, Wesminster, 1893) ताना-बाना बुनते हुए भारत के गौरव और अस्मिता पर ठेस लगाने का सारा प्रयास किया गया। पूरे भारतीय इतिहास का लगभग एक चौथाई भाग, बमुश्किल ढाई-तीन वर्ष सिन्धु नदी के रास्ते घर लौटते सिन्धु-सागर संगम से मरुस्थल पार करते हुए मृत्यु को प्राप्त सिकन्दर के लिए विन्सेंट स्मिथ ने अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया (आक्सफोर्ड, १९०४) में ४२ से १०७ पृष्ठ तक के ६६ पृष्ठ, जो पूरी पुस्तक के कुल ३५७ पृष्ठ का १८.५% है, एलॉट कर दिए उसको जो भारत में कभी शासक नहीं बना। आदरणीय वृद्ध जन याद करें कि परीक्षाओं में सिकन्दर पर एक प्रश्न आना ही आना होता था। उस सिकन्दर का तोड़-मरोड़ कर रचा गया झूठा-सा इतिहास पढ़ना लाजिमी था।

डोयोडोरस की लेखनी से पुरु और सिकन्दर का इतिहास सिकन्दर की भारत से वापसी के 263 वर्ष बाद लिखा जाना आरम्भ होता है। मूल स्रोतों के अभाव एवं 263 वर्ष बाद इतिहास लिखा जाना आरम्भ होने और उसमें भी सिकन्दर के महिमा मण्डित किए जाने के तथ्य स्पष्ट ही संकेत करते हैं कि सत्यशः घटनाक्रमों का इतिवृत्त सम्भव नहीं, इसी कारण यूनानी इतिहासकारों के भारत सम्बन्धी अनेकशः विवरण ऐसे हैं जिसमें हूबहू मतैक्य नहीं है। वर्तमान में इतिहास की सत्यशः पुनर्रचना के लिए तथ्यों को छान कर उपस्थित करने का कार्य किया गया है।

बहुत विशद रूप से तो चर्चा सम्भव नहीं है किन्तु थोड़ी बानगी ली जाय। **'झेलम के तट पर सिकन्दर की हार'**

आरम्भ में लिखे गए सिकन्दर के इतिहास में १८८७ ई.में एक सिक्के की प्राप्ति से एक पुख्ता मोड़ आया (पर्सी गार्डनर, न्यूमिस्मैटिक क्रोनिकिल, भाग ७, १८८७, पृ. १७७-१८१) जिस पर हाथी पर दो सवार और पीछा करते एक घुड़सवार का अंकन था। फिर क्या था! हाथी पर पोरस (पुरु) युद्ध-स्थल से भागता हुआ और घोड़े पर सिकन्दर अथवा उसका कोई दूत सन्धि-प्रस्ताव हेतु। आधार के लिए यूनानी लेखक, उनमें भी उनके बयान की अहमियत वाले जो इतिहासकार की मंशा के अनुरूप हो; अतः बर्कले वी.हेड एवं विंसेण्ट ए.स्मिथ द्वारा सबसे परवर्ती काल के एर्रियन को चुना गया। लेकिन, सिकन्दर की विजय और पोरस का यूनानी विवरण का सन्दर्भ लेते हुए भी पर्सी गार्डनर ने सिक्के को इण्डो-ग्रीक्स एवं यूचियों से सम्बद्ध किया था --

Looking for the first time at this extraordinary coin, or rather medal--for it is clearly a historical monument--everyone will be tempted to exclaim, "Alexander and Porus!" I do Lot, however, believe that this is the correct explanation of the obverse type, though the true explanation is scarcely less interesting.

It would seem, then, to have been certainly issued in Bactria, and not in India p.179. Their physiognomy p. 180 is not Indian.

When Porus fled from the battle by the Hydaspes, Alexander sent many heroes to pursue him, but he does not seem to have been stopped p. 181 until he voluntarily surrendered to is fellow prince, Meroes.

There can be little doubt that this remarkable decadrachm was struck on the occasion of some notable victory won by a Greek King of Bactria over the invading hordes of Yueh-chi in the second century B.C.

These shreds of evidence, though their importance must not be exaggerated, seem to indicate that the issuer of the coin was Eucratides or Heliocles.

किन्तु बर्कले वी.हेड ने १९०६ ई. में गार्डनर के पोरस वाले सन्दर्भ को लेकर टिप्पणी में उनको अंकित

करते हुए (न्यूमिस्मैटिक क्रोनिकिल, १८०६, पृ.९) सिक्के को सिकन्दर का माना और पंजाब की ऐतिहासिक घटना से जोड़ा।

PAGE 9

Macedonian horseman driving before him a retreating elephant with its two riders, and on the other side a standing figure of Alexander holding a thunderbolt and wearing the *Persian* helmet and with in the field (Pl. I. 8), I have come to the conclusion that it belongs to Alexander's own time, and that it records the historical event of his invasion of the Panjab in 326 B.C., and that it was probably intended for

और बाद में जान-बूझ कर गार्डनर ने बिना सन्दर्भ के केवल अपने १९०६ का सन्दर्भ देते हुए १९११ में 'हिस्टोरिआ न्युमोरम' में बैक्ट्रिया एण्ड नार्थ-वेस्ट इण्डिया वाले अंश में पृ.८८२-८३३ पर केवल पोरस के मैदान से भागने का एर्रियन का विवरण प्रस्तुत कर दिया और एक ऐतिहासक घटना के मौद्रिक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया-

BACTRIA AND NORTH-WEST INDIA

It was not, however, until Alexander's culminating victory at the river Hydaspes over the Indian king Porus that any coins were issued in the far cast in the conqueror's own name. Perhaps the earliest of these is the following dekadrachm, which, as a numismatic record of acontemporary historical event, is of supreme interest:-

फिर तो विवरणों में कई हेर-फेर भी किये गए-

एर्रियन के झेलम-युद्ध के विवरण the Elephants --- did no less damage to their friends than to their foes (अध्याय १७, पृ. १०६ McCrindle, J.W., Invasion of India by Alexander the Great, Wesminster, 1893) जिसे विन्सेंट स्मिथ ने अपनी पुस्तक अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (१९१४, पृ.६१) में ज्यों का त्यों उद्धृत किया था

DEFEAT OF POROS- 61

"The elephants, he writes, 'being now cooped up with in a narrow space, did no less damage to their friends than to their foes, trampling them under thier feet as they wheeled. P-61

उसे अपनी दूसरी पुस्तक ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (१९१९, पृ. ६४) में हेर-फेर करते हुए 'the Elephants --- did more harm to their friends than to their foes' लिखा

The elephants on which Põros had relied proved unmanageable in the battle and did more harm to their friends than to their foes. P-64

जब कि उस समय की स्थिति एर्रियन के ही शब्दों में यह थी कि सिकन्दर की उस समय लड़ रही सेना थक कर चूर-चूर थी (Alexander's exhausted troops, उपरिउद्धृत, अध्याय १८, पृ.१०७। लेकिन, इस समय हम यहाँ सन्दर्भित सिक्के के पुरातात्विक प्रमाण की विवेचना तक ही अपने को विशेषतः सीमित कर रहे हैं।

स्मिथ ने हेड के विवरण (न्यूमिस्मैटिक क्रोनिकिल, भाग ६.पृ.१-१६) को ग्रहण कर अपने अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (ऑक्सफोर्ड, १९१४) के पृष्ठ ७२ एवं साथ के फलक पर प्रस्तुत किया और बाद में ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया (१९१९ ई) के संस्करण में पृष्ठ.६३ पर सिक्के को POROS MEDAL के रूप में लिया

Early History of India 1914 के भारतीय इतिहास के पूरे लेखन का कुल २०% अंश सिकन्दर को अर्पित किया गया और दूसरे अध्याय का नाम Dynasties before Alexander एवं बाद के दो अध्याय तीन तथा चार में सिकन्दर का विवरण यथा विस्तार से रखा था। इसी क्रम में १९२२ की Cambridge History of India में E. J. Rapson के सम्पादकत्व में ४६ पृष्ठों का अध्याय पन्द्रह का शीर्षक Alexander the Great रखा गया।

स्मिथ के भारत के इतिहास लेखन में उनके कुटिल भाव की आलोचना प्रसिद्ध भारतीय इतिहासकार जयचन्द्र विद्यालंकार ने अपनी पुस्तक भारतीय इतिहास की रूपरेखा (इलाहाबाद, १९३३, पृष्ठ १० एवं आगे) बहुत बारीकी से किया है-

'एक दूसरा ही प्रमुख सुर सुनाई देता है। उस की दृष्टि भी अत्यन्त संकीर्ण है। इसी कारण अनेक भारतीय विद्वानों को स्मिथ का प्रतिवाद करना पड़ा है।'

स्मिथ की आलोचना विनय कुमार सरकार, काशीप्रसाद जायसवाल, रमेश चन्द्र मजुमदार तथा देवदत्त भण्डारकर जैसे इतिहासकारों ने भी की है।

१९२२ ई.की कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया भाग-१ में प्रसिद्ध मुद्राशास्त्री ई.जे.रैप्सन के सम्पादकत्व में ज्यार्ज मैक्डोनल्ड ने गार्डनर और बी.वी.हेड दोनों के मन्तव्यों को सन्दर्भ में लेते हुए दुर्भाग्यवश बर्कले वी.हेड की बात को ही तरजीह दिया

In spite of certain features which are not altogether satisfactory, the genuineness of the coin has been unhesitatingly accepted by Head and Gardner, and from such experienced judges it would be very rash to differ. Gardner, who was the first to publish it (N.C., 1887, p. 177), was disposed to give it to Bactria and to connect it with 'some notable

victory won by a Greek King of Bactria over the invading hordes of Yuch-chi in the second century B.C. Head, on the other hand, comes to the conclusion, 'after a careful study of the fabric ... that it belongs to Alexander's own time, and that it records the historical –p. 389

Ancient Greek Coins in India (CH, XV)

Event of his invasion of the Punjab in 326 B.C. He sees in the standing figure a representation of Alexander as Zeus, while he puts forward the interesting suggestion that the lance is being wielded, not by the horseman, but by the rearmost of the two elephant-riders, and that consequently the scene depicted is the retreat of Porus and his pursuit by Taxiles, exactly as recorded by Arrian-p. 390

और इसके विशेष अध्ययन के लिए सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची में पृष्ठ ६७६ पर बी.वी.हेड को ही प्रधानता दिया-

For the most comprehensive discussion of the whole subject see B.V. Head, Num. Chron., 1906, pp. 1 ff., and Historia Numorum, 2nd edn., pp. 832 ff.

ई.जे.रैप्सन ने इसी समय अपना ब्रिटिश पक्ष लेते हुए यूनानी को यूरोपियन लिखना शुरू किया।

हेड एवं स्मिथ व रैप्सन की कुटिलता पर ध्यान प्रखर राष्ट्रीय इतिहासकार जयचन्द्र विद्यालंकार भी संयोगवश नहीं दे पाए (इतिहास प्रवेश, इलाहाबाद, १९३९, पृ ४७-४८.एवं भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जिल्द-२, १९४२, इलाहाबाद, पृ. ६१६-६१७)।

इस प्रकार १९०६ में दिया गया बर्कले वी.हेड का मन्तव्य विन्सेण्ट ए.स्मिथ द्वारा १९१४ के दुरभि समर्थन के साथ ६० वर्षों से अबाध गति से चलता चला आ रहा था। वर्ष १९६६ में शंका उपस्थित करते हुए (पोरस, वाराणसी, १९६६, लेख १९६३ में लिखा गया था उपमा (मासिक पत्रिका), कानपुर, वर्ष १, अंक १०, पृ. १४-२९) और १९७१ में सिक्के के अंकन के पहचान विवरण पर मैंने आक्षेप किये (जर्नल आफ दि न्यूमिस्मैटिक सोसाइटी आफ इण्डिया, १९७१, पृ.१-७)। सिक्के पर अंकित-युद्ध पोरस और सिकन्दर के बीच हुए युद्ध को नहीं दर्शाता, ऐसा ही अपना मत मेरे तथ्यों के आधार लिए जैसी ही १९७५ में माइकेल मिशिनेर ने की है (Mitchiner, Michael, Indo-Greek and Indo-Scythian Coinage, Volume 1: The Early Indo-Greeks and their Antecedents- Hawkins Publications London, 1975, pp.8-9) लेकिन, फ्रेंक ली हॉल्ट से परिणामत मुझे भला-बुरा भी सुनना पड़ा और उल्लेखनीय यह कि मैंने अपनी बात केवल राष्ट्रीयता के प्रति मोह (nationalistic attempt) के कारण लिखा है (अलेक्जाण्डर दि ग्रेट एण्ड मिस्ट्री आफ एलिफैण्ट मेडेलियन, कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी प्रेस, २००३, पृ.७२)। शैलेन्द्र भण्डारे ने तो मेरे मुद्राशास्त्र के ज्ञान पर ही धावा बोल दिया (Bhandare, Shailendra, Memory as History: the Legacy of Alexander in Asia,, ed. H.P.

Ray and D.T. Potts, New Delhi, 2007, p. 216)। मैंने अपने अध्ययन के आधार पर सन्दर्भित सिक्के पर अंकित युद्ध को पौरव राजा की भूमि से इतर स्थान का बताया साथ ही यह सम्भावना व्यक्त की थी कि यह गागमेला का युद्ध हो सकता है, क्योंकि उस युद्ध में दारा की सेना में १५ हाथी प्रयुक्त हुए थे और वह हारा था तथा मृत्यु को भी प्राप्त हुआ (यह हॉल्ट भी मानते हैं, उपर्युध्दृत, पृ.७२ यद्यपि वे इन्हें पुरु के हाथी नहीं मानते, क्योंकि एर्रियन [३/८/६] इन्हें सिन्धु नदी के पश्चिम से आया कहता है, हॉल्ट यह नहीं सोचते कि आखिर कहाँ से आये होंगे।। पुरु ने भेजा यह उल्लेख शाहनामा में तो है)।

परन्तु, अब तो यह स्पष्ट सिद्ध है कि सन्दर्भित सिक्के के अंकन में हाथी की पीठ पर बैठे महावत के अतिरिक्त व्यक्ति राजा पुरु नहीं है। यूनानी लेखक कर्टियस का यह कथन मिल गया है कि पोरस युद्ध में अपने हाथी पर हौदे में बैठा था (मैक्रिण्डल, ऊपरोल्लिखित, पृष्ठ २१३, कर्टियस की पुस्तक ८. अध्याय १४, 'Porus was placed upon a waggon. यह waggon राजा का हौदा होता था, पृष्ठ १८९, कर्टियस की पुस्तक ८ अध्याय ९ 'he (i-e-king) rides in a chariot (howdah) mounted on elephants')। सिक्के के चित्र में हौदा तो है ही नहीं।

सिक्के पर हाथी के सवार हाथी की खाली पीठ पर बैठे हैं। यह तो नहीं माना जा सकता कि स्मिथ कर्टियस को न पढ़ा रहा हो, क्योंकि उसके सन्दर्भ उन्होंने अपनी पुस्तक में दिए हुए हैं। स्पष्ट ही स्मिथ ने सत्य को जान-बूझ कर छुपाया था। सिकन्दर की वापसी पुरु के युद्ध के बाद ही होती है ऐसा प्लूटार्क ने लिखा है (अन्यान्य यूनानी लेखकों की सिकन्दर के व्यास तक जाने और फिर पुरु के यहाँ लौट कर वापसी की बात कल्पनामय है।) सिकन्दर की वापसी को हार कहते हुए स्वीकारता है।

PLUTARCH'S LIFE OF ALEXANDER

(J. W. M'crindle, 1893)

309 Chapter LXI. After the battle with Poros, 310 Chapter LXII- The army refuses to advance to the Ganges-Alexander, preparing to retreat The battle with Poros depressed the spirits of the Macedonians, and made them very unwilling to advance farther into India. only to 20,000 infantry and 2000 cavalry, they now most resolutely opposed Alexander when he insisted that they should cross the Ganges. Alexander regarding a retreat as tantamount to a confession of defeat. But being swayed by the persuasions of his friends, and the entreatics of his soldiers who stood weeping and lamenting at the door of his tent, he at last relcnted, and prepared to retreat.

311 Chpter LXIII.-Alexander starts on a voyage down stream, reducing tribes by the way- He is dangerously wounded in the capital of the Malloi-Extraction of the arrow

from his wound--His recovery.

ध्यान देने की बात यह भी है कि स्मिथ ने १९१४ के अपने भारत के इतिहास में ६०० ई.पू.से ११७४ तक के हिन्दू इतिहास के १५७४ वर्ष के लिए कुल ४५२ पृष्ठ दिये और सिकन्दर के लिये हिन्दूकुश पार करने से लेकर पुरु से युद्ध के बाद झेलम के रास्ते वापसी तक के कुल सवा साल के लिए ६६ पृष्ठ, जो कुल लिखे गए इतिहास का लगभग १५% है इसे कालक्रम के हिसाब से देखें तो १५७४ वर्ष के सामने १.२४ वर्ष मात्र ०.०७८४ है।

दूरदर्शन के नेशनल चैनल पर २४ नवम्बर २०१७ को मैंने एक कार्यक्रम में स्मिथ के इस कारनामें को लोगों में प्रसारित भी किया किन्तु इतिहास की किताबों में कैसे और कब आएगा कोई नहीं जानता।। विद्यार्थियों के लिए इतिहास की पुस्तकें बदली जानी चाहिये और तदर्थ भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद् को भी उद्यम करना चाहिए। अब अन्यान्य विद्वान भी मानने लगे है कि सिकन्दर जीता नहीं था।

Buddha Prakash, History of Poros (Patiala: Punjabi University Press, 1967). Like Prakash, B.C. Sinha, in Studies in Alexander's Campaigns (Varanasi: Bhartiya Publishing House, 1973), believed that Porus had not lost the battle against Alexander.

सिकन्दर हारा था और प्लूटार्क के अनुसार हार मानते हुए पुरु से युद्ध के उपरान्त ही वापसी किया था।

मौर्य काल का अप्रतिम चमक और भारत की निजी तकनीकी

एक और महत्वपूर्ण बात। जॉन मार्शल ने कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, (सम्पादक ई.जे.रैप्सन, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, १९२२)के पृष्ठ ६२१ पर मौर्य युगीन स्थापत्य एवं प्रस्तर मूर्तियों की चमकदार पॉलिश में फारसी प्रभाव घोषित कर दिया। यह भारतीय कला के इतिहास का काला पन्ना है।

THE BLACK PAGE

It was in Persia, also, that the bell-shaped capital was evolved. It was from Persian originals, specimens of which are still extant in the plain of the Murghab at Istakhr, Naksh-i-Rustam, and Persepolis, that the smooth unfluted shafts of the Maurya columns were copied. It was from Persin, again, that the craftsmen of Açoka learnt how to give so lustrous a polish to the stone a technique of which abundant examples survive at Persepolis and elsewhere.- Cambridge History of India, Vol. I, ed. E.J. Rapson, 1922, Chapter XXVI, 1. Marshall, p. 621

THIS HAD BEEN DELIBERATELY FOLLOWED BY SCHOLARS WITHOUT PROPER INVESTIGATIONS

आज तक ज्यों का त्यों इतिहास ग्रंथों में यह पढ़ाया जा रहा है जबकि वासुदेव शरण अग्रवाल ने आपस्तम्ब-श्रोतसूत्र (१५/३/१५) के उद्धरण –

श्लक्ष्णीकरणौः श्लक्ष्णीकुर्वन्ति
पात्रस्य जर्जराणि कुर्वन्ति तदहैर्द्रव्यैः। कानि पुस्तानि।।

के साथ सूत्र १५/३/१६ भी महत्वपूर्ण है, जिसमें गविधु नाम के सस्य एवं मधूक नामक यष्टि के प्रयोग उल्लिखित हैं-

अहतचणडातकैर्गवीधुकैः कृतिकाभिर्वेणुपवेभि-राज्येनेति । १६ ।

अहतं नवं चणडातकं वरस्त्रीवसनीयो वासोविशेषः। गवीधुका नाम सस्यानि। कृतिका यष्टिमधुकमिति नैघण्टुकाः ।।

जैन औपपातिक सूत्र में पूर्णभद्र चौत्य के प्रकार की चमकीली ओप का वर्णन मिलाता है (औपपातिक-सूत्र-२/१० [मिश्रीलाल सम्पादित] णिद्धघणे, अट्ठसिरे आयसयतलोवमे के स्निग्ध और आदर्शतलोपम (स्त्रिग्ध एवं दर्पण की भाँति चमक वाला शिलापट्ट)तथा णिद्धे, णिद्वोभासे अर्थात् स्निग्ध एवं स्त्रिग्ध-आभास (स्निग्ध-चिकनी, स्निग्ध आभामय)(औपपातिक-सूत्र- ३ [(पृष्ठ १३) अमरमुनि सम्पादित]) और बृहत्कल्प-सूत्र ४७१ से आगे ओप सम्बन्धी विवरण है जिसमें श्लोक ४७४ में घट्टण का उल्लेख तकनीकी प्रक्रिया की दृष्टि से द्रष्टव्य है -

रहपडण उत्तमंगादिभंजणा घट्टणे य करघातो।
अह आयविराहगया, लक्खुल्लिहणे पवयणम्मि ।।४७४ ।।

वृहन् कल्पसूत्र भाष्य (गाथा ४७१-४७२) में चिकना और चमक लाने की विधि घाठा मारने जैसी कलात्मक रचनाओं की पद्धति का संकेत किया है (*Indian Art, Varanasi, 1965, Vol. I, p. 86-88, 108; Studies in Indian Art, Varanasi, 1965, pp. 69 and 73*; भारतीय कला, वाराणसी, १९६६, पृ. १४४-१४६; The Wheel Flag of India Chakra-dhvaja, Prithivi-Prakashan, Varanasi, 1964, p.3)। औपपातिक सूत्र-१६६(दूसरे संस्करण में सूत्र- १६५)में भी आदर्शतलविमल [आयंसतलविमल), श्लक्ष्णा [सण्हा], घृष्ठा मृष्ठा (घट्ठा, मट्ठा] एवं सुप्रभा [सुप्पभा] जैसे शब्द प्रयुक्त है। बृहत्कल्प-सूत्र (४६१-५२८) में विशद रूप से पात्र लेप निरूपण सम्बन्धी विवरण दिया है। इङ्गुदी के तेल से रगड़ने की खास तकनीक से वह अप्रतिम चमक आती थी इस बात की जानकारी प्रस्तुत लेखक ने कालिदास के शकुन्तला नाटक में सन्दर्भित श्लोक के आधार पर दिल्ली के इण्डोलॉजी फाउण्डेशन के वैश्विक मंच से प्रसारित की है (दिनांक २१ मई २०२०)

प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलमिदत्रः सूच्यान्त इवोपलाः (अंक १, श्लोक १४)

[महाराज दुष्यन्त के माध्यम से कहलाया गया है कि] इङ्गुदी (हिंगोट) के फल को कूटने से शिला-तल चिकने हो जाते थे। स्पष्ट ही इसी कारण से रत्नमाला नामक ग्रन्थ में इङ्गुदी को ज्योष्मती वृक्ष की संज्ञा दी गई है

(शब्दकल्पद्रुम, भाग १, पृ.२०४। देखना है इतिहास ग्रन्थों में कब वह काला-पन्ना श्वेताभ हो पाता है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के महरौली लौह स्तम्भ लेख में 'तीतर्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोर्ज्जिता वाह्लिका' उल्लिखित सात नदियों में कौन सी होनी चाहियें। सरस्वती, व्यास, रावी, सतलज, चिनाब, झेलम, सिन्धु, अथवा गंगा, यमुना, नर्मदा, कावेरी, गोदावरी, सरस्वती, सिन्धु।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के दक्षिण के अभियान 'यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिवर्वीर्य्यानिलैर्द्दक्षिणः' को ध्यान में रखते हुए नदियों के दूसरे वर्ग -

गंगे ! च यमुने ! चैव गोदावरी! सरस्वति!
नर्मदे ! सिन्धु ! कावेरि ! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

को लिया जाना उचित लगता है। इस प्रकार पाटलिपुत्र से चल कर दक्षिण और फिर पश्चिमोत्तर में गए चन्द्रगुप्त द्वितीय। यह वही चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य हैं जिन्हें राम-जन्मभूमि पर मन्दिर की रचना का श्रेय अयोध्या की जनश्रुति में स्थापित है। उनका एक सिक्का भी राम-जन्मभूमि मन्दिर के पुरातात्विक उत्खनन (संक्षिप्त विवरण- २००३, उच्च न्यायालय इलाहाबाद, लखनऊ पीठ, निर्णय २०१०) से प्राप्त हुआ है -

भारतीय इतिहास में संवत् प्रयोग

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.आर.टी.) की भारत के इतिहास की छठी कक्षा की पुस्तक में (पृष्ठ 8) विद्यार्थियों को शैशवावस्था में ही अंग्रेजी में बी.सी.(हिन्दी में ई.पू.) का तात्पर्य बिफोर क्राइस्ट (ईसा पूर्व) होता है फिर ए.डी.एनोडोमिनी और बी.सी.ई.तथा सी.ई.समझाया गया है। और उसमें भी यह समझाना कि इसका तात्पर्य ईसा मसीह के जन्म से है अर्थात् भारतीय इतिहास के तिथिक्रम को ईसाइयत के ढाँचे में ढाल कर परोसा गया है। ताना-बाना में यह हाल है तो इतिहास की पुनर्रचना में उन इतिहासकारों ने क्या-क्या गुल खिलाये! यह पर्यवेक्षण का विषय बन चुका है।

भारतीय इतिहास की रचना अपनी माटी, अपनी संस्कृति व अपने चतुर्दिक् देश की काल गणना की पद्धति में करनी चाहिए। देश में प्रयुक्त कई सम्वतों में से चुनाव करना पड़ेगा - विक्रम और शक सम्वत् अधिक प्रचलित है। इन दोनों में से चुनना पड़े तो मैं विक्रम सम्वत् चुनूँगा, शक सम्वत् मुझे परदेशी लगता है।

इतिहासकार कल्हण ने १२वीं शती में अपने राजतरंगिणी के लिए कलि या युधिष्ठिर सम्वत् का प्रयोग किया था। वस्तुतः भारतीय काल-गणना के लिए तो प्राचीनतर सम्वतों - सृष्टि सम्वत् - पृथ्वी के प्रादुर्भाव से लेकर मनुष्य के प्रागैतिहासिक कथानक और फिर सप्त वा नव-द्वीपी धरा के जम्बूद्वीप में आर्यावर्त और भरतखण्ड का इतिहास लिखिये! इतिहास के कालक्रम के लिए ऐसा कालनिर्धारण संसार की किसी परम्परा में प्राप्त नहीं है। पौराणिक परम्परा में उसका निर्वहन किया गया, किन्तु आज की वैज्ञानिक गणना के हवाले से उसे फिर से समुन्नत करना चाहिए। पौराणिक कह कर हमें बहुत बरगलाया गया। हमें अपने इतिहास को पुनर्जीवित करना है। इस लक्ष्य को ले कर हमें नई उद्भावनाएँ देनी होंगी।

इतिहास को मानव रूप में सूकरमुख कहा गया है (इतिहासः कुशाभासः सूकरास्योमहोदरः- श्रीतत्त्वनिधि, ब्रह्मनिधि, ६५)। सृष्टि-संवत् का प्रारम्भ श्वेतवाराह कल्प से होता है। वराह जिसने पृथ्वी का उद्धार किया। इतिहास का आरम्भ उसी यज्ञ-वराह से होता है। ऋग्वेद में वराह (१/८८/५, ८/७७/१०, १०/२८/४) वर्षा के मेघ १०/९९/६ व सोम १०/९७/७ के माध्यम से वर-आहर्ता के रूप में सौभाग्य का प्रतीक बना (विकिपीडिया)। निरुक्त ५/४ में 'स्वसराणि' के रूप में दिन को गति देने वाला है इसलिए इतिहास से जुड़ता है।

हमारे इतिहास का परिप्रेक्ष्य ईस्वी या हिजरी नहीं है, जिन देशी या विदेशी को भारतीय इतिहास का अवगाहन करना हो तो हमारे सृष्टि सम्वत् से अपनी गणना कर लें। हमारे इतिहास की उन्हें आवश्यकता होगी तो वे हमारे सृष्टि सम्वत् को समझने का प्रयास करेंगे। हमारी काल की लकीर इतनी बड़ी है कि उसके नीचे उन्हें आना ही पड़ेगा।

भगवद्दत्त जी ने आदि-युग से गुप्त साम्राज्य के अन्त तक का इतिहास ग्रन्थ भारतवर्ष का बृहद इतिहास (दिल्ली, १९५१ ई.) भारतीय तिथि-क्रम से लिखा है। भगवद्दत्त जी ने कारण बताते हुए यूनानी लेखकों के एण्ड्रोकोट्टस अथवा सेण्ड्रोकोट्टस को चन्द्रगुप्त मौर्य और मेगस्थनीज के पॉलिब्रोथा को पाटलिपुत्र नहीं माना है (पृ.३०१ एवं आगे) उसे क्रमशः चन्द्रकेतु एवं पारिभद्रक पहचाना है जो प्रयाग और मथुरा के मध्य की भूमि थी (पृ. ३०८ एवं आगे)। भगवद्दत्त जी ने कहा है कि, 'वस्तुतः सत्य मार्ग एक ही है। भारतवर्ष के पुरातन इतिहास के श्रृंखला बद्ध करने में संस्कृत और पाली-प्राकृत आदि ग्रन्थों की ऐतिहासिक सामग्री ही प्रधान रूपेण सहायता देती है। उसकी अवहेलना, जो मुख में बिना लगाम दिए की गई, पापकर्म था। रामायण, महाभारत, और ब्राहाण ग्रन्थों आदि की सूचियों से काम चलाने वाले ऐतिहासिक अध्यापकों का युग आ गया।

एक मुहिम के साथ हमें अपनी धारा को आगे बढाते हुए भारतीय इतिहास की रचना करनी पड़ेगी और वह इतनी सही व मजबूत हो कि लोगों को मानना ही पड़े। एक उदाहरण दूँगा -

राय बहादुर पण्डित गौरी शंकर हीराचन्द ओझा ने अपनी 'प्राचीन भारतीय लिपिमाला' हिन्दी में लिखी (१८९४ ई., पुनर्संशोधित १९१८ ई.),अंग्रेजी में उसके अनुवाद की अनुमति कभी नहीं दी। अभी हाल में श्रीकृष्ण जुगनू ने उसे संवर्धित करके पुनर्प्रकाशित किया है (डी.के.एजेंसीज, नई दिल्ली, २०१६)।

भारतीय लिपि-शास्त्र को अधीत करने के लिए लोगों को हिन्दी सीखनी पड़ी थी और हम है की आज भी ब्युलर ब्युलर करते रहते हैं। हम यहाँ हिन्दी, बंगला, मराठी, कन्नड़ की बात नहीं कर रहे हैं, हम बात कर रहे हैं भारतीयता की भारतीय पद्धति की----- काम करने के लिए एकला चलना पड़ेगा।

पुस्तकों के नामकरण में सतर्कता जरूरी

इधर मैंने इतिहास की एक किताब देखी "Tribal India'' नदीम हसनैन (२००७) की मुझे एक दूसरी कृति 'A Tribal History of Ancient India' कल्याण कुमार दासगुप्त (१९७४) का भी ध्यान आता है। ऐसे लेखन मेरी दृष्टि में भारतीय इतिहास को मलीन करने का प्रयास है। "Tribes of India' और 'A History of the

Tribes of Ancient India' पुस्तक का नाम रखते तो क्या हर्ज था!

उपसंहार

इतिहासकार जयचन्द्र विद्यालंकार का सन्देश

इतिहास के मूल्यबोध की दृष्टि से विश्रुत इतिहासकार जयचन्द्र विद्यालंकार, (जिन्होंने भारतीय इतिहास परिषद् नामक संस्था खड़ी की थी और भारतीय दृष्टि से समस्त अध्ययन को आयोजित करना उनका उद्देश्य था, जिसमें डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का भी सहयोग था।) के इस उद्धरण के साथ अपनी वाणी को आप तक पहुँचाता हूँ--

घटनाओं का संग्रह इतिहास नहीं है। यह इतिहास लेखन की प्रक्रिया मात्र है। घटनाओं के माध्यम से मानव के विकास और उसकी मानवता का सार्थक ज्ञान ही इतिहास है। इतिहास पाँचवाँ वेद है। घटनाओं का मूल्यगत आकलन इतिहास में छिपा हुआ ज्ञान है। इतिहास को जीने वाला व्यक्ति या व्यक्ति-समूह वर्त्तमान के माध्यम से इति की ओर बढ़ता है और जीने के मूल्यों के पहचानने तक काल-गत (समय के गर्भ में) हो जाता है, किन्तु जो इस अतीत को अतीत-पूर्व ही देख लेता है, वह दृश्य ही इतिहास है। उसे देखने वाला इतिहास-पुरुष है। मनुष्य माया-मोह में मूल्यबोध नहीं कर पाता इसलिए क्रमशः अवनति होती है और उसकी पराकाष्ठा पर ईश्वर का अवतार होता है। दो उदाहरण महत्वपूर्ण हैं। श्री कृष्ण ने आगे घटने वाली घटनाओं को बीती हुई घटनाओं के रूप में दिखाया। गौतम बुद्ध ने अपने पूर्व जन्मों के जीवन व घटनाओं को समय-समय पर याद करते हुए 'जातक' कथाओं के माध्यम से लोगों को शाश्वत-मूल्यों का बोध कराया। इतिहास और पुराण में भी ऋषियों ने यही किया है। भविष्य की भाषा में इतिहास लिखा गया। शाश्वत मूल्यों की स्थापना के लिए।

इतिहास का अर्थ- "इतिहास राष्ट्र का आत्मपर्यवेक्षण, आत्मानुचिन्तन, आत्मस्मरण और आत्मानुध्यान है" वह अतीत की ज्योति से अपने वर्तमान स्वरूप को पहचानने और भविष्य के मार्ग को उजियारा करने की चेष्टा है। राष्ट्र की आत्मानुभूति अपने इतिहास के स्मरण द्वारा होती है। संसार की जीवनधारा में किसी राष्ट्र के लोग अपना यथोचित कार्य कर सकें, इसके लिए यह आवश्यक है कि वे ठीक ऐतिहासिक दृष्टिक्रम से अपनी स्थिति को देखें पहचानें।

(इतिहास-प्रवेश प्रस्तावना १६५६-५७ पांचवां सस्करण)

●●●

अध्यात्म का राष्ट्रीय योगदान

डॉ. प्रमोदकुमार दुबे[1]

सारांश

भारतीय ज्ञान परंपरा में विद्या और अविद्या दोनों का वर्णन प्राप्त होता है। इतिहास साक्ष्य है कि अविद्याजन्य भौतिक समृद्धि और राज वैभव के लिए द्वन्द्व होता है, सुखभोग की लालसाएँ संघर्ष करती हैं। अविद्या से भौतिक सुख-समृद्धि मिलती है। भौतिक समृद्धि का कारक अर्थ तंत्र है। आध्यात्मिक ज्ञान को विद्या कहा गया और भौतिक ज्ञान को अविद्या। भारत की वैश्विक भूमिका नई नहीं है। केवल अध्यात्म के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि, भारत के आर्थिक इतिहास से ज्ञात होता है कि विश्व भर में भारत का वाणिज्य फैला हुआ था, कई भूखण्डों में भारतीय मूल के राजा प्रजापालन कर रहे थे। भारत में अनेक शताब्दियों से आक्रांताओं के विरुद्ध रक्षात्मक संघर्ष और रचनात्मक कार्य दोनों ही मोर्चों पर अध्यात्म ने निरंतर योगदान दिया है। भारत के राजेतिहास की पृष्ठभूमि में आदि युग से सर्वतंत्र स्वतंत्र आध्यात्मिक चेतना सक्रिय भूमिका निभाती रही है। वेद त्रयी से धर्म, अर्थ और काम का त्रिवर्ग नि:सृत हुआ है। वस्तुतः धर्म भौतिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के मध्य का सेतु है। अपने संतों के संघर्ष का सार-संक्षेप विवरण कालक्रम से देखना चाहिए, इससे इतिहास के सापेक्ष अध्यात्म के राष्ट्रीय योगदान के इतिहास की एक झलक मिल सकती है।

मुख्य शब्द *– विद्या, अविद्या, आध्यात्मिक, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, उपनिषद् , धर्म, त्रिगुण, एकात्म, इतिहास, आर्थिक, आक्रांता, आचार्य, भक्त*

ईशावास्योंपनिषद ने विद्या और अविद्या दोनों को उभय रूप से उपासने का आदेश दिया है।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयः सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥11॥

आध्यात्मिक ज्ञान को विद्या कहा गया और भौतिक ज्ञान को अविद्या। अविद्या से भौतिक साधन अर्जित कर मृत्युदायी अभावों को पार करने का परामर्श दिया गया और विद्या से अमरता प्राप्त करने का परामर्श। ये दोनों ज्ञान धाराएँ एक- दूसरे की पूरक हैं, परस्पर विपरीत और विरोधी नहीं।

अविद्या से भौतिक सुख-समृद्धि मिलती है। भौतिक समृद्धि का कारक अर्थतंत्र है। अर्थतंत्र को फलित करने के लिए विकास, सुरक्षा, संसाधन, श्रमनियोजन, उत्पादन, वाणिज्य प्रबंधन आदि आवश्यक है। इन सभी कार्यों की व्यवस्था राज्य करता है, इसीलिए राज्य को अर्थ मूल कहा गया- अर्थस्य मूलं राज्यम्[2]। राज्य व्यवस्था

1. भाषाविद्, सेवानिवृत्त आचार्य एन.सी.ई.आर.टी., (रामकुटी, सी-3115 ग्रीनफील्ड कालोनी,फरीदाबाद- 121010,दू.-8368930736, 9810780771)
2. चाणक्य-सूत्र-3

पार्थिव सुख के लिए होती है। राज्य का आधार त्रिवर्ग है। त्रिवर्ग बनता है धर्म, अर्थ और काम से। इसके मूल में त्रयी है। त्रयी वेद है।

मुण्डकोपनिषद ने वेदों और षड्शास्त्रों को अपरा विद्या कहा है- तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्ववेदः ....।[3]

जिस विद्या से उस अक्षर परमात्मा का ज्ञान होता है वह परा विद्या है- अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।[4]

ईशावास्य ने जिस ज्ञान को विद्या कहा, उसे ही मुण्डक ने परा विद्या कहा और जिस ज्ञान को ईशावास्य ने अविद्या कहा, उसे ही मुण्डक ने अपरा विद्या कहा। वेद त्रयी से धर्म, अर्थ और काम का त्रिवर्ग नि:सृत हुआ है। त्रिवर्ग पर राजसत्ता आधारित है, जिसका उद्देश्य पार्थिव सुख है। त्रिवर्ग के प्रथम अंग धर्म को सुख का मूल कहा गया है- सुखस्यमूलं धर्मः ।[5] वस्तुतः धर्म भौतिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के मध्य का सेतु है। यही त्रिगुण के पार विद्या की ओर प्रवृत्त कर अमृत की प्राप्ति करवाता है। धर्म ही लोक को धारण करता है- धर्मेण धार्यते लोकः[6], धर्म की ग्लानि से लोक संत्रस्त होता है। विद्या की उपासना से धर्म की स्थापना होती है। विद्या एकात्म दृष्टि देती है, जिससे प्राणि मात्र के प्रति दया उत्पन्न होती है। दया ही धर्म की जन्मभूमि है- दया धर्मस्य जन्मभूमिः।[7] दया से दाय और दायित्व बोध उत्पन्न होता है। यही धर्म में चरितार्थ होता है। दया रहम या मर्सी नहीं है, कर्तव्य की प्रेरक शक्ति है। यही कारण है कि विद्या उपासक लोक-दायित्व का वहन करते हैं, लोक-कल्याण में प्रवृत्त होते हैं।

इतिहास साक्ष्य है कि अविद्याजन्य भौतिक समृद्धि और राज वैभव के लिए द्वन्द्व होता है, सुखभोग की लालसाएँ संघर्ष करती हैं। राजाओं में परस्पर युद्ध होता है और दुर्बल दशा में बाह्य शत्रुओं के आक्रमण से राष्ट्र पराधीन हो जाता है। जन जीवन के पोषक धन-साधन पर शत्रुओं का अधिकार हो जाता है। लेकिन, विद्याजन्य अमृत तत्त्व कभी पराधीन नहीं होता, कभी क्षरित नहीं होता। यह अक्षर ब्रह्म है। यह नित्य है। यही नित्य स्रोत नवीन का पुनर्सृजन करता है। यह ब्राह्मी सत्ता है। मुण्डकोपनिषद कहता है कि देवताओं से पूर्व सर्वप्रथम उत्पन्न विश्व सर्जक और त्रिभुवन के रक्षक ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को समस्त विद्याओं को प्रसूत करनेवाली ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया -

ओम् ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वायज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥1॥ (खं.1, मु.1)।

विद्या एवं अविद्या दोनों की उभय उपासना से व्यक्ति और राष्ट्रजीवन उभय रूपेण सर्वसमृद्ध, सशक्त, अजेय और पूर्णकाम होते हैं।

जब-जब भारत पर दुर्दिन की काली घटाएँ छायीं, अविद्याजन्य भौतिक समृद्धि पराधीन हुई, विद्याजन्य

3. मुंडकोपनिषद-॥5॥ (खं.1, मुं.1)
4. वही
5. चाणक्य सूत्र-3
6. चाणक्य सूत्र- 234
7. चाणक्य सूत्र- 236

अमृत के उपासक वीतराग महात्माओं ने राष्ट्ररक्षा का दायित्व वहन किया, शत्रुओं से सतत संघर्ष किया।

नाथों, संतों, नागाओं, संन्यासियों, वैरागियों, सिक्खों के शौर्य-पराक्रम, बलिदान की गौरव गाथा अत्यंत उज्ज्वल और गरिमाशाली है। यह इतिहास धर्म केन्द्रित है। इस इतिहास में विद्याजन्य लोक-दायित्व और दया प्रसूत धर्म का शौर्य-पराक्रम प्रकट हुआ है। यह इतिहास केवल राज्य केन्द्रित नहीं है। भारत की आध्यात्मिक संस्थाएँ राष्ट्र और विश्व के हितार्थ कार्यरत रही हैं। इनके योगदान का इतिहास राजाओं के इतिहास से भी व्यापक है। अध्यात्म की कोई भौगोलिक सीमा नहीं होती। सुबुद्ध राजाओं ने भी राजर्षियों का आदर्श अपनाया। उन्होंने आध्यात्मिक सत्ता की संगति में प्रजा पालन और राष्ट्र रक्षा का दायित्व निभाया। इस कथन के पक्ष में अनेक काल-खण्डों के साक्ष्य मिलेंगे।

वर्तमान काल में अध्यात्म की विश्व व्याप्ति का एक उदाहरण स्कॉन का भक्ति-वेदान्त आन्दोलन है। पूर्व काल में वैदिक ऋषियों ने 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' और 'श्रृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः' के वैश्विक अभियान चलाए थे। विश्व कल्याणार्थ आरोग्य, योग, ज्ञान-विज्ञान, कला, संगीत और अध्यात्म इत्यादि अनेक क्षेत्रों में कार्य हुए थे। भारत के आर्थिक इतिहास से ज्ञात होता है कि विश्व भर में भारत का वाणिज्य फैला हुआ था, कई भूखण्डों में भारतीय मूल के राजा प्रजापालन कर रहे थे। भारत की वैश्विक भूमिका नई नहीं है।

जब भारत अँग्रेजों की पराधीनता के अन्धकार में डूबा हुआ था, भारत की वैश्विक गरिमा और तेजस्विता धूमिल हो गई थी। 19 वीं शताब्दी के मध्य स्वामी रामकृष्ण परमहंस के प्रथम तपस्या काल 1856 से 1859 तक चार वर्षों की अवधि में आविर्भूत आध्यात्मिक शक्ति का बाह्य प्रभाव दिखाई पड़ा। इसी अवधि के मध्य 1857 में राष्ट्र व्यापी प्रथम स्वाधीनता संग्राम की अजेय चेतना प्रत्यक्ष हुई और 19 वीं शताब्दी के ही अन्तिम दशक 1893 में स्वामी विवेकानंद ने विश्व के सम्मुख भारतीय अध्यात्म का प्रखर स्वरूप प्रकट किया। तबसे न अँग्रेज के विरुद्ध स्वाधीनता का संघर्ष थमा और न अध्यात्म का वैश्विक अभियान रुका।

भारत की अनेक आध्यात्मिक संस्थाओं ने विश्व मानवता के आत्मोत्थान हेतु विभिन्न क्षेत्रों में श्रेयस्कर कार्य आरंभ किए, जो अविराम चल रहे हैं।

भारत में अनेक शताब्दियों से आक्रांताओं के विरुद्ध रक्षात्मक संघर्ष और रचनात्मक कार्य दोनों ही मोर्चों पर अध्यात्म ने निरंतर योगदान दिया है। सच ही कह गया है- 'परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर'।साधु समाज के योगदान का वर्णन शब्दों में नहीं समा सकता। मुगलों और अँग्रेजों की बर्बरता के विरुद्ध धर्म रक्षा और स्वाधीनता के संघर्ष में कदम- कदम पर आध्यात्मिक पुरुषों का योगदान है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में भी सर्वहितकारी धर्म का संघर्ष निरंतर रहा। धर्मसम्राट करपात्री की रामराज्य परिषद और गोहत्या बंदी के आन्दोलन की करुण कथा जानकर प्रतीत होता है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत अपनी पूर्ण स्वतंत्रता के लिए आज भी संघर्ष कर रहा है। इसी क्रम में श्रीराम जन्मभूमि मुक्ति अभियान को भी देखना चाहिए और याद रखना चाहिए कि बाबर की बर्बरता के विरुद्ध भारत की आध्यात्मिक चेतना से सम्पन्न शौर्य-पराक्रम ने सतत

संघर्ष किया। नागाओं के अखाड़े, सिक्खों की सेना और अयोध्या के संत योद्धाओं की छावनियाँ सतत लक्ष्य संधान में तत्पर रहीं। अन्ततः पाँच सौ वर्ष बाद उनका ध्येय साकार हुआ।

भारत के राजेतिहास की पृष्ठभूमि में आदि युग से सर्वतंत्र स्वतंत्र आध्यात्मिक चेतना सक्रिय भूमिका निभाती रही है। अखिल भारतीय भक्ति आन्दोलन के विषय में यह भ्रान्त धारणा है कि 'जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया, तब परस्पर लड़नेवाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गए। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिन्दू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?'[8] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सहस्रों वर्ष पूर्व से निरंतर बौद्धिक इतिहास का साक्ष्य प्रस्तुत कर केवल आचार्य शुक्ल की भ्रान्त धारणा 'हारे को हरिनाम' का खण्डन ही नहीं किया है, प्रोफेसर हेवेल की पुस्तक हिस्ट्री ऑफ आर्यन रूल के कथन- 'मुसलमानी सत्ता के प्रतिष्ठित होते ही हिन्दू राजकाज से अलग कर दिए गए। इसीलिए दुनिया के झंझटों से छुट्टी मिलते ही उनमें धर्म की ओर, जो उनके लिए एकमात्र आश्रय स्थल रह गया था, स्वाभाविक आकर्षण पैदा हुआ' को भी गलत व्याख्या कहा[9]। उन्होंने भक्तों की परंपरा के ऐतिहासिक क्रम का उल्लेख करते हुए भक्ति की अचानक उत्पत्ति मानने वाले डॉ. ग्रियर्सन के कथन-'बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त पुराने धार्मिक मतों के अन्धकार के ऊपर एक नई बात दिखाई दी। कोई हिन्दू यह नहीं जानता कि यह बात कहाँ से आई और कोई भी इसके प्रादुर्भाव का काल निश्चित नहीं कर सकता' का भी खण्डन किया और ग्रियर्सन की कुत्सित मानसिकता को उजागर करते हुए लिखा-'स्वयं डॉ. ग्रियर्सन का अनुमान है कि यह (भक्ति) ईसाइयत की देन है। पर यह बात अत्यंत उपहास्यास्पद है और यह कहना तो और ही उपहास्यास्पद है कि जब मुसलमान हिन्दू मंदिरों को नष्ट करने लगे, तो निराश होकर हिन्दू लोग भजन भाव में जुट गए'।[10]

आचार्य द्विवेदी के बाद हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में मार्क्सवादी आलोचकों का आगमन हुआ। उन्होंने आचार्य द्विवेदी के ऐतिहासिक विश्लेषण से प्राप्त तथ्यों और प्रतिपादनों को अपने खास उद्देश्यों के लिए मनमाना उपयोग किया। मार्क्सवादी आलोचना राजसत्ता केन्द्रित है। वह राज्य व्यवस्था पर आधिकार चाहती है, इसके लिए वर्गभेद और वर्गसंघर्ष की रचना करती है और अध्यात्म को बाधक मानकर अपमानित करती है, उसे सामंती शोषण की ढाल और परजीवी बताती है। इसी विघटनकारी विचार का दुष्परिणाम है कि वर्तमान राजनीति में वोट बैंक के लोभ से धर्म के विरुद्ध नेता को अनर्गल तर्क के साथ बोलने का अवसर मिल गया है। धर्म को भ्रामक, संक्रीण,विघटनकारी, भौतिक उन्नति में बाधक, सामाजिक व्याधि आदि बताने के पीछे अयोध्या आन्दोलन में बाबरी बर्बरता के विरुद्ध रामभक्तों की इच्छा शक्ति का प्रकटीकरण और राष्ट्रवादी राजनीतिक चेतना की जागृति है।

8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पूर्वमध्यकाल- भक्तिकाल, पृ.39
9. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ.25.
10. वही, पृ. 52-53

मार्क्सवादी आलोचक और विश्वविद्यालयों में युवा विद्यार्थियों का मानस तैयार करनेवाले प्रोफेसर भक्ति साहित्य के पठन-पाठन के विरुद्ध हैं। वे लोग भक्ति साहित्य को मध्य-कालीन साहित्य बताते हैं और मध्यकाल को पतनशील युग। उनकी दृष्टि में आधुनिक युग ही श्रेष्ठ है। एक मार्क्सवादी आलोचक का तर्क है कि 'आधुनिक युग में जीव-विज्ञान, इतिहास, और मनोविज्ञान के क्षेत्र में डार्विन, मार्क्स, फ्रायड आदि विचारकों ने चिन्तन का नया पाराडाइम हमारे सामने उपस्थित किया, जिसने सारी दुनिया में मध्ययुगीन ढाँचे को तोड़ने में हमारी मदद की। सोच के नए दृष्टिकोण में इतिहास और विज्ञान को महत्त्व दिया गया'।[11]

मार्क्सवादी आलोचक ध्यान नहीं देते कि यूरोप का मध्ययुग अन्धकारमय है और भारत के भक्ति साहित्य का मध्ययुग आर्थिक रूप से संपन्न है और ये जिस आधुनिक काल का बखान करते हैं, वह भारत के आर्थिक पतन का काल ही नहीं है, बौद्धिक पराभव का भी काल है। यह पश्चिमी शिक्षा, अँग्रजी भाषा, डार्विन, मार्क्स, एडम स्मिथ, फ्रायड, न्यूटन इत्यादि के पीछे- पीछे चलने वाले बुद्धिजीवियों का काल है। इन्हें कहने में संकोच होता है कि आर्थिक समृद्धि के कारण ही विदेशी दरिद्र आक्रांता भारत पर हमले कर रहे थे।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्ति साहित्य का मध्ययुग 1400 ई. से 1650 ई. तक माना जाता है। विश्व के आर्थिक इतिहास के अद्यतन तथ्यों के समानान्तर भारतीय मध्ययुग की आर्थिक स्थिति देखना चाहिए। अद्यतन आर्थिक तथ्यों के अनुसार ईसा की पहली शताब्दी से 1000 ई. तक हिन्दू राजाओं के काल में भारत का सकल घरेलू आय 34% थी। यह विश्व के आर्थिक इतिहाल में सर्वाधिक सकल घरेलू आय है। इस आर्थिक विवरण के साथ यह भी उद्दृत किया गया है कि यह आर्थिक समृद्धि भारत ने बिना किसी शोषण- दमन के अर्जित की थी। मुस्लिम आक्रांताओं के उत्पात के कारण 1700 ई. तक यह आय घट कर 24.5% हो गई। अँग्रेजों ने 1757 से 1800 तक भारत का आय लूट कर 20% कर दिया। तब भी अँग्रेजों की भूख शांत नहीं हुई, उनकी बर्बर लूट का सिलसिला जारी रहा। उसने 1830 तक भारत की आय 17% कर दिया और 1900 ई. आते- आते भारत को कंगाल बना दिया, तब भारत की सकल घरेलू आय 1.7 % तक रह गया।

इस विवरण से ज्ञात होता है कि 14वीं से 17वीं शताब्दी तक भक्ति साहित्य के मध्ययुग में भारत की सकल घरेलू आय 24.5 % थी। आर्थिक इतिहास के आधार पर यह विश्लेषण गलत है कि दरिद्र मुस्लिम आक्रांताओं के आगे हिन्दुओं का प्रभुत्व समाप्त हो गया था।

मार्क्सवादी आलोचकों की तुलना में अधिक स्पष्ट इतिहास दृष्टि 'हिन्दू मैनर, कस्टम, एण्ड सेरेमनी' पुस्तक के लेखक फ्रांसीसी पादरी अब्बे डुबोज की है, जो यह मानता है कि 'हिन्दुओं की व्यवस्था हजारों वर्ष की परीक्षा में भी सफल उतरी है और विश्व के इस भाग में उलटफेर तथा परिवर्तन के बाद भी चिरकाल से जीवित बनी रही।' पादरी डुबोज का आशय यह है कि विदेशी आक्रांताओं के कारण भारत की आर्थिक और सामाजिक स्थिति पर कोई गंभीर प्रभाव नहीं पड़ता था। वस्तुतः पादरी डुबोज भारत की शिक्षा और आध्यात्मिक परंपरा का समूल

11. नित्यानंद तिवारी, मध्यकालीन साहित्य पुनरवलोकन, पृ. 10

नाश करना चाहता था। इसी कार्य के लिए उसने 1792 से 1823 तक लगभग तीस वर्ष तमिलनाडु के ग्रामीण परिवेश में रहकर भारतीय समाज का अध्ययन किया था और वह अँग्रेजों को भारत के विध्वंस की योजना सौंप गया था। डुबोज के फ्रांस लौटने के बारह वर्ष बाद 1835 में उसके अध्ययन और योजनाओं को अपना अध्ययन तथा योजना बताकर टी.बी. मैकाले ने भारत के विध्वंस का कार्य आरंभ किया था। मैकाले की शिक्षा योजना से निकले हुए आधुनिक भारतीय शिक्षित लोग अँग्रेज की शिक्षा पाकर ही भारत के मध्ययुग को भी यूरोप के समान अन्धकार युग कहते हैं और इसके लिए क्षोभ व्यक्त करते है कि यूरोप की तरह हम क्यों नहीं हैं? यह हास्यास्पद स्थिति है। उन्हें समृद्ध भारत के ज्ञान-विज्ञान के इतिहास का पता नहीं है, भारत को लूटकर धनी हुए अँग्रेजों के ज्ञान-विज्ञान का पता है। इसी आधुनिक युग के अन्धकार में भारत के मार्क्सवादी बुद्धिजीवी हीन भावना से ग्रस्त होकर भारत-निन्दा करते रहते हैं।

अपने सभी पूज्यपाद आचार्यों और भक्तों के सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक योगदानों का इतिहास सहेजने में किसी सक्षम संस्था को भी वर्षों कार्य करना होगा, तब भी आवश्यक नहीं कि परमात्म सत्ता और जगत के मध्य की इस व्यक्ताव्यक्त सेतु के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त हो जाए। हमारे आचार्य और भक्त ही विद्याजन्य अमृत को मर्त्यलोक से जोड़कर रखते है, जिससे सनातन धर्म जनजीवन में व्याप्त रहता है।

अपने संतों के संघर्ष का सार-संक्षेप विवरण कालक्रम से देखना चाहिए, इससे इतिहास के सापेक्ष अध्यात्म के राष्ट्रीय योगदान के इतिहास की एक झलक मिल सकती है। अखिल भारतीय भक्ति आन्दोलन की आधारशिला दर्शन है, दर्शन की ठोस पृष्ठभूमि पर भक्ति के लता-निकुञ्ज विकसित हुए हैं। दार्शनिक पृष्ठभूमि का निर्माण आद्यजगद्गुरु शंकराचार्य (788-820),रामानुजाचार्य(1037-1137), मध्वाचार्य(1238-1317), स्वामी रामानन्द(1299-1410) और वल्लभाचार्य (1477-1530) की कालावधियों में हुआ। इस कालखण्ड में अनेक भव्य मंदिरों का निर्माण हुआ। तब भारत भूमण्डल का एकमात्र स्वर्ग था।

भारत का वैभव पाने के लिए आक्रांता विधर्मी उद्विग्न रहते थे। भौतिक समृद्ध का सबसे बड़ा अन्तरिक शत्रु भोग विलास और अकर्मण्यता है। इस दुर्बलता से विमुक्ति के लिए दर्शन की आधारशिला आवश्यक थी। इन कालखण्डों में विद्याजन्य ज्ञान-वैराग्य, भक्ति के अनुशासन में अविद्याजन्य पराक्रम, वैभव- विलास रहता था। विजयनगरम् का साम्राज्य इसका एक उदाहरण है। इसके आगे के कालखण्डों में भारत में जब विधर्मी शासन आया, विद्याजन्य अध्यात्म के अमृत से अविद्याजन्य मर्त्य भौतिक समृद्धि का संबन्ध टूटने लगा।

वैभवशाली भारत पर मुस्लिम आक्रंता बार-बार आक्रमण कर रहे थे। 5 वीं शताब्दी में निर्मित विश्वविख्यात नालंदा महाविहार को 1193 ई. में आततायी आक्रांता बख्तियार खिलजी ने जला दिया था। इस तरह के अनेक ध्वंस भारत में होने लगे थे। हिन्दुओं को धर्मास्था से विचलित कर उन्हें मुसलमान बनाने के दुष्ट प्रयास हो रहे थे। इस संकट काल में अखिल भारतीय भक्ति आन्दोलन ने अपने सामाजिक और राष्ट्रीय दायित्व का निर्वाह किया।

सुलतान मुहम्मद बिन तुगलक (1325-1351) के अत्याचार से हिन्दू दहल उठे थे। तुगलक इस्लाम

कबूलवाने के लिए हिन्दुओं को कत्ल कर रहा था। इस दुर्दिन में संतशिरोमणि नामदेव (1270-1350) धर्मास्था के रक्षार्थ हिन्दू समाज में अलख जगा रहे थे। तुगलक से उनका सामना हुआ। गुरुग्रंथ साहेब के साक्ष्य बताते हैं कि कुपित तुगलक ने नामदेव को बंदी बनाया और कहा- मुझे अपने राम की शक्ति दिखा दे, नहीं तो तुम्हें मार दूँगा-

सुलतानु पूछे सुन बेनामा। देखहु राम तुम्हारे कामा ।।
नाम सुलताने बधिला। देखउ तेरे हरि बिठुला ।।

नामदेव ने कहा- 'मेरे कीआ कहु न होई। करिहै रामु होइ हैं सोई ।।' मेरे करने कुछ नहीं होता, राम करते हैं, वही होता है।

नामदेव की माता अपने पुत्र की हत्या के भय से रोने लगीं। पुत्र मोह में उन्होंने कहा- राम का भजन छोड़ दे बेटा, खुदा का नाम ले, तू जीवित रहेगा- 'रुदन करे नामे की माइ। छोड़ रामु को भजहि खुदाइ।' नामदेव अडिग रहे। उन्होंने कहा- मैं तेरा पुत्र नहीं हूँ, न तू मेरी माँ है। जब तक इस देह पिण्ड में हूँ, हरि का ही गुणगान करूँगा-'न हउ तेरा पुंतड़ा न तू मेरी माइ। पिंड पड़ै तउ हरिगुन गाइ ।।' तुगलक ने नामदेव को कुचल कर मारने के लिए उनपर हाथी हँकवाया। हाथी नामदेव के सिर पर सूड़ से चोट कर पीछे हट गया- 'करै गजिंदु सुंड की चोट। नामा उबरे हरि की ओट ।।' इस घटना को देखकर काजी- मुल्ले नामदेव को सलाम करने लगे और कहने लगे- इन हिन्दुओं ने हमारा मान मर्दन कर दिया- 'काजी मुला करे सलामु। इनि हिन्दू मेरा मलिया मान।।' नामदेवका प्रण था कि गंगा-यमुना यदि उलटी बहने लगें, तब भी मैं हरि- हरि करता रहूँगा- 'गंग जमुन जउ उलटा बहे। तऊ नाम हरि करता रहे।।'[12]

नामदेव ने एक रचना में अपनी आस्था के आधार हरि की शक्ति और साम्राज्य का वर्णन किया है। जैसे कि भक्त प्रह्लाद ने नरसिंह का स्मरण किया हो। वस्तुतः उनका जीवन भी प्रह्लाद के समान ही संघर्षरत है। नामदेव ने सर्वसमर्थ उस केशव को स्मरण किया है जिसने सारे आकाश को श्रीयंत्र बनाया है और जो अग्निसोमात्मक सृष्टि की त्रिसप्त शक्ति संरचना में प्रविष्ट हो गया है- 'आउ कलंदर केसवा। करि अबदाली भेसवा। जिन आकस कुलहु सिरी कीनी, पउसै सपत पयाला।।'[13]नामदेव ने हरि की शक्ति का गहन वर्णन किया है। यही वह शक्ति है जो समय के सघन अन्धकार को चीर कर सनातन का मार्ग प्रशस्त करती है। भक्ति केवल भावना नहीं है, इसमें अपराजेय हरि की शक्ति है। दुर्दिन में भक्तों के हृदय से निकलकर इसी शक्ति ने हिन्दुओं की धर्मास्था रक्षित की।

नामदेव के संघर्ष को कबीर (ई.1398-1518) ने आगे बढ़ाया। कबीर ने सिकंदर लोदी (ई.1489-1517) का सामना किया। कबीर खुली चुनौती देते हुए कहते हैं- किताब छोड़ दो बाँवलो, तुम लोग भारी जुल्म कर रहे हो। कबीर ने राम का टेक पकड़ा है, उसके आगे तुर्को को हारना ही है- 'छाड़ि कतेब राम भजु बाँउरे, जुल्म करत है भारी। कबीर पकरी टेक राम की, तुरक रहे पचि हारी।' गुरुग्रंथ साहेब के अनुसार इस्लाम विरोध के कारण

12. ईमानवाले, लेखक- डॉ. के.पी. अग्रवाल, पृ.420-21 की सामग्री पर आधारित।
13. कृ.गो. वनखडे गुरुजी, संत नामदेव, पृ. 119

तुर्कों ने कबीर को बाँधा और हाथी के पाँव तले कुचलवा कर मारने का प्रयास किया- 'किया अपराधु संत है कीन्हा। बाँधि पोट कूँजर कउ दीन्हा। कूँजर पोट लै लै नमस्कारैं। बूझी नहीं काजी अँधियारैं।।' कबीर को तीन प्रकार से मारने के प्रयत्न हुए- हाथी से कुचलवा कर, अग्नि में जलाकर और गंगा में डुबो कर,।[14] कबीर ने सामान्य जनजीवन के धर्म भाव की रक्षा की। इस्लाम के विस्तार को रोकने में कबीर की सशक्त भूमिका है।

कबीर के उपरांत नानकदेव (1469-1538) बाबर के आगमन (1526) के समय हिन्दू धर्म के रक्षार्थ उपदेश किया करते थे। उन्होंने दुखी मन से इस्लाम के भय और अत्याचार का वर्णन किया है- 'इकना वखत खुवाई अहि इकन्हा पूजा जाइ। चउके विणु हिन्दवाणिआ किउ टिके कदाहि नाइ। राम न कबहु चेतओंहुणि कहाणि न मिले खुदाइ।' मुसलमानों की नमाज के समय हिन्दुओं की पूजा बन्द हो गई थी। बिना स्नान, तिलक के हिन्दू समाज रह रहा था। जिन्होंने कभी राम नाम की सुधि नहीं ली, उन्हें आज खुदा- खुदा कहकर भी इस्लाम के अत्याचारों से छुटकारा नहीं मिल रहा।[15]

नानक ने मुगल और पठानों के बीच हुए युद्ध के दुष्प्रभावों का उल्लेख किया है- 'मुगल पठाना भई लड़ाई रण महँ तेग बगाई। ओन्ही तुपक ताणि चलाई। ओन्ही हसती चढ़ाई। जिन्ह की चीरी दरगाह पाटी तिन्हा गरणा भाई।' पठान और मुगल में भारी लड़ाई हुई। रण में तलवारें खुल कर चलीं, मुगलों ने निशाना साध कर तोपें और बन्दूकें चलाई और पठानों ने हाथी हूल दिए। पर, हे भाई! जिसकी आयु की चिट्ठी यम के यहाँ फाड़ दी गई थी, उसका मरना निश्चित था,।[16] मारकाट वर्णन से नानक ने धर्महीन राजभोग के लोभियों की निकृष्टता उजागर किया है।

पानीपत की जंग (1526ई.) में जीतने के बाद बाबर की सल्तनत कायम हो गई। दो वर्ष बाद बाबर ने 1528ई. में अयोध्या का श्रीराम जन्मभूमि मंदिर तोड़ दिया। नानक के बाद गोस्वामी तुलसीदास (1532ई.- 1623ई.) का आविर्भाव हुआ। तुलसीदास के विषय में बताने के लिए बहुधा विद्वान लोग इतिहासकार विन्सेन्ट स्मिथ का कथन उदधृत करते हैं। विन्सेन्ट ने तुलसी को अपने युग का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष बताया है। उसने तुलसी को अकबर से महान इसलिए कहा है कि तुलसी ने करोड़ों मानव हृदय पर अपनी रचनाओं द्वारा शाश्वत विजय प्राप्त की है। उसके सामने सम्राट अकबर की राजकीय विजय नगण्य है।

तुलसी के जन्म के चार वर्ष पूर्व श्रीराम जन्मभूमि मंदिर टूट चुका था। इसकी घनीभूत पीड़ा से तुलसी ने श्रीरामचरितमानस सृजित कर लोकमानस में श्रीराम का शाश्वत साम्राज्य बनाया। वह लोकवेद जनमन में प्रतिष्ठित हुआ और फलिभूत होने लगा। उसका प्रतिफल हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि लोक-मानस से नि:सृत हो पुनः अयोध्या में श्रीरामलला अपने भव्य मंदिर में विराजमान हो गए हैं। श्रीरामचरित मानस स्वयं चैतन्य है, सबके दुख-सुख में सम्मिलित और सक्रिय।

14. ईमानवाले, पृ. 418
15. वही, पृ. 360
16. वही, पृ. 360

तुलसी की दृष्टि में सारा जगत सियाराममय है- सियाराम मय सब जग जानी। करउ प्रणाम जोरि जुग पानी।। तुलसी ने अपने युग के संत्रासों को आत्मभाव से देखा और मर्माहत हो गए। उन्होंने लिखा है-

खेती न किसान को,भिखारी को न भीख बलि, बनिक को न बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीधमान सोच बस, कहै एक- एकन सौं- कहाँ जाइ का करीं ।।

उन्होंने विधर्मी शासन को कलियुग कहा, श्रीराम को ही कलियुग की एकमात्र औषधि बताया और लोक मानस में रामराज्य की कामना स्थापित की। यह अकारण नहीं है कि तुलसी की कामना की कड़ी में कड़ियाँ जुड़ती चली गईं। उनके जीवन काल में ही 1608 ई. में ठीक रामनवमी के दिन श्रीसमर्थ रामदास का आविर्भाव हुआ और उनके आलोक में शिवाजी अग्रसर हुए, रामराज्य का सजीव उदाहरण भारत भूमि पर प्रकट हुआ।

साहित्य सृजन के क्षेत्र में भी तुलसी की मनोधारा विद्यमान है। जिस अकबरी काल को तुलसी ने कलियुग कहा था, उसी कलियुग को महाकवि भूषण ने औरंगजेब की हरकतों में देखा- कलियुग के समुद्र में अधर्म की उत्ताल तरंगें उठ रही हैं, जिसमें लाखों मलेच्छ कच्छ-मच्छ और मगर समूह हैं-

कलियुग जलधि अपार उद्ध अधरम्म उर्मिमय। लच्छिनि लच्छ मलिच्छ अरु कच्छ मगरचय ।।[17]

कलियुग की प्रतिमूर्ति मानकर भूषण ने औरंगजेब और उनके सहयोगियों को अंग-प्रत्यंग के रूप में वर्णन किया-

यहि रूप अवनि अवतार धरि जेहि जालिम जग डंडियव।... कलियुग सोई खल खंडियव ।।[18]

महाकवि भूषण में तुलसी निरंतरमान हैं, तुलसी में नानक, कबीर, नामदेव के लोक दायित्व विद्यमान हैं। भूषण से आगे अँग्रेजी राज के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम के प्रेरक कवियों में भूषण और तुलसी की काव्य चेतना को देखा जा सकता है। महाकवि निराला इसके उदाहरण हैं।

अध्यात्म अमृत है। अध्यात्म का राष्ट्रीय योगदान विद्योपासकों के अमृततत्त्व का लौकिक अवघटन है। भौतिक इतिहास में विमुग्ध लोग अध्यात्म के योगदान को देखें नहीं, आँखें मूँद लें, संतों-महात्माओं को समाज निरपेक्ष बता दें, इससे क्या अध्यात्म की निरंतरमान भूमिका ठहर जाएगी? अविद्याजन्य भौतिक समृद्धिमृत हो जाती है, यदि उसे विद्या नि:सृत अमृत का पावन प्रसाद न मिले।

●●●

17. शिवराज भूषण-58
18. शिवराज भूषण-59

देवर्षि नारद के संचार में एकात्म मानव दर्शन

प्रो. ओम प्रकाश सिंह [1]

सारांश

हिन्दू संस्कृति में देश और दुनिया के साथ तीनों लोकों का चिंतन भरा है। भारत भूमि पर अनादि काल से मानवता की रक्षा के लिए चिंतन हुआ। उसी चिंतन का परिणाम सम्पूर्ण विश्व एवं विश्व की मानवता है। चूंकि हिन्दू संस्कृति में तीनों लोकों (आकाश, पाताल मृत्युलोक) का चिंतन निहित है, इस कारण संसार का कोई भी प्राणी अथवा व्यक्ति दावा नहीं कर सकता कि उसकी चिंता, उसकी पीड़ा अथवा उसका ध्यान हिन्दू संस्कृति में नहीं है।अपने-अपने देश तथा अपने प्रिय लोगों से परे सम्पूर्ण त्रैलोक (तीनो लोकों-आकाश, पाताल एवं मृत्युलोक) की चिंता एवं रक्षा के लिए जो कार्य करता है, जो सोचता है, जो सूचना देता है और स्वयं ईश्वर से प्रत्यक्षतः जुड़ा है। उसी आदि पुरुष का नाम है देवर्षि नारद। देवर्षि नारद एक पर नाम अनेक हैं। इन नामों में संचार से जुड़ा नाम है 'आचार्य पिशुन'। 'पिशुन' शब्द प्राचीन ग्रन्थों में नारद के संचारक व्यवहार के लिए है, परन्तु यदि हम पिशुन शब्द के वास्तविक अर्थ पर विचार करें तो स्पष्ट होगा कि वर्तमान में पत्रकार अथवा संचार कार्य में लगे लोग भी पिशुन ही हैं। देवर्षि नारद के संचार में वैक्तिकता अथवा विराट के अंश, व्यक्ति के कल्यांण की चिंता थी। आदिसंचारक नारद ने चार पुरुषार्थों के आधार पर मनुष्य द्वारा बोले जाने वाले वाक्यों के लक्षणों को भी स्पष्ट किया है। आदि संचारक नारद के संचार में समष्टि का विचार है। आदिसंचारक नारद के संचार में सृष्टि भी संचार का केन्द्र थी।

मुख्य शब्द- *भारत.भूमि, लोको, हन्दू, संस्कृति, नारद, पिशुन, पत्रकार, संचार, व्यष्टि, समष्टि, आदिसंचारक*

भारत भूमि पर अनादि काल से मानवता की रक्षा के लिए चिंतन हुआ। उसी चिंतन का परिणाम सम्पूर्ण विश्व एवं विश्व की मानवता है। विश्व में अनेक संस्कृतियां एवं सभ्यताएं अतीत में पैदा हुई। इसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते, परन्तु हमारी भारतीय सभ्यता ही शेष बची और कहां गये? यह एक बड़ा प्रश्न है, जो सभ्यताएं एवं संस्कृतियां अपने को जीवित नहीं रख पाई; उनका ज्ञान, कौशल कैसा रहा होगा? यह भी एक प्रश्न है। हम किसी की बड़ाई तथा किसी का अपमान नहीं कर रहे हैं। हम तो सिर्फ बात सच्चाई की कर रहे हैं। इस समय पूरी दुनिया में जो भी सभ्यताएं और संस्कृतियां हैं, उनमें से सबसे पुरानी और निरंतर नदी की भांति बहने वाली तथा जीवित संस्कृति एवं सभ्यता का ही नाम सनातन, हिन्दुत्व अथवा भारतीय है। इस पुरानी संस्कृति का ऋण सभी सभ्यताओं और संस्कृतियों पर है। सबने हमसे लिया है और सबको हमने दिया भी है। इतना ही नही लेन-देन में उन नवविकसित

1. पूर्व निदेशक एव ंप्रोफेसर महामना मदनमोहन मालवीय हिन्दी पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी(उ.प्र)।

सभ्यताओं और संस्कृतियों ने हमें भी दिया है, लेकिन उनकी देनदारी का भाग बहुत ही छोटा रहा।

हिन्दू संस्कृति में देश और दुनिया के साथ तीनों लोकों का चिंतन भरा है। मैं सुखी रहूं, मेरा देश सुखी रहे से परे की बात जो करता है, वही एवं उसी का नाम हिन्दू संस्कृति है। हिन्दू संस्कृति की जन्म भूमि हिन्दुस्तान है लेकिन इस संस्कृति का सिपाही अथवा प्रतिनिधि वह प्रत्येक व्यक्ति है, जिसका इसमें विश्वास है। इसी कारण श्रीमती एनीबेसेंट, श्री मां एवं भगिनी निवेदिता हिन्दू संस्कृति की सच्ची प्रतिनिधि रहीं। चूंकि हिन्दू संस्कृति में तीनों लोकों (आकाश, पाताल, मृत्युलोक) का चिंतन निहित है, इस कारण संसार का कोई भी प्राणी अथवा व्यक्ति दावा नहीं कर सकता कि उसकी चिंता, उसकी पीड़ा अथवा उसका ध्यान हिन्दू संस्कृति में नहीं है। तीनों लोकों में आकाश व्यापक है। हिन्दू संस्कृति ने इसे एक लोक अथवा पृथ्वी के समानान्तर ही स्थान दिया। आकाश व्यापक एवं शून्य है, लेकिन प्राण वायु का केन्द्र आकाश है। आकाश हमारे समीप, ऊपर तथा सर्वत्र है। यह जीवन आधार है। यह मान्यता हिन्दू संस्कृति की है। जीवन स्वस्थ रहे इसके लिए विश्व चिंतित है, क्योंकि प्रदूषण बढ़ रहा है। यह इस कारण हुआ क्योंकि दुनिया ने आकाश लोक की निकटता को समझा नहीं। हिन्दू संस्कृति के संदेश को भुलाकर दुनिया ने अपनी यात्रा की और आज आकाश में प्रदूषण से अब समूची मानवता संकट में है। इसी प्रकार हिन्दू संस्कृति पाताल को भी पृथ्वी की भांति एक लोक की मान्यता देती है। आकाश हमें वायु, वर्षा तथा ऋतु देता है। इसी प्रकार पाताल से हमें पानी, खनिज तथा अन्न आदि मिलते हैं। पानी के बिना जीवन की कल्पना नही की जा सकतीं। हमने हिन्दू संस्कृति के संदेशों को भुलाकर पाताल को भी प्रदूषित किया। आज ऐसी स्थिति में दुनिया पहुंची है कि धरती के भीतर के पानी को भी हमने पीने लायक नहीं छोड़ा। उस पानी को भी शुद्ध करने के लिए यंत्रों की जरूरत पड़ रही है।

उक्त लोकों के बाद तीसरा लोक है मृत्युलोक अथवा पृथ्वी जिस पर हम रहते हैं। यह व्यवहार में आकाश-पाताल के बीच है, परन्तु दोनों पर निर्भर है। इसी सह-अस्तित्व का संदेश सदा से हिन्दू संस्कृति ने दिया और आज भी दे रही है। लेकिन इस सनातन संदेश को भुलाकर दुनिया ने अलग विकास का रास्ता चुना जो निरन्तर विश्व मानवता के लिए नये-नये खतरे पैदा कर रहा है। 'हिन्दू' जीवन दृष्टि में जिन मूल्यों की चर्चा है, उसमें पंथवाद नहीं है वरन उसमें परमार्थ है। उसमें जीवन धर्म है। हिन्दू धर्म में प्राकृतिक एवं सत् तथा वैश्विक मूल्यों का ही चिंतन है। इसी कारण आक्सफोर्ड डिक्शनरी में धर्म का अर्थ The eternal law of the univers माना तथा उसका स्रोत तथा केन्द्र हिन्दू दर्शन माना। इसी के साथ उपासना के तरीकों को पंथ अथवा Religion माना। यह तथ्य आक्सफोर्ड डिक्शनरी के निर्माताओं को 2003 में समझ में आया और तब से धर्म अब अंग्रेजी का भी शब्द बन गया, लेकिन उसकी उत्पत्ति हिन्दू दर्शन है, यह भी सत्य है। अपने-अपने देश तथा अपने प्रिय लोगों से परे सम्पूर्ण त्रैलोक (तीनो लोकों-आकाश, पाताल एवं मृत्युलोक) की चिंता एवं रक्षा के लिए जो कार्य करता है, जो सोचता है, जो सूचना देता है और स्वयं ईश्वर से प्रत्यक्षतः जुड़ा है। उसी आदि पुरुष का नाम है देवर्षि नारद। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानव दर्शन के व्यष्टि, सृष्टि, समष्टि एवं परमेष्टि में यह त्रैलोक (तीनो लोकों) का चिंतन सम्मिलित है।

आचार्य पिशुन (नारद) का पर्याय (अर्थ) है संचारक: 'देवर्षि नारद' एक पर नाम अनेक हैं। इन नामों में संचार से जुड़ा नाम है 'आचार्य पिशुन'। 'आचार्य पिशुन शब्द का उल्लेख कौटिल्य अर्थशास्त्र के साथ-साथ संस्कृत के अनेक शब्दकोशों में हम देख सकते हैं। आचार्य का अर्थ तो श्रेष्ठ-ज्ञाता आदि है, जो कि देवर्षि थे। 'पिशुन' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा में पिश+उनच् किच्च से है। इसका अर्थ संचार करने वाला, संचारक, परिचायक, भेदिया आदि है। इस प्रकार पिशुन शब्द 'नारद' शब्द का पर्याय अथवा नारद जी के पर्यायवाची के रूप में है। यह उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में हमें मिलता है। जिसके कारण यह नहीं कह सकते हैं कि नारद जी को हठात् पत्रकार, सूचनाकार अथवा संचारक बनाया जा रहा है। वास्तव में देवर्षि नारद अपने संचारक गुणों के कारण लोक में अनादि काल से विख्यात् थे। उन्हीं गुणों एवं विशेषताओं के कारण प्राचीन शास्त्रों में उन्हें पिशुन के नाम से भी अलंकृत किया गया।

यद्यपि 'पिशुन' शब्द प्राचीन ग्रन्थों में नारद के संचारक व्यवहार के लिए है, परन्तु यदि हम पिशुन शब्द के वास्तविक अर्थ पर विचार करें तो स्पष्ट होगा कि वर्तमान में पत्रकार अथवा संचार कार्य में लगे लोग भी पिशुन ही हैं। क्योंकि पत्रकार अथवा संचारक सूचना अथवा संदेश निरंतर प्रसार करते हैं। इस कारण वर्तमान के सभी पत्रकारों एवं संचारकों को हम पिशुन की उपाधि अथवा पर्यायवाची नाम से सम्बोधित कर सकते हैं। इस प्रकार देवर्षि नारद और आज के पत्रकार तथा संचारक समान गुण वाले हुए तथा दोनों को पिशुन कहना सार्थक होगा। आचार्य पिशुन अर्थात् देवर्षि नारद से 'पिशुन' शब्द सर्वप्रथम जुड़ा, जिस कारण देवर्षि नारद प्रथम पिशुन अथवा संचारक या पत्रकार हुए। सूचना भेजने, संदेश देने, समाचार को भेजने का कार्य वर्तमान में भी जो कर रहा है वह भी पिशुन है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन काल में संदेशकर्ता, संचारक अथवा पत्रकार के लिए 'पिशुन' शब्द उसी प्रकार प्रयोग में था जैसे वर्तमान में सूचना, संदेश एवं समाचार देने वालों के लिए पत्रकार (Journalist) का प्रयोग होता है; अतः पत्रकार एवं पिशुन समान अर्थवाले हुए। देवर्षि नारद के लिए सिर्फ पिशुन नहीं वरन् आचार्य पिशुन शब्द का प्रयोग होता था। इस कारण देवर्षि नारद संचार, सूचना विस्तार के आचार्य तथा प्रथम पुरुष हुए। यही निष्कर्ष 'आचार्य' पिशुन शब्द के अर्थ से प्राप्त होता है। इस कारण आचार्य पिशुन उर्फ देवर्षि नारद प्रथम पत्रकार अथवा संचारक हुए। वर्तमान में हमें पत्रकारिता अथवा सूचना/संदेश के कार्य में लगे लोगों के लिए 'पिशुन' सम्बोधन का उपयोग सार्थक होगा। यही पिशुन शब्द पत्रकार नारद और वर्तमान पत्रकारिता तथा पत्रकार को एक करता है। इससे हमें निष्कर्ष प्राप्त होता है कि जो भी संचार, समाचार, संदेश का कार्य करे वह सच्चे अर्थों में पिशुन अथवा पत्रकार या संचारक है। 'पिशुन' शब्द से हमें यह भी ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में संचार/संदेश/सूचना का कार्य करने वाले वर्तमान की भांति विशेष स्थान रखते थे। वर्तमान में सूचना/संदेश एवं समाचार का कार्य करने वाले पत्रकार हैं। प्राचीन काल में उन्हें ही 'पिशुन' कहा जाता था, जिसके प्रथम पुरुष आचार्य पिशुन अथवा देवर्षि नारद जी थे। इससे स्पष्ट है कि नारद जी सच्चे अर्थों में पत्रकार थे। इसी रूप में उनकी मान्यता भी थी।

व्यष्टि और आदिसंचारक नारद: आदि पत्रकार अथवा आचार्य पिशुन के संचार का आधार व्यष्टि अथवा वैक्तिकता भी थी। व्यष्टि शब्द की व्युत्पत्ति वि+अश्+क्तिन् से हुई, जिसका अर्थ है वैक्तिकता एक अंश आदि। देवर्षि नारद के संचार में वैक्तिकता अथवा विराट के अंश, व्यक्ति के कल्याण की चिंता थी। इस हेतु उन्होंने

कार्य किया। उनके संचार का केन्द्र व्यक्ति है। इसी कारण संचार के आधार संदेश का वर्णन करते हुए देवर्षि एवं आदि पत्रकार नारद ने बताया है कि वक्ता+श्रोता+वाक्य ही संदेश है। वर्तमान में सिर्फ विषय वस्तु को संदेश मानते हैं यह कदापि उचित नहीं है, क्योंकि श्रोता, वक्ता एवं वाक्य के बिना संदेश का अस्तित्व ही नहीं है।

इसी प्रकार आदिसंचारक नारद ने चार पुरुषार्थों के आधार पर मनुष्य द्वारा बोले जाने वाले वाक्यों के लक्षणों को भी स्पष्ट किया है। उनके अनुसार सूक्ष्मता, संरचना, क्रम निर्णय और प्रयोजन जैसे पांच अर्थ जिसमें उपलब्ध हों वही 'वाक्य' है। प्रयोजन का अर्थ है धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के उद्देश्य से जो कहा गया हो। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के सम्बन्ध में प्रतीक्षा एवं सिद्धांत बताने वाले वाक्य का नाम निर्णय है। प्रस्तुत करने की विषय योजना को क्रम कहते हैं। जहां गुण एवं दोष के प्रमाण दिये जायं वही संरचना वाक्य है। जहां विभिन्न अर्थों में भेद देखा जाय उसे सूक्ष्म वाक्य कहते हैं।

व्यष्टि का आधार उच्चारण अथवा ध्वनि भी है। इसी कारण आदिसंचारक नारद ने वाणी के 18 दोषों का भी वर्णन किया है। वाणी के इन 18 दोषों में (1) अपेतार्थन्या अर्थ रहित उच्चारण (2) अभिन्नार्थ या अर्थज्ञान न होना (3) अप्रवृत्त या अव्यावहारिक (4) अधिक या अनावश्यक शब्द (5) अशलक्षण या अस्पष्ट वाणी (6) संदिग्ध या संदेह युक्त शब्द (7) पदान्त गुरु या अन्तिम अक्षर का दीर्घ स्वर (8) परांगमुख या विरोधी अर्थ (9) अनृत या मिथ्या/झूंठ (10)असंस्कृत या व्याकरण शून्य (11) त्रिवर्ग विरुद्ध या अर्थ धर्म या काम के विरुद्ध वाणी (12) न्यून दोष या शब्दहीनता या कमी (13) कष्ट शब्द या कठिन उच्चारण (14) अतिशब्द या बढ़ाचढ़ाकर कहना (15) व्युत्क्रमामिहित या क्रमहीनता दोष (16) सशेष या अपूर्ण कथन (17) अहेतुक या अतार्किक एवं (18) निष्कारक या अकारण कथन। इन दोषों से रहित उच्चारण ही लोक उच्चारण आदि दोषों के साथ ही आदिसंचारक नारद ने व्यष्टि की युक्ति के लिए सत्यनारायण कथा का लोक विस्तार किया। स्कन्द पुराण में इसका वर्णन इस प्रकार है -

एकदा नारदो योगी पराऽनुग्रह कांड्क्षया।3।।
पर्यटन विविधान् मृत्युलोकमुयागतः ।4।।
त तो दृष्टवा जनान् सर्वान् नानाक्लेश समान्वितान् ।।
नानायोनि समुत्पन्नान् क्लेश्यमानान् स्वकर्मभिः ।।5।।

अर्थात एक बार नारद मुनि परोपकार की इच्छा से नाना लोकों में भ्रमण करते हुए मृत्युलोक में आये। मृत्युलोक में मनुष्यों को अनेक प्रकार से दुःखी देखा। इनके दुःख को दूर करने के उपाय हेतु चिंतित हुए। लोगों के दुःखों का वर्णन भगवान से करते हुए भगवान विष्णु से मनुष्यों के दुःख मुक्ति का उपाय पूछा। भगवान विष्णु ने कलियुग में मनुष्यों को दुःखों से मुक्त करने के उपाय के रूप में 'सत्यनारायण कथाव्रत' का उपदेश दिया। इस प्रकार लोक में 'सत्यनारायण कथाव्रत' का प्रचार देवर्षि नारद ने किया। इस कथाव्रत का मुख्य आधार है, सत्य भाषण, सत्य विचार एवं सत्य में निष्ठा एवं सत्य संचार इस प्रकार व्यष्टि आदिसंचारक नारद के संचार का केन्द्र है।

समष्टि और आदिसंचारक नारदः एकात्म मानववाद का केन्द्र समष्टि है। आदि संचारक नारद के संचार में समष्टि का विचार है। संस्कृत भाषा में समष्टि शब्द की व्युत्पत्ति सम्+अस्+क्त् से है। इसका अर्थ है समुच्चय, एक जैसे अंगों का समूह आदि। इस प्रकार समष्टि, संक्षेप में 'हम' शब्द का पयार्य है। 'हमारा परिवार, हमारा पड़ोस, हमारा देश, आदि समष्टि के उदाहरण हैं। यह व्यक्तियों के समूह से जुड़ा है। इस प्रकार नारद जी एक ओर दुःखी मनुष्यों को पीड़ा के निदान की चिंता करते हैं तो दूसरी और समष्टि की भी रक्षा के लिए चिंतित हैं। इसी कारण जब समुद्र मंथन में विष निकला तो सबसे पहले समष्टि के हित में आदिसंचारक नारद ने सूचना दिया। लेकिन देवों एवं दानवों ने इस पर ध्यान नहीं दिया। परिणामतः विष फैला और भगवान शिव को उसका पान लोकहित में करना पड़ा। यह वर्णन स्कन्द पुराण में है।

आदिसंचारक नारद जी समष्टि अथवा लोक की चिंता करते थे। उसके हित का ध्यान रखते थे। इसी कारण भगवान श्रीकृष्ण प्रातः नारद नाम का जप करते थे। भगवान श्रीकृष्ण नारद स्तोत्र का पाठ करते थे। यह उल्लेख स्कन्द पुराण में है। भगवान श्रीकृष्ण के अनुसार नारद मुनि ने लोकहित में दक्ष के इस श्राप को स्वीकार किया कि, तुम सदा संचार में भ्रमण करोगे। एक स्थान पर ठहरोगे नहीं तथा एक बात दूसरे स्थान पर पहुंचाओगे। इसे नारद मुनि ने स्वयं स्वीकार किया। वे ध्येय से विचलित नहीं होते । शक्ति सम्पन्न होने के साथ ही सरल, मृदु वचन वाले, पापरहित, श्रुति-पुराण के ज्ञाता, दोषरहित नीति युक्त एवं गुणों की खान हैं। इसी कारण नारद मुनि का जप एवं स्तोत्र पाठ भगवान श्रीकृष्ण स्वयं करते थे। इससे भी स्पष्ट है कि समष्टि के हितैषी आदिसंचारक नारद हैं।

आदिसंचारक नारद ने समष्टि के हित के लिए तथा समष्टि में श्रेष्ठ चरित एवं भाव का संचार हो, इस कारण महाभारत जैसे महाकाव्य की रचना के बाद व्यथित महर्षि व्यास को लोकहित में भगवान श्रीकृष्ण के चरित का गुणगान करने के लिए श्रीमद्भागवत के रचना की प्रेरणा दिया। समष्टि के हित में अर्जुन एवं अश्वत्थामा द्वारा चलाये गये दिव्यास्त्रों को वापस कराया। इतना ही नहीं तपस्या से प्राप्त दिव्यास्त्रों के प्रदर्शन के लिए अर्जुन द्वारा आयोजित समारोह को भी स्थगित कराने का कार्य देवर्षि नारद ने किया।

आदिसंचारक नारद ने यह भी बताया कि इस संसार में पूजनीय कौन है? इसका वर्णन महाभारत के अनुशासन पर्व में इस प्रकार है -

तपोधनान् वेदविदो नित्यं वेदपरायणान्।
महाहान् वृष्णशार्दूल सदा सम्पूजयाम्यहम्॥
महाभारत, अनुशासन पर्व, 61/8

अर्थात तपस्वी, वेदों के ज्ञाता, धार्मिक पुरूषों की मैं पूजा करता हूं।

इसी क्रम में यह भी वर्णन है कि जो भोजन से पूर्व देवताओं की पूजा करते हैं, अपनी झूंठी बड़ाई नहीं करते, क्षमाशील एवं संतुष्ट रहते हैं। सत्य व्रती, यज्ञ करने वाले गौ पूजक, माता-पिता एवं कुटुम्ब के सेवक, अतिथि सेवक, ब्रह्मवादी, ईश्वर में आस्थावान, देव एवं पितरों के पूजक न्याययुक्त आचरण करनेवाले इस लोक में पूजनीय हैं। इन्हीं पूजनीयों के कार्यों एवं यशों का विस्तार ही नारद के संचार का मुख्य भाग है। इस प्रकार देवर्षि नारद के

संचार में एकात्म मानववाद के समष्टि दर्शन के तत्व हैं।

सृष्टि और आदिसंचारक नारद: आदिसंचारक नारद के संचार में सृष्टि भी संचार की केन्द्र थी। संस्कृत भाषा में सृष्टि शब्द की व्यक्ति सृज्+क्त् से हुई है। इसका अर्थ प्रकृति, प्राकृतिक संरचना, संसार की रचना, प्राकृतिक सम्पत्ति, गुणों की विद्यमानता, स्रष्टा रचयिता के साथ-साथ मानसिक सृष्टि से भी है। नारद ने सृष्टि के इस संदर्भ को अपने संचार में स्थान दिया है। उक्त का वर्णन आगे है।

आदिसंचारक देवर्षि नारद ने प्रकृति के समस्त संदर्भों पर समय-समय पर विचार किया। स्कन्द पुराण में उल्लिखित नारदीय विवरण के अनुसार इस पृथ्वी पर कुल बीस हजार छः सौ नदियां हैं। नदियां मीठे जल का स्रोत तथा मानव जीवन की आधार हैं। नारद जी ने पृथ्वी पर स्थित तीर्थों का भी वर्णन किया है। उनके अनुसार-

मुख्या पुरुष यात्रा हि तीर्थ यात्रा प्रसंगतः।
सद्भिः समागमो भूमिभागस्तीर्थ तयोच्य ते॥

स्क.मा.कु.मा/11/11

अर्थात् जिस भू-भाग पर संत-महात्मा निवास करते हैं वही तीर्थ कहलाता है। आदिसंचारक नारद ने मृत्यु की जीवन कथा का भी वर्णन किया है। इसका उल्लेख महाभारत में है। इसी के साथ भक्ति, ज्ञान और वैराज्ञ की जीवन कथा का वर्णन नारद जी द्वारा किया गया है। इसका उल्लेख भी पुराणों में है। पारिजात का वृक्ष पृथ्वी पर देवर्षि नारद के कारण उपलब्ध हो सका। कहा जाता है कि समुद्र मंथन में पारिजात प्राप्त हुआ था। नारद जी की प्रेरणा से उस वृक्ष को भगवान श्रीकृष्ण पृथ्वी पर ले आये। पारिजात वृक्ष मनुष्य एवं पर्यावरण का रक्षक है। नारद ने सृष्टि के रहस्यों को जानने के लिए प्रश्नोत्तरी संचार का प्रारम्भ किया। इसका वर्णन स्कंदपुराण में है। उन्होंने सृष्टि के आवश्यक पच्चीस तत्वों का वर्णन किया है। देवर्षि नारद पच्चीस तत्वों के गृह को शरीर नाम दिया है। इनमें- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश जैसे पंच महाभूत रूप, रस, गंध, शब्द एवं स्पर्श जैसे पांच विषय, आंख, कान, नासिका, जिह्वा, त्वचा रूपी पांच ज्ञानेन्द्रिय के साथ-साथ वाक् (जिह्वा), हाथ, पैर, गुदा एवं लिंग रूपी पांच कर्मेन्द्रिय के अतिरिक्त मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति और पुरुष -ये पच्चीस तत्व शरीर एवं समस्त सृष्टि के आधार हैं। पच्चीसवां तत्व सदाशिव, पुरुष स्वरूप है। तत्वों की जिज्ञासा प्रश्नोत्तरी द्वारा उन्होंने सृष्टि के ज्ञान को स्पष्ट किया।

आदि संचारक नारद ने जीवन सृष्टि के वर्णन में स्पष्ट किया है कि संकल्प से हर्ष उत्पन्न होता है और यह सृष्टि का आधार है। मनोनुकूल शब्द, रस और रूप से भी हर्ष की उत्पत्ति होती है। रज में मिले वीर्य में पहले प्राण कार्य प्रारम्भ करता है। शुक्र और रस से हर्ष की उत्पत्ति होती है। कार्य रूप में जो मिथुन है, उन दोनों के बीच हर्ष व्याप्त होकर स्थिर है। अग्नि अर्थात् परमात्मा ही सम्पूर्ण देव है। इस प्रकार नारद जी के अनुसार संकल्प, हर्ष एवं अग्नि मनुष्य ही उत्पत्ति के मुख्य कारक हैं। यह विवरण महाभारत में है।

आदिसंचारक नारद ने संसार का मूल सूर्य को माना है। उनके अनुसार रात्रि में सूर्य प्रभा (तेज) अग्नि में प्रवेश कर जाती है। सूर्योदय के समय पुनः सूर्य में प्रवेश करती है। सूर्य की बीस किरणों के प्रकारों का वर्णन भी

नारद ने किया है। इन किरणों में - हेति, किरण, गौ, रश्मि, गभस्ति, अभीषु, धन, वसु, मरीचि, नाड़ी, दीधिति, साध्य, मयूर्ख, भानु, अंशु, सप्तार्चि, सपर्व, कर, उस्र तथा पाद हैं। ये किरणें संख्या व्यवहार में एक हजार हैं। इनमें से वृष्टि कराने वाली चार सौ किरणों का नाम चंदन है। तीन सौ किरणें हिम को वहन करती हैं, उनका नाम चन्द्र है। शेष शुक्ल नाम की तीन सौ किरणें धूप की सृष्टि करती हैं। ये सभी किरणें - औषधि, स्वधा और अमृत रूप में क्रमशः मनुष्यों, देवताओं और पितरों को संतृप्त करती हैं। भू-लोक तीन सौ किरणों से प्रकाशित होता है। चन्द्रमा, तारा आदि सूर्य से प्रकाशित होते हैं। सूर्य से वृष्टि, वृष्टि से अन्न तथा अन्न से प्रजापालन है। सूर्य के बिना क्षण, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, संवत्सर, कल्प आदि की कल्पना एवं अस्तित्व संभव नहीं है। सूर्य के बारह नामों के आधार पर बारह मास हैं - उत्तरायण में सूर्य की किरणों की वृद्धि होती है तथा दक्षिणायन में किरण वृद्धि घटती है। नारद जी का सूर्य वर्णन हमें भविष्य पुराण में मिलता है। इसका स्पष्ट है कि आदिसंचारक नारद ने सम्पूर्ण सृष्टि के रहस्य को स्पष्ट किया। उनका यह प्रसंग वर्तमान में भी प्रासंगिक है। नारद जी सृष्टि के सम्पूर्ण रहस्यों को जानते थे। उनके द्वारा वर्णित 25 तत्वों के संदर्भ से सृष्टि की एकात्मता स्पष्ट होती है। इस प्रकार आदिसंचारक नारद जी का सृष्टि संदर्भ महत्वपूर्ण एवं एकात्म मानव दर्शन का आधार है।

परमेष्टि और आदिसंचारक नारद: संस्कृत भाषा में परमेष्ठ या परमेष्ठि समानार्थी शब्द हैं। परमेष्ठ शब्द की व्युत्पत्ति परम्+इष्टन् से है, जिसका अर्थ - ईश्वर, ब्रह्म (ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव), आध्यात्मिक, गुण, अग्नि, देव, संन्यासी, श्रेष्ठ, सर्वशक्तिमान, एवं परमात्मा से है। आदि संचारक नारद का सम्बन्ध परमेष्ठि से था। इसका वर्णन पुराणों में है। यहां हम यह उल्लेख करेंगे कि प्रमुख कौन से परमेष्ठि थे, जिनसे देवर्षि नारद का प्रत्यक्षतः सम्बन्ध था। इन परमेष्ठियों में -भगवान, ब्रह्मा, विष्णु, महेश के साथ-साथ सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती से सम्बन्ध थे। इसी के साथ-साथ सनत्कुमार, अंगिरा, वाल्मीकि, श्रीराम, हनुमान, इन्द्र, कृष्ण, बलराम, बलि, व्यास, शुक्रदेव, मार्कण्डेय, गालव, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, बिदुर, पुण्डरीक, संजय, प्रह्लाद, ध्रुव, दक्ष आदि से सम्बन्ध थे। इसके मयासुर, महिषासुर, रावण एवं कंस आदि आसुरी शक्तियों से भी थे। इससे स्पष्ट है कि नारद जी का सम्बन्ध देव एवं दैवीय शक्ति प्राप्त ऋषियों एवं तपस्वी असुरों से भी था। देवर्षि नारद ने परमेष्ठि सम्बन्ध के आधार पर सृष्टि के कल्याण का कार्य किया। जब-जब आसुरी प्रवृत्तियों ने अनाचार किया, तब-तब देवर्षि नारद ने ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव से सम्पर्क कर उन आसुरी शक्तियों के विनाश के लिए प्रार्थना की। इस प्रकार आदिसंचारक नारद स्वयं भी परमेष्ठि शक्तियुक्त थे तथा अपने कार्यो से परमेष्ठि के व्यवहार को निरंतर बढ़ावा दिया। उनके प्रयासों से सृष्टि में न्याय, त्याग, सत्य आदि की स्थापना समय-समय पर हुई। इतना ही नहीं नारद का सम्बन्ध भक्ति, ज्ञान, वैराज्ञ, मृत्यु आदि से भी था। नारद ने लोकरंजन अथवा लोक-कल्यांण के लिए परमेष्ठि विष्णु को आसुरी शक्तियों के समापन के लिए अवतार लेने की भी प्रार्थना की। भगवान शिव के पुत्र द्वारा असुरों के संहार के लिए शिव विवाह को भी सम्पन्न कराया। इस प्रकार नारद जी ने सदा ही परमेष्ठि सम्बन्ध का उपयोग सृष्टि की रक्षा के लिए किया। इस प्रकार परमेष्ठि से भी जीव-जगत के एकात्म का कार्य नारद जी ने किया। नारद जी का परमेष्ठि सम्बन्ध एकात्म मानव दर्शन का श्रेष्ठ उदाहरण है।

कामाक्षा तीर्थ महिमा और आदिसंचारक नारद: नारद जी ने नारद पुराण में असम स्थित कामाक्षा शक्तिपीठ का भी वर्णन किया है। उनके अनुसार कामाक्षा श्रेष्ठ देवी हैं। कलियुग में मुक्ति प्रदान करने वाली हैं। कामाक्षा देवी के पूजन तथा दृढ़ आसन में एक रात्रि व्यतीत करने वाले साधु को देवी साक्षात दर्शन देती हैं। देवी को देखकर विचलित नहीं होने वाले को सिद्धि प्राप्ति होती है। यहां पार्वती पुत्र सिद्धनाम रहते हैं। परम्परा अनुसार योगी मत्स्यनाथ ही सिद्धनाथ हैं। कलियुग में इनके एक चरण का ही दर्शन होता है। ये कठिन तपस्या में लगे हैं। इस प्रकार असम की शक्तिपीठ का भी वर्णन देवर्षि नारद ने किया है।

इससे स्पष्ट है कि आदिसंचारक नारद के संचार में एकात्ममानव दर्शन के व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि एवं परमेष्ठि के तत्व समाहित हैं। आदिसंचारक नारद जी का सम्पूर्ण जीवन एवं कार्य एकात्म मानवदर्शन पर ही आधारित है। उनकी एकात्मता में सम्पूर्ण त्रैलोक्य एक ही है।

संदर्भ: इस लेख में निम्न संदर्भों का उपयोग हुआ है -

1- सिह ओम प्रकाश, आदिपत्रकार नारद और उनकी पत्रकारिता, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, करमपुरा, नई दिल्ली, 2013

2- आप्टे वामन शिवराम, संस्कृत हिन्दी कोश, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1996

3- महाभारत, प्रथम एवं द्वितीय खण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर, सं.2065 एवं सं. 2067.

4- श्रीमद् भागवत, महापुराण गीता प्रेस गोरखपुर, प्रथम एवं द्वितीय खण्ड, सं. 2067.

5- संक्षिप्त भविष्य पुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, सं. 2067.

6- संक्षिप्त पद्मपुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, सं. 2067.

7- संक्षिप्त स्कंदपुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, सं. 2056.

8- संक्षिप्त नारदपुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, सं. 2067.

9- श्रीमद् वाल्मीकि रामायण, गीताप्रेस गोरखपुर, प्रथम एवं द्वितीय खण्ड, सं. 2049.

10- संक्षिप्त शिवपुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, सं. 2016.

11- Compact oxford Dictionary thesaurus word power guide, oxford university Press, 20th edition, Delhi-2005.

●●●

भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरणीय चेतना

डॉ. प्रमोद कुमार मिश्र[1]

सारांश

जब सम्पूर्ण विश्व को आगे आने वाली विकट पर्यावरणीय समस्या के बारे में तनिक भी भान नहीं था तब पर्यावरण संरक्षण पर भारतीय मनीषियों ने गम्भीर चिंतन-मनन किया और प्रकृति के विनाश से आने वाले गंभीर संकट की चेतावनी दी थी। 'सिंधु-सभ्यता' के निवासी अपनी विकसित पर्यावरणीय चेतना के कारण 'वृक्ष-पूजा' करते थे। पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि सैंधव निवासियों के अन्दर वृक्षों; वनस्पतियों, जल एवं अन्य प्राकृतिक शक्तियों, यज्ञ, हवन, धूप-दीप,पृथ्वी पूजा आदि के प्रति विशेष लगाव था, जिससे उनकी पर्यावरण के प्रति विकसित चेतना का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है, जिसकी परंपरा 'वैदिक साहित्य' में और अधिक विस्तार के साथ देखी जा सकती है। वेदों में सभी 'पंचमहाभूतों की प्राकृतिक विशेषताओं और उनकी क्रियाशीलता का विस्तृत वर्णन है। चारों वेदों में पर्यावरण सम्बन्धी अनेक ऋचाएँ प्राप्त होती हैं। प्राकृतिक तत्वों से अनावश्यक, अमर्यादित और अप्राकृतिक छेड़छाड़ के दुष्परिणामों के बारे में भी वैदिक संहिताओं में स्पष्ट संकेत किया गया है। भारतीय ज्ञान परंपरा में भूमि को 'माता' कहा गया है। वैदिक ऋषियों ने न केवल पृथ्वी के पर्यावरण को क्षरित होने से बचाने का उपाय बताया बल्कि मानव जीवन एवं सृष्टि पर आने वाले हानिकारक विनाशों की ओर संकेत भी किया है। वैदिक संहिताओं में 'पंचमहाभूत' को बहुत अधिक महत्व देने के साथ-साथ उसके सभी प्रकारों को चिन्हित किया गया है।

मुख्य शब्द- *पर्यावरण, पारिस्थितकी, सिंधु-सभ्यता, हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, पीपल, पंचमहाभूत, प्रकृति, श्रीमद्भगवद्गीता, वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, कालीबंगा, पञ्चतत्व, आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी।*

'पर्यावरण' शब्द का निर्माण दो शब्दों से मिलकर हुआ है। 'परि' जो हमारे चारों ओर है। 'आवरण' जो हमें चारों ओर से घेरे हुए है। अतः 'पर्यावरण' शब्द का शाब्दिक अर्थ हुआ "चारों ओर से घेरे हुए।" कहा भी गया है- "परितः लक्षणं पर्यावरणम्"

अंग्रेजी शब्द 'एनवायरमेन्ट' (Environment) की उत्पत्ति फ्रेंच भाषा के शब्द 'एन्वॉयरोनिया' से हुई है, जिसका अर्थ है "चारों ओर से घेरना।"[2] पर्यावरण अनेक तत्वों का समूह है, जो कि सदैव क्रमबद्ध तंत्र के रूप में अवचालित होता है। पर्यावरण के सभी तत्व एक दूसरे से परस्पर नाभिनालबद्ध जुड़े एवं उन पर निर्भर होते हैं, जो

1. असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, सनातन धर्म कॉलेज, मुजफ्फरनगर उत्तर प्रदेश, भारत-251001, Mob. 9415116773

2. 'दैनिक जागरण, 'जोश', 15 मार्च 2016 ई. । पृ.सं.-4

कि सामूहिक रूप से पारिस्थिकी-तंत्र को नियंत्रित करते हैं। जब तक इन सभी तत्वों का स्वरूप समानुपातिक रहता है, पर्यावरण संतुलित रहता है, किन्तु जैसे ही यह अनुपात असंतुलित होता है, पर्यावरण और पारिस्थितकी तंत्र भी असंतुलित होने लगता है, जिसे 'पर्यावरण अवकर्षण' या 'पर्यावरण निम्नीकरण' कहते हैं। यह असंतुलन यदि सामयिक और सीमित होता है तो प्रकृति स्वतः इसे संतुलित कर लेती है किंतु यह असंतुलन यदि बहुत अधिक होता है तो उससे संपूर्ण पर्यावरण का स्वभाव ही बदल जाता है, जिसके कारण 'जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, ओजोन परत क्षरण, आर्द्रभूमियों का विनाश, जैव-विविधता का क्षरण, पर्यावरण प्रदूषण, जैव असंतुलन, रासायनिक संकेन्द्रण, प्रवाल विरंजन आदि अनेक गंभीर एवं हानिकारक परिणाम देखने को मिलते हैं। औद्योगिक-युग से पूर्व भारत एवं विश्व में जब 'पर्यावरणीय' एवं 'पारिस्थितकीय समस्याएँ लगभग न के बराबर थीं, जब सम्पूर्ण विश्व को आगे आने वाली विकट पर्यावरणीय समस्या के बारे में तनिक भी भान नहीं था; उससे हजारों वर्ष पूर्व भारतीय चिंतन में 'पर्यावरण संरक्षण' एक अतिमहत्वपूर्ण बिन्दु था। यहाँ तक कि ऐतिहासिक काल से पूर्व 'आद्य-ऐतिहासिक युग' (सिंधु-सभ्यता)[3] के मनीषियों ने भी 'पर्यावरण' पर विशेष जोर दिया था, जिसके पुरातात्विक साक्ष्य आज भी मौजूद हैं। 'सिंधु-सभ्यता' के पश्चात ऐतिहासिक युग (वैदिक युग, उत्तर वैदिक युग, रामायण-महाभारत युग, सूत्र-स्मृति युग, बौद्ध-जैन युग, मौर्य काल, मौर्योत्तर काल, गुप्त काल, गुप्तोत्तर काल आदि) में 'पर्यावरण संरक्षण पर भारतीय मनीषियों ने गम्भीर चिंतन-मनन किया और प्रकृति के विनाश से आने वाले गंभीर संकट की चेतावनी दी थी।

सिंधु-सभ्यता के निवासियों की पर्यावरणीय चेतना :

'सिंधु-सभ्यता' के निवासी अपनी विकसित पर्यावरणीय चेतना के कारण 'वृक्ष-पूजा' करते थे। इस सभ्यता में एक मुहर (सील) पर पीपल की डालों के बीच विराजमान देवता चित्रित है। इस वृक्ष की पूजा आज तक जारी है।[4] 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भी भगवान कृष्ण कहते हैं-"अश्वत्थ: सर्ववृक्षाणां"[5](मैं सभी वृक्षों में पीपल का वृक्ष हूँ)

'अश्वत्थ वृक्ष (पीपल) का पर्यावरणीय और औषधीय महत्व सर्वविदित है। यह पृथ्वी के विशालकाय वृक्षों में से एक है, जो चौबीसों घंटे ऑक्सीजन का उत्सर्जन करता है। एक परिपक्व पीपल का पेड़ एक दिन में 9-10 लोगों के लिये ऑक्सीजन पैदा कर सकता है। इसके पेड़ हवा से प्रदूषक तत्वों, हानिकारक गैसों को अवशोषित करके 'वायु-प्रदूषण' को कम करते हैं। इसे एक आधारभूत पारिस्थितिक वृक्ष माना जाता है। 'सनातन धर्म' में इसकी पूजा का प्रचलन 'सिंधु-सभ्यता' से ही है, इस वृक्ष का संबंध त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) से भी जोड़ा जाता है। जीवन, धन और उर्वरता का प्रतिनिधित्व करने वाले इस वृक्ष को भगवान विष्णु का निवास स्थान माना जाता है। भगवान बुद्ध को इसी वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ था, इसलिये यह बौद्ध-धर्म में भी पूजित वृक्ष है। पीपल वृक्ष की

3. 'सिंधु सभ्यता' के अन्य नाम- हडप्पा सभ्यता, घग्गर-हाकरा सभ्यता, कांस्य सभ्यता आदि हैं।
4. प्रारंभिक भारत का परिचय, रामशरण शर्मा, ओरियंट लांग्मैन, नई दिल्ली, 2004, पृ. सं. 83
5. श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर, इकतीसवाँ पुनर्मुद्रण, सं०2071, 10/26, पृ. सं. 155

पत्तियों और छाल का उपयोग प्राचीन काल से ही भारत की पारम्परिक चिकित्सा प्रणाली 'आयुर्वेद' में दवा बनाने के लिए किया जाता रहा है। इस वृक्ष में एनाल्जेसिक, सूजनरोधी और रोगाणुरोधी गुण होते हैं। इसकी पत्तियों का उपयोग अस्थमा, मधुमेह और त्वचा रोगों के इलाज में किया जाता है। कब्ज, दस्त और जठरांत्र संबंधी समस्याओं में भी इसकी पत्तियों उपयोग किया जाता है। यह वृक्ष स्थिरता का प्रतिनिधित्व करता है।, इसकी गहरी जड़-प्रणाली मिट्टी के संरक्षण और कटाव को रोकने में मदद करती है। । ऐसे कठिन युग में जब दुनिया जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय क्षति से जूझ रही है इसके विकट परिस्थिति में पनपने , जैव-विविधता को संरक्षित करने और वायु की गुणवत्ता में सुधार करने की अपनी क्षमता के कारण यह पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान में एक सम्मोहक प्रतीक और उपयोगी अस्त्र है। यह वृक्ष कई पारिस्थितिक तंत्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, इसीलिये 'सिंधु-सभ्यता' से लेकर आज तक इसे एक पवित्र वृक्ष माना गया है। यह वृक्ष भारतीय संस्कृति का सबसे पवित्र प्रतीक है। सिंधु-सभ्यता, वेदों, पुराणों, रामायण, महाभारत आदि अनेकानेक ग्रंथों में इसके महत्व का विशद् स्वरूप और वर्णन देखने को मिलता है, जो कि पर्यावरणीय चिंतन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। सिंधु-सभ्यता में 'वृक्ष-पूजा' व्यापक रूप से प्रचलन में थी।[6] इस सभ्यता से प्राप्त एक अन्य मुहर (सील) पर यह चित्रित है कि एक पीपल के पेड़ के बीच में भगवान खड़े हैं और एक भक्त अपने घुटनों के बल भगवान की पूजा कर रहा है।[7]

'सिन्धु सभ्यता' से प्राप्त एक मूर्तिका में 'स्त्री के गर्भ से निकलता पौधा' दिखाया गया है। यह संभवतः 'पृथ्वी देवी' की प्रतिमा है और इसका निकट संबंध पौधों के जन्म और वृद्धि से रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पाई लोग धरती को 'उर्वरता' की देवी समझते थे और इसकी पूजा उसी तरह करते थे जिस तरह मिश्र के लोग नील नदी की देवी 'आइसिस' की पूजा करते थे।[8] कुछ वैदिक सूक्तों में भी 'पृथ्वी माता' की स्तुति है।[9] सिंधु सभ्यता के कुछ चित्रों में पक्षी वृक्ष की शाखा पर बैठे और कुछ पर उसके समीप दिखलाए गये हैं।[10] हड़प्पा से प्राप्त एक ही भाण्ड के तीन टुकड़ों पर अलग- अलग तीन दृश्यों का अंकन है, एक फलक में वृक्ष की शाखा दिखाई गई है[11] दूसरे में एक हिरनी बच्चे को दूध पिला रही है। हिरनी से ऊपर वाले भाग में दो पक्षी और एक मछली है।[12] तीसरे में एक तरफ पेड़, पेड़ की शाखाएँ, मानव हाथ, सिर और शायद नागफण का अंकन है।[13] सिंधु सभ्यता की मुद्राओं के एक उदाहरण में पीपल की शाखा के निचले भाग से एक श्रृंगी पशु के दो सिर निकलते दिखाए गये हैं।[14] मकाई नामक विद्वान ने सिंधु सभ्यता की कुछ मुहरों पर बबूल एवं झण्डी के पेड़ की पहचान की है।[15] अन्य अनेक प्रकार

6. प्रारंभिक भारत का परिचय, रामशरण शर्मा, ओरियंट लांग्मैन, नई दिल्ली, 2004, पृ.सं. 83
7. हडप्पा सभ्यता, अंशुमान उपाध्याय, अभिव्यक्ति प्रकाशन, प्रयागराज, 1998 ई०, पृ. सं. 48
8. प्रारंभिक भारत का परिचय; रामशरण शर्मा, ओरियंट लांग्मैन, नई दिल्ली, 2004, पृ.स. 82-83
9. वही, पृ.सं. 83
10. सिंधु सभ्यता, के० के० थपल्याल एवं संकठा प्रसाद शुक्ल, ग्रंथांक-171, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान', लखनऊ, पंचम संस्करण 2005, पृ.सं. 108
11. वही, पृ. सं. 109
12. वही, पृ. सं. 109
13. वही, पृ. सं. 109
14. वही, पृ. सं. 94
15. वही, पृ. सं. 94

के अंकित वृक्षों की पहचान संदिग्ध है।[16] हड़प्पा की एक मुद्रा पर मध्य में कोई आकृति बैठी हुई अंकित है जो किसी देवता की लगती है, इसमें एक पेड़ भी दिखाया गया है जिस पर बने मचान पर एक आदमी बैठा है और पेड़ के नीचे बाघ है।[17]

एक ताम्रफलक पर पेड़ के पत्तों के बने वस्त्र पहने पुरुष हाथ में धनुष-बाण लिए अंकित है, यह वनस्पति या उत्पादिका शक्ति से सम्बन्धित देवता हो सकता है।[18] सर जॉन मार्शल (मोहनजोदड़ो के उत्खननकर्ता एवं तत्कालीन समय में भारतीय पुरातत्व एवं सर्वेक्षण विभाग के प्रमुख) ने विभिन्न मुद्राओं पर चित्रित वृक्षों से अनुमान लगाया है कि ऐतिहासिक काल के लोगों के समान सिंधु सभ्यता के लोग भी वृक्षों की दो तरह से पूजा करते थे - 1. उनकी जीवंत रूप में कल्पना करके 2: प्राकृतिक रूप में। सिंधु-सभ्यता में वृक्षों को देवता की पूजा में रोपने का भी प्रमाण भी प्राप्य है।[19] नीम जैसे वृक्ष की पूजा का भी अंकन सिंधु-सभ्यता की मुहरों पर हुआ है।[20] इसी प्रकार मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक अन्य मुद्रा में एक आदमी झुका हुआ है तथा एक वृक्ष को जल चढ़ा रहा है, इसे प्रकृति रूप में पूजा किये जाने का साक्ष्य माना जाता है। सैंधव- सभ्यता के मुहरों एवं मृद्भाण्डों पर पीपल, बबूल, नींबू, नीम, खजूर, ताड़ और केले के पौधों का बहुतायत मात्रा में चित्रण हुआ है।[21]

यज्ञ, हवन, धूप, दीप आदि किस प्रकार पर्यावरण के लिये मित्र हैं और वातावरण के हानिकारक अवयवों को नष्ट करके वायु को शुद्ध करते हैं यह तथ्य वर्तमान समय में किसी से नहीं छुपा हुआ है। इनके प्रभाव का अंदाजा केवल इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि 'भोपाल गैस त्रासदी' के दौरान चर्चा में आए कुशवाहा-परिवार द्वारा मात्र बीस मिनट तक किये गये 'अग्निहोत्र-यज्ञ' से पूरे परिवार की जान बच गई और मिथाइल आइसोसायनाइड (जहरीली गैस) का प्रभाव पूरी तरह समाप्त हो गया।[22] यज्ञ करने का प्रचलन भारत में सिंधु-सभ्यता से ही प्राप्त होने लगता है। । गुजरात, राजस्थान और हरियाणा के सैंधव पुरास्थलों से बहुत सी अग्निवेदियाँ अथवा अग्निकुण्ड पाए गये हैं। कालीबंगा, लोथल और बनावली में ऐसी अनेक अग्निवेदिकाएँ पाई गई हैं, जिनका उपयोग संभवतः यज्ञ-वेदिकाओं के रूप में किया जाता था । राजस्थान के 'कालीबंगा' नामक सैंधवस्थल से सात अग्निवेदिकाएँ एक ही कतार में पायी गई हैं।[23] कालीबंगा के निचले नगर के अनेक घरों में भी अग्निवेदिकाएँ प्राप्त हुई हैं।[24] कालीबंगा में निचले नगर के बाहर पूर्व में एक छोटे से टीले के उत्खनन से भीतर पाँच अग्निवेदिकाओं

16. वही, पृ. सं. 94
17. वही, पृ. सं.146
18. वही, पृ. सं.147
19. वही, पृ. सं.150
20. वही, पृ. सं.151
21. प्राचीन भारत, एस. के. पाण्डे, प्रयाग पुस्तक भवन, प्रयागराज, 200/ई पृ. सं. 78
22. 'अमर उजाला, 02 दिसम्बर 2018, 'दैनिक भास्कर, 02 दिसंबर 2018, लल्लनटॉप, 03 दिसंबर 20:19, 'ABP News 25 मार्च 2024, 'अमर उजाला 29 नवंबर 20:18 आदि।
23. 'सिंधु सभ्यता, डॉ० के०के० थपल्याल एवं डॉ. संकठा प्रसाद शुक्ल, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, ग्रंथांक 171, प्रथम संस्करण 1976, पंचम संस्करण 2003, पृ. सं.-60, 157, 158
24. वही, पृ. सं. 157

समूह मिला है।[25]

पुरातत्वविद रंगनाथ राव के विवरण के अनुसार लोथल के घरों ही नहीं अपित कुछ सार्वजनिक स्थानों में भी थोड़ी ही ऊँची वेदियों के समान पक्की ईंटों के घेरे मिले हैं। इनके भीतर भी तिकोने मिट्टी के केक, अंडाकार मिट्टी की गोलियाँ, राख और मृदभाण्ड के टुकड़े मिले हैं। इनमें से कुछ में गड्ढे मिले हैं, जिसमें मूलतः लकड़ी के खंभे लगे रहे होंगे। एक स्थान पर वेदी के साथ पक्की मिट्टी का चम्मच भी मिला, जिस पर धुएँ के धब्बे थे। रंगनाथ राव का अनुमान है कि इनका प्रयोग आग में तरल पदार्थ डालने के लिए किया जाता था।[26] एक अग्निस्थल के समीप तो एक कलात्मक चित्रित बर्तन भी मिला है जिसका संबंध भी अग्निपूजा से संबंधित अनुष्ठान से लगता है।[27]

हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, चन्हूदडो इत्यादि स्थलों के उत्खनन से मिट्टी की अनेक नारी आकृतियाँ मिली हैं। प्रायः पंखाकार शिरोभूषा के दोनों और दाएं-बाएँ दीपक जैसी आकृतियाँ बनी हैं, जिनमें कालिख लगी मिली है। कालिख इस बात का द्योतक लगती है कि इनमें दीप-बत्ती या धूप जलाई गई होगी। मकाई नामक पुरातत्वविद का मत है कि सम्भवतः इनमें तेल बत्ती डालकर इनका प्रयोग दिये की तरह किया गया रहा होगा।[28] इसके अलावा 'सैंधव निवासियों' का 'जल तत्व' के महत्व का ज्ञान था और वे उस की पूजा किया करते थे।[29] पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि सैंधव निवासियों के अन्दर वृक्षों; वनस्पतियों, जल एवं अन्य प्राकृतिक शक्तियों, यज्ञ, हवन, धूप-दीप, पृथ्वी पूजा आदि के प्रति विशेष लगाव था, जिससे उनकी पर्यावरण के प्रति विकसित चेतना का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है, जिसकी परंपरा 'वैदिक साहित्य' में और अधिक विस्तार के साथ देखी जा सकती है, इसीलिए अनेक विद्वानों का विचार है कि 'सिंधु-सभ्यता' और 'आर्य संस्कृति' दोनों के निर्माता एक ही थे। उनके अनुसार दोनों में जो विभेद है वह समय का अंतर मात्र है। वैदिक सभ्यता या तो हड़प्पा सभ्यता की जन्मदात्री थी अथवा उससे ही विकसित थी।[30] रंगनाथ राव, टी. एन. पुसालकर, स्वामी शंकरानन्द, बुद्ध प्रकाश जैसे पुरातत्वविद सिंधु-सभ्यता को तमाम प्रमाणों के आधार पर आर्यों की ही सभ्यता मानते हैं।[31] जबकि, सर जॉन मार्शल जैसे विद्वान इस बात पर शंका प्रकट करते हैं कि दोनों सभ्यताएँ एक थीं।[32]

वैदिक युगीन ऋषियों की पर्यावरणीय चेतना :

आधुनिक विज्ञान ने इस जगत का विभाजन दो स्थूल भागों में किय है- 1. सजीव 2. निर्जीव । यह

25. वही, पृ. सं. 158
26. वही, पृ. सं. 158
27. वही, पृ. सं. 158
28. वही, पृ. सं. 139, 140
29. भारत का सांस्कृतिक इतिहास, डॉ. राजेन्द्र पाण्डेय, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान; लखनऊ, हिन्दी ग्रंथ अकादमी ग्रंथांक-176, पृष्ठ संख्या 29-30
30. 'सिंधु सभ्यता', डॉ. के.के. थपल्याल एवं डॉ. संकठा प्रसाद शुक्ल, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, ग्रंथांक-171, प्रथम संस्करण 1976, पंचम संस्करण 2005, परिशिष्ट 12, पृष्ठ संख्या-319 से 325
31. वही, पृ. सं. 320
32. वही, पृ. सं.321

विभाजन स्थूल होने के साथ ही साथ अतार्किक, अस्पष्ट, अवैज्ञानिक, अनिश्चित और संदेहास्पद है। वास्तव में इस जगत में सब कुछ प्राकृतिक रूप से सजीव है, कुछ भी निर्जीव नहीं है। 'पंचमहाभूत' जिनसे इस सम्पूर्ण जगत का निर्माण, उद्भव और विकास हुआ है और लगातार हो रहा है, वे अलग-अलग और एकाकार दोनों अवस्था में सजीव तत्व हैं। उनमें केवल चेतना का स्तर भिन्न-भिन्न है। जगत का प्रत्येक कण सजीव है, इस बात को एक सामान्य उदाहरण से समझा जा सकता है। 'पृथ्वी' पर अवस्थित मिट्टी जिसे हम साधारणतः निर्जीव समझते हैं; से ही दूब घास और अनेकानेक फसलों से लेकर आम, कटहल, महुआ, पीपल, बरगद आदि जैसे विशालकाय वृक्ष, एक कोशिकीय जीवों (अमीबा, यूग्लीना, पैरामीशियम आदि), बहुकोशिकीय जीवों सहित समस्त जैविक पदार्थों की उत्पत्ति इसी से हुई है और अंततः सभी चीजें इसी में समाहित हो जाती हैं। अतः सभी जीवों की जननी (माँ) यह 'पृथ्वी' और 'मिट्टी' निर्जीव कैसे हो सकती है? स्पष्ट है; हम भ्रमवश इसे निर्जीव समझते हैं, किन्तु हमारे ऋषियों-मुनियों ने गहन-चिंतन के पश्चात इस पृथ्वी को माता और स्वयं को पुत्र माना और सजीव रूप में पृथ्वीपूजन, भूमिपूजन के मंत्रों का निर्माण किया। इसी प्रकार जिस 'वायु' को हम सामान्य रूप में निर्जीव समझते हैं, अगर उसका विलोपन हो जाय तो क्या होगा? इसीलिये 'वायु' को 'प्राणवायु' भी कहते हैं। जिस 'जल' को हम साधारणतः निर्जीव समझते हैं, अगर वह 'जल' न हो तो क्या होगा? जल का पर्याय 'जीवन' और 'अमृत' है, तो फिर 'जीवनामृत जल' निर्जीव कैसे हुआ? इसी प्रकार 'आकाश-तत्व' और 'अग्नि-तत्व' का लोप हो जाय तो किसी भी प्रकार के जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। अतः स्पष्ट है कि यह 'पंच-महाभूत' निर्जीव तत्व नहीं हैं। इनमें केवल चेतना का स्तर भिन्न-भिन्न मात्र है। अनेक पुराण, वेद और तंत्र शास्त्र से सम्मत ग्रंथ (नानापुराण निगमागम सम्मतं यद्")[33]' श्रीरामचरितमानस' में श्रीरामचंद्र जी तारा को ज्ञान देते हुए कहते है कि-"छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥"[34](पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु-उन पाँच तत्वों से यह अधम शरीर रचा गया है) कुछ व्याख्याकार 'श्रीरामचरितमानस' को 'पञ्चतत्वों' का ग्रंथ भी मानते हैं।[35]

एक समय था, जन आधुनिक पाश्चात्य-विज्ञान सजीव-निर्जीव की अपनी परिभाषाओं और व्याख्याओं के स्वनिर्मित खाँचे में पेड़-पौधों को भी 'निर्जीव' की कोटि में रखता था, किंतु जब भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु ने 'केस्कोग्राफ' नामक यंत्र का आविष्कार किया और इससे विभिन्न उत्तेजकों के प्रति पौधों की प्रतिक्रिया का अध्ययन करके यह सिद्ध किया कि वनस्पतियों और पशुओं के ऊतकों में काफी समानता है। पेड़-पौधे भी संवेदनशील होते हैं; वे दर्द, स्नेह आदि अनुभव कर सकते हैं तो पहले उनकी खिल्ली उड़ाई गई, किन्तु बाद में उनकी इस खोज को मान्यता देकर पेड़-पौधों को भी 'सजीव' की श्रेणी में रखा गया। संभव है कि भविष्यगामी अनुसंधानों के पश्चात आधुनिक पाश्चात्य-विज्ञान इन 'पंचतत्वों" को भी सजीव की श्रेणी में रख दे और सजीव-निर्जीव का स्थूलवर्गीकरण समाप्त हो जाए।

33. 'श्रीरामचरितमानस' गोस्वामी तुलसीदास, 'बालकाण्ड, श्लोक संख्या-07, टीकाकार-हनुमान प्रसाद पोद्दार (मझला साइज) एक सौ अड़तीसवाँ पुनर्मुद्रण,संवत-2080, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. 2 ,
34. वही 'किष्किंधाकाण्ड', 10/2, पृ. सं. 637
35. दैनिक जागरण, मीरजापुर, 10 जनवरी 2020 ई०।

वेदों में सभी 'पंचमहाभूतों' की प्राकृतिक विशेषताओं और उनकी क्रियाशीलता का विस्तृत वर्णन है। चारों वेदों में पर्यावरण सम्बन्धी अनेक ऋचाएँ प्राप्त होती हैं। आधुनिक विज्ञान प्रकृति के उन रहस्यों तक बहुत बाद में पहुँच पाया है, जिसे वैदिक ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व ही अनुभूत कर लिया था। अनेक प्रकार का ऐसा भी प्राकृतिक ज्ञान वेदों में उपलब्ध है, जिस तक पहुँचना वर्तमान मनुष्य के लिए 'दूर की कौड़ी' है। प्रसिद्ध इतिहासकार ए. एल. बाशम अपनी अद्वितीय कृति Wonder that was India (अद्‌भुत भारत) में इसका कारण बताते हुए कहते हैं कि वेदों के तमाम सूक्तों का वास्तविक और मूल अर्थ अभी तक नहीं जाना जा सका है।[36]

प्राकृतिक तत्वों से अनावश्यक, अमर्यादित और अप्राकृतिक छेड़छाड़ के दुष्परिणामों के बारे में भी वैदिक संहिताओं में स्पष्ट संकेत किया गया है और 'पर्यावरण संतुलन' को नष्ट करने के दुष्परिणाम किस प्रकार समस्त सृष्टि के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं, इसका भी वर्णन किया गया है।

वेदों में पृथ्वी को ऊर्जा, उर्वरता देने वाली "तप्तायनी' तथा आर्थिक सम्पन्नता देने वाली 'वित्तायनी' कहकर प्रार्थना की गई है कि वह हमें साधनहीनता, दीनता की व्यथा और पीड़ा से बचाए-

"तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यन्तान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात् ।"[37]

भारतीय ज्ञान परंपरा में भूमि को 'माता' कहा गया है तथा वैदिक मंत्रद्रष्टा ऋषि स्वयं को 'भूमिमाता' का पुत्र कहते हैं-"माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः ।"[38] (भूमि माता है तथा मैं उसका पुत्र हूँ।)

वेदों में क्षिति (पृथ्वी) तत्व का मानव जीवन में महत्व तथा अन्य चार प्रकृति तत्वों (जल, पावक, गगन, समीर) के साथ समायोजनपूर्वक क्रियाशील रहकर समस्त शक्तियों, जिसको वह धारित किये हुये हैं, को जीवन शक्ति प्रदान करने की विस्तृत व्याख्या की गई है और उसे (पृथ्वी को) समस्त जीवों का भरण पोषण करने वाली कहा गया है- "विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।"[39] साथ ही साथ माता पृथ्वी से यह भी प्रार्थना की गई है कि जब हम उसकी संपदा (अन्न, वनस्पति, औषधि, खनिज पदार्थ आदि) प्राप्त करने हेतु प्रयास करें तो हमें कई गुना फल प्राप्त हो। इसके साथ ही साथ मनुष्य को यह भी चेतावनी दी गई है कि उसके अनुसंधान और माता पृथ्वी को क्षत-विक्षत (खोदने)आदि के कारण उसके मर्मस्थलों को गम्भीर चोट न पहुँचे -

"वतते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदति रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वारि मा ते हृदयमर्पिपमा "[40]

ऐसा करने से गम्भीर और घातक दुष्परिणाम प्राप्त होते हैं, जैसा कि वर्तमान समय में दिखाई भी पड़ रहा है। मनुष्य द्वारा आविष्कृत उच्चतम तकनीक ने अधिकतम धनोपार्जन के लोभ-लालच में अमर्यादित विच्छेदन

36. अद्‌भुत भारत (The Wonder That was India) आर्थर लेवेलिन बॉशम (ए.एल. बाशम), शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा, 2020 ई०।
37. 'यजुर्वेद' 5/9
38. अथर्ववेद, पृथ्वीसूक्त' (भूमिसूक्त या मातृसूक्त)बारहवें काण्ड का सूक्त 1, 12 वीं ऋचा।
39. अथर्ववेद 1/16
40. अथर्ववेद 12/1/35

करके, अधिकतम खनिज पदार्थों का उत्पादन करके औद्योगिक और यांत्रिक विनाश के द्वारा मनुष्य ने स्वयं एवं संपूर्ण सृष्टि को खतरे में डाल दिया है। वनों, पर्वतों, नदियों; आर्द्रभूमियों तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों को प्रायः नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है जिसके विनाशकारी परिणाम दिन-प्रतिदिन देखने को मिल रहे हैं। अनेकानेक त्रासदियाँ 'माता पृथ्वी' पर पड़ी इसी अमर्यादित और गम्भीर चोट की देन है, जिससे पूरी सृष्टि काँप रही है।[41]

41. जलवायु परिवर्तन' के संबंध में 'पेरिस समझौते' में कहा गया है कि

(१) किसी भी मूल्य पर तापमान वृद्धि को 1.5°c. पर ही सीमित करना होगा, अन्यथा 2.0°C पर पृथ्वी पर गंभीर पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न होंगी जिससे पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाएगा। COP-21, रिपोर्ट।

- वर्ष 1990 से 2020 तक निर्वनीकरण के कारण विश्व में 420 मिलियन हेक्टेयर वनों का नाश हो गया। 2000 से 2020 के मध्य विश्व में लगभग, 147 मिलियन हेक्टेयर वन' लुप्त हो गए। 2015 से 2020 के मध्य में-विश्व भर में 'निर्वनीकरण' की दर 10 मिलियन हेक्टेयर प्रतिवर्ष रही। भारत की 17 वीं वन स्थिति रिपोर्ट' (ISFR-2021) के अनुसार प्राकृतिक वनों में पूर्व की तुलना में 1582 वर्ग कि. मी. की गिरावट आई है। पूर्वोत्तर के राज्यों में 1,020 वर्ग कि.मी. की गिरावट दर्ज की गई है। उत्तर प्रदेश राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्र पर मात्र '3.08% वन' बचे हैं। देश में पर्यावरणीय एवं पारिस्थितकीय संतुलन बनाए रखने के लिये कुल भौगोलिक क्षेत्र का न्यूनतम 33% वनावरण होना आवश्यक है (पहाड़ी क्षेत्रों में 67%) किंतु 'भारत वन स्थिति रिपोर्ट-2021 (ISFR-2021) के अनुसार देश के मात्र 21.71% भाग पर ही वनावरण बचा है, जो कि बेहद चिंताजनक है।

सन्दर्भ : विश्व वन स्थिति रिपोर्ट 2022, 'भारत वन स्थिति रिपोर्ट 2021 ई.।

- वर्ल्ड एयर क्वालिटी रिपोर्ट' 2021 के अनुसार दक्षिण एशिया के 15 सबसे प्रदूषित शहरों में भारत के 11 शहर शामिल हैं। भारत का कोई भी शहर WHO वायु गुणवत्ता निर्देश के तहत विनिर्दिष्ट 5 $\mu g/m^3$ के स्तर को प्राप्त नहीं कर सका। इस रिपोर्ट के अनुसा लगातार चौथे वर्ष विश्व की सबसे प्रदूषित राजधानी नई दिल्ली (PM 2.5 सांद्रता : 85 μgm^3) बन गई। यह स्थिति बेहद चिंताजनक है। सन्दर्भ : 'वर्ल्ड एयर क्वालिटी रिपोर्ट, 2021 ई०।
- सितंबर 2021 में प्रकाशित 'द स्टेट ऑफ वर्ल्ड ट्रीज' रिपोर्ट के अनुसार दुनिया भर में 17510 (30%) पेड़ों की प्रजातियाँ विलुप्त होने के कगार पर हैं, जिनमें से '142' प्रजातियाँ पहले ही जंगलों में विलुप्त हो चुकी हैं। विश्व में 58,497 पेड़ों की प्रजातियाँ लुप्त होने के खतरे का सामना कर रही हैं। सन्दर्भः 'द स्टेट ऑफ वर्ल्ड ट्रीज रिपोर्ट, २०१५ (बीजीसीआई, आईयूसीएन', 'एसएससी' की रिपोर्ट, यूएसए) 'रॉयल बोटेनिकल गार्डन, इंग्लैंड के वैज्ञानिकों का मानना है कि 18वीं सदी से अब तक पेड़-पौधों की 800 प्रजातियाँ' खत्म हो गई। हजारों प्रजातियाँ इतनी दुर्लभ अवस्था में पहुँच गई हैं कि वो प्रजनन भी नहीं कर पा रही हैं। इन वैज्ञानिकों का कहना है कि अगर डिटेल में स्टड़ी किया जाय तो विलुप्त होने वाले 'पेड़-पौधों' की संख्या इन आंकड़ों से बहुत ज्यादा है।

सन्दर्भ: aajtak.in (आजतक डॉट इन), लंदन, 10 दिसंबर 2022 ई० अपडेटेड 9.38 AM IST

- पूरी दुनिया में जीव जंतुओं की दस लाख से ज्यादा प्रजातियाँ विलुप्त होने के कगार पर हैं। पिछले पांच सौ वर्षों में सैकड़ों जीव दुनिया से ख़त्म हो गये। वैज्ञानिकों ने गिनती की है कि 1500 ई. से अब तक जानवरों की 881 प्रजातियाँ खत्म हो गई, इनका तो रिकार्ड है 'इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजरवेशन ऑफ नेचर' के मुताबिक ये तो गिनी हुई प्रजातियाँ हैं, लेकिन अनेक ऐसी प्रजातियाँ होंगी जिनके बारे में हमें नहीं पता है, लेकिन संभावना है कि 1473 से ज्यादा जीवों की प्रजातियाँ खत्म हो चुकी है। सन्दर्भ: आज तक, नई दिल्ली, 24- दिसंबर 2022 ई०, अपडेटेड 9.4-8 PM IST

- नेचर कम्युनिकेशंस' जर्नल में रॉब कुक की अगुवाई में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार पक्षियों की 12% प्रजातियाँ पिछले कुछ दशकों के दौरान विलुप्त हो गई हैं। अब तक पक्षियों की 1430 प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। पहले के अध्ययनों में यह संख्या 640 थी। पक्षियों का विलुप्तीकरण दुगुनी तेजी के साथ हो रहा है। पशु-पक्षियों की विलुप्ति का मुख्य कारण है- जीव-जंतुओं के रहने के स्थान पर इनसानी कब्जा, जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग और बेतहाशा प्रदूषण आदि। संदर्भः नवजीवन, महेंद्र पांडे, 31 दिसम्बर 2025 ई०। http//www.navjivan india.Com

- अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ' (IUCN) के 28 वें सम्मेलन 2023 की 'रेड लिस्ट' (रेड डाँटा बुक) में 157190 प्रजातियाँ शामिल हैं, जिनमें से 44016 पर विलुप्त होने का खतरा है, जिसमें भारत के पौधों, जानवरों की 132 प्रजातियाँ हैं। वैश्विक आकलन के अनुसार 10 लाख पशु और पौधों की प्रजातियाँ विलुप्त होने के कगार पर हैं। संदर्भ I UCN रेड लिस्ट-2023 ई.

वेदों में 'पृथ्वी' का केन्द्रबिन्दु 'आकाश' में माना गया है, जहाँ से उसे शक्ति और ऊर्जा मिलती है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। व्योमरूपी आकाश 'द्यौ' (द्यु-लोक, अंतरिक्ष से परे अपरिमित) को 'पिता' तथा 'क्षिति' (पृथ्वी)को 'माता' कहा गया है। पृथ्वी को आकाश ने चारों ओर से अपने आलिंगन में आवेष्टित किया हुआ है। सम्पूर्ण पर्यावरण प्रकृति स्वरूपा है, जो विलक्षण दैवीय शक्तियों से व्याप्त है। इसी से सृष्टि के समस्त जंगम-स्थावर प्राणियों, वनस्पतियों आदि को चेतना, ऊर्जा एवं पुष्टि प्राप्त होती है-

द्यौश्च मे इदं पृथिवीं चान्तरिक्षं चमेव्यचः ।
अग्नि सूर्य आपो मेघां विश्वेदेवाश्च सं ददुः ॥"[42]

अर्थात, द्यु-लोक, पृथ्वी, अंतरिक्ष, अग्नि, सूर्य, जल एवं विश्व के समस्त देवों (ईश्वरीय प्रकृति शक्तियों) ने सृष्टि को प्रकाशित किया है। इसीलिए 'यजुर्वेद' में कहा गया है कि-

"सन्ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं याद्विकास्तम् ।
यो देवानां चरसिप्राणथेन कस्मैदेव वषडस्तु तुभ्यम् ॥"[43]

अर्थात, उर्ध्वमुख यज्ञकुण्ड की भाँति पृथ्वी अपने विशाल हृदय को मातृवत, प्राणशक्ति सञ्चारक वायु जल एवं वनस्पतियों से पूर्ण करें। वायुदेव दिव्य प्राण ऊर्जा से संचारित होते हैं। आधार पृथ्वी (अपने दूषित उच्छ्वास -कार्बन कार्य) से उन्हें दूषित न करे।

वैदिक ऋषियों ने न केवल पृथ्वी के पर्यावरण को क्षरित होने से बचाने का उपाय बताया बल्कि मानव जीवन एवं सृष्टि पर आने वाले हानिकारक विनाशों की ओर संकेत भी किया है। ऋषिगण मनुष्यों से पर्यावरण की रक्षा एवं हम जो कुछ भी प्रकृति और देवताओं से प्राप्त कर रहे हैं उसे उन्हें लौटाकर पर्यावरण को स्थापित करने की अपेक्षा भी करते हैं। ऋषिगण भावी पीढ़ियों से प्रकृति एवं पर्यावरण को संरक्षित एवं संवर्धित करने की अपेक्षा भी करते हैं। ऋषियों ने संपूर्ण प्राकृतिक शक्तियों से 'शांति' एवं 'लोक कल्याण' की प्रार्थना की है-

" द्यौः शांतिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शांतिरापः शांतिरोषधयः शांतिः ।
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः
शं नो इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥"[44]

- संयुक्त राष्ट्र जैव विविधता संधि समरकंद, (12 फरवरी 2024) के अनुसार वन्य जीवों की प्रवासी प्रजातियों के संरक्षण पर कन्वेंशन (सीएमएस) के अंतर्गत सूचीबद्ध लगभग आधी (44%) प्रजातियों की संख्या में भारी गिरावट देखी जा रही है।
- वायु प्रदूषण' से 2021 में दुनिया भर में 81 लाख और अकेले भारत में 21 लाख मौतें हुई। 54% मौतें चीन और भारत में हुई। चीन में 23 लाख मौतें हुई। संदर्भ: यूनीसेफ और हेल्प इफेक्ट्स (USA) की रिपोर्ट, अमर उजाला, नई दिल्ली, २० जून 2024, पृ. सं 16, विश्व में 10% कार्बन उत्सर्जन के लिए सैन्य संघर्ष जिम्मेदार हैं, जो कि 36 देशों के सालाना उत्सर्जन से अधिक है अन्तर्थ अमर उजाला 20 जून 2024, नई दिल्ली, पृ. सं. 16

42. अथर्ववेद, 12/1/53
43. यजुर्वेद, 11/39
44. अथर्ववेद शांति सूक्त

(अर्थात, द्यु-लोक, पृथ्वी, विस्तृत अंतरिक्ष लोक, समुद्र, जल, औषधियाँ ये सभी उत्पन्न होने वाले अनिष्टों का निवारण करके हमारे लिए सुख एवं शांतिदायक हों। दिन के अधिष्ठाता सूर्यदेव, रात्रि के अभिमानी वरुण देव, पालनकर्ता विष्णुदेव, प्रजापालक प्रजापति, वैभव के स्वामी इंद्रदेव, बृहस्पतिदेव आदि सभी देव शांत हों और हमें शांति प्रदान करने वाले हों।)

'अथर्ववेद' के बारहवें काण्ड (अध्याय) का प्रथम सूक्त जिसमें कुल 63 मंत्र हैं; में 'प्रकृति' और 'पर्यावरण' के सम्बन्ध में अद्वितीय ज्ञान का प्राकट्य हुआ है। इसमें पृथ्वी के पर्यावरण, जीव-जगत, चर-अचर के सम्बन्धों की वैज्ञानिक व्याख्या की गई है, जो कि वर्तमान समय में, अपने रचनाकाल के समय की तुलना में अधिक प्रासंगिक है। इन सूक्तों में राष्ट्रीय अवधारणा और 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना विकसित, पोषित और पल्लवित हुई है। इसमें पृथ्वी के आधिभौतिक और आधिदैविक दोनों रूपों का स्तवन किया गया है। इसमें पृथ्वी के स्वरूप एवं उसकी उपयोगिता, मातृभूमि के प्रति प्रगाढ़ भक्ति का विवेचन किया गया है-

सत्यं वृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवी धारयन्ति ।[45]
सा नो भूतस्य भव्यस्य पल्यमरु लोक पृथ्वी नः करोति।।[46]

महान सत्य, कठोर नैतिक आचरण, शुभ कार्य करने का हुढ़ संकल्प, तपस्या वैदिक स्वाध्याय अथवा ब्रह्मज्ञान और सर्वलोक हित के लिए समर्पित जीवन पृथ्वी को धारण करते हैं। इस पृथ्वी ने भूतकाल में जीवों का पालन किया था और भविष्य काल में भी जीवों का पालन करेगी। इस प्रकार की पृथ्वी हमें निवास के लिए विशाल स्थान प्रदान करे।

"असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्यां उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या औषाधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रचतां राध्यातां नः ॥"[47]

अर्थात, जिस भूमि पर ऊँचे-नीचे समतल स्थान हैं तथा जो अनेक प्रकार की सामर्थ्य वाली जड़ी-बूटियों को धारण करती है। वह भूमि हमें सभी प्रकार से और पूर्ण रूपसे प्राप्त हो और हमारी सभी कामनाओं को पूर्ण करे।

देवता जिस भूमि की रक्षा-उपासना करते हैं, वह मातृभूमि हमें मधु सम्पन्न करे। इस पृथ्वी का हृदय परम आकाश के अमृत से सम्बन्धित रहता है। यह भूमि हमारे राष्ट्र में तेज-बल बढ़ाए-

"यां स्क्षन्त्यस्वप्रा विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीम प्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥[48]

हे पृथ्वी माता! तुम्हारे विशाल पर्वत, हिमाच्छादित पर्वत शिखर तथा विस्तृत वन श्रृंखला सुख देने वाले

45. "शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥" श्रीमद्भगवद्गीता, 18/42
46. अथर्ववेद, भूमिसूक्त (पृथ्वीसूक्त या मातृसूक्त)
47. वही, भूमिसूक्त 1/2
48. वही, भूमिसूक्त 1/7

हों। भूरे वर्ण की, कर्षणयोग्य, वृक्षों को स्वयं पर रोहित करने वाली अनेक रूपों में अवस्थित, स्थिर इन्द्र द्वारा रक्षित इस विस्तृत भूमि का मैं शत्रुओं द्वारा अजेय, अहिंसित, अक्षत होकर स्वामी बन जाऊँ अर्थात युद्धादि संघर्ष के बिना भी भूमि का अधिपति हो जाऊँ-

"गिरस्यते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।
वभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्र गुप्ताम्॥
अजितोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्॥[49]

हे पृथ्वी माता। मरणशील मनुष्यादि तुमसे ही उत्पन्न होते हैं। है। तुम पर ही विचरण करते हैं। तुम्हीं दो पैरों वाले मनुष्यादि तथा चार पैरों वाले पशुओं को धारण करती हो। जिन मनुष्यों के लिये उदित होता हुआ सूर्य किरणों द्वारा अमृतमय प्रकाश विस्तृत करता है। ये पाँच प्रजातियों वाले अनु, यदु, तुर्वसु, पुरु तथा द्रुह्यु[50] तुम्हारी ही संततियाँ हैं"

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं विभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।
तवेमे पृथिवि पञ्चमानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्तेभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मितभिरातनोती॥[51]

संपूर्ण औषधियों की उत्पादिका, स्थिर, विस्तृत स्वरूपवाली, सत्य आदि धर्म से रक्षित, कल्याणमयी, सुखप्रदात्री पृथ्वी की हम उपासक जन सर्वदा ही अनुसरण करें-

"विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा॥"[52]

यह पृथ्वी विशाल परिमाण वाली है। वह महान स्वरूप में ही उत्पन्न हुई। हे पृथ्वी ! तुम्हारी श्रेष्ठ गति परिक्रमण तथा घूर्णन है। इन्द्र देवता आलस्यरहित होकर सर्वदा तुम्हारी रक्षा करते हैं। हे भूमि ! वही प्रसिद्ध आप स्वर्ण सदृश दिखाई देती हुई हम उपासकों के लिए अन्नादि एवं धनादि से दीप्तिमान हो जाओ। हमसे कोई भी द्वेष नहीं करे -

"महत्सधस्थं महती वभूविथ महान्वेग एजथर्वेपथुष्टे महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्य प्रमादम्।
स नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन॥[53]

गुरुत्वाकर्षण शक्ति के धारण की क्षमता से युक्त, सभी प्रकार के जड़-चेतन को धारित करने वाली, जल देने के साथ मेघों से युक्त, सूर्य की किरणों से अपनी मलीनता (अंधकार) का निधन (निवारण) करने वाली पृथ्वी सूर्य के चारों ओर भ्रमण करती है-

49. वही, भूमिसूक्त, 1/11
50. वही, भूमिसूक्त।
51. वहीं, भूमिसूक्त, 1/15
52. वहीं, भूमिसूक्त, 1/17
53. वहीं, भूमिसूक्त, 1/18

"मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वाराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगायं ।।[54]

स्पष्ट है कि ग्रह, नक्षत्र मंडल सहित 'पृथ्वी' द्वारा सूर्य की परिक्रमा सम्बन्धी जिस तथ्य को आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान आज से मात्र दो-तीन सौ वर्ष पूर्व ही समझ पाया है उस भौतिक और सौरमण्डल के रहस्यपूर्ण तथ्य को वैदिक ऋषि आज से हजारों वर्ष पूर्व ही समझ गये थे। वैदिक मंत्रद्रष्टा ऋषि पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण शक्ति से भी परिचित थे। बाद में सातवीं शताब्दीके भारतीय खगोलशास्त्री ब्रह्मगुप्त ने गुरुत्वाकर्षण शक्ति की विस्तृत व्याख्या एक आकर्षक बल के रूप में की।[55]

वैदिक ऋषियों ने जगत में सूर्य की केन्द्रीय सत्ता स्वीकार की है जिसे आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान बहुत बाद में धीरे-धीरे समझ पाने में सक्षम हो पा रहा है-

"सूर्य आत्मा जगतस्तस्युषश्च"[56]
सूर्य समस्त जगत या सृष्टि की आत्मा/जन्मदाता है।
"स वा अंतरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्ष जायत ।"[57]
सूर्य अंतरिक्ष से उत्पन्न हुए एवं अंतरिक्ष उनसे उत्पन्न हुआ।
"तस्याम् सर्वानक्षत्रावशे चंद्रभासा सह।"[58]
"कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं ।[59]
चन्न चन्नाद्यं च य एवं देवमेकवृतं वेद ।।"

भाव यह है कि चन्द्रमा सहित समस्त दिन-रात्रि, अंतरिक्ष, वायुदेव, द्यु-लोक, पृथ्वी, अग्नि एवं जल उपरोक्त सभी के अंश, गुण व अणु सूर्य में विद्यमान रहे एवं रहेंगे, इसीलिए सूर्य से ये समस्त पदार्थ एवं 'पंचमहाभूत' उत्पन्न हुये हैं। सूर्य ही एक ऐसे देव हैं जो आकाश से जल, ऊर्जा, प्रकाश कीर्ति (यश-अपयश विधि हाथ[60] नवग्रहों के राजा; ग्रहस्वामी सूर्य के अधीन) समस्त अन्न एवं उपभोग सामग्री, वनस्पति एवं औषधि इत्यादि सृष्टि को प्रदान करते हैं।

"सूर्य और चंद्र से इस पृथिवी का मानों मापन हो रहा है। इसके द्वारा सर्वव्यापक प्रभु पृथिवी पर विभिन्न वनस्पतियों को जन्म दे रहे हैं। यह पृथिवी शक्ति व प्रज्ञान के लिये स्वामी जितेन्द्रिय पुरुष की मित्र है। यह भूमि हम

54. वहीं, भूमिसूक्त, 1/48
55. ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तः', ब्रह्मगुप्त, प्रधानसंपादक आचार्यवर-रामस्वरूप शर्मा, इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ एस्ट्रोनौमिकल एंड संस्कृत रिसर्च, न्यू देहली।
56. ऋग्वेद, 15/1
57. अथर्ववेद, 13/7/13
58. अथर्ववेद 13/7/7
59. अथर्ववेद; 13/4 /22
60. "सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ। लाभ हानि जीवनु मरनु जसु अपजसु विधि हाथ ।।"श्रीरामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस गोरखपुर, टीकाकार -हनुमान प्रसाद पोद्दार, मँझला साइज, 'अयोध्याकाण्ड, दोहा संख्या-171, एक सौ अड़तीसवाँ पुनर्मुद्रण, संवत 2040, पृ.सं. 441

पुत्रों के लिए आप्यायन के साधनभूत दुग्ध आदि पदार्थों को दे।"[61]

वैदिक मंत्र द्रष्टा ऋषि 'माता पृथिवी' के सभी गुणों का वर्णन करते हुये अपनी तरफ से क्षमायाचना भी करते हैं-

"हे माता! हम दाएँ-बाएँ पैर से चलते बैठते या खड़े होने की स्थिति में हों तो आप दुःखी न हों। सोये हुए; दाएँ-बाएँ करवट लेते हुए आप की ओर पाँव पसारते हुए शयन करते हैं तो आप दुःखी न हों। हम औषधि, बीज बोने या निकालने के लिए आपको खोदें तो आपका परिवार, घास-फूस, वनस्पति आदि फिर से तीव्र गति से उगें, बढ़ें, आपके मर्म को चोट न पहुँचे।"[62]

भारत में वैदिक युग से ही ' जल चिकित्सा' प्रचलित रही है।[63] अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर जल को एक गुणकारी औषधि के रूप में वर्णित किया गया है।[64] उसे पवित्र तथा अमृत का निवास माना गया है। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि महान सिंधु घाटी सभ्यता के लोग भी जल की पवित्रता' में विश्वास करते थे। मोहनजोदडो से विशाल स्नानागार का साक्ष्य जल की पवित्रता एवं स्नान-ध्यान की परंपरा का द्योतक माना गया है।[65] ऐतिहासिक युग में विकसित होने वाली 'सरित-पूजा' में सिंधु सभ्यता के प्रभाव को देखा जा सकता है।[66] वेदों में जल को 'चिकित्सकों से भी बड़ा चिकित्सक बताया गया है - "भिषजां सुभिषक्त मा:।[67]" और साथ ही साथ यह भी कहा गया है कि जल के द्वारा हृदय के रोगों और आँखों के रोगों का निवारण होता है। पंजों के रोगों, पैर के तलवों के रोगों का भी शमन जल-चिकित्सा के द्वारा किया जाता है। जल में वह सामर्थ्य है कि तलवार-बाण आदि से कट जाने से हुये घावों को भरने की भी शक्ति जल रखता है।[68] जल के द्वारा यक्ष्मा (टी.बी.)की भी चिकित्सा की जा सकती है।[69]

जलतत्व समस्त जीवन का आधार है "जलमेव-जीवनम् " जल की महत्ता का वर्णन मंत्रद्रष्टा वैदिक ऋषियों ने व्यापक पैमाने पर की है -

"अपोदेवीरूपह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः । सिन्धुभ्यः कर्त्वं हवि: ॥[70]

जिस जल का पान हमारी गाएँ करती हैं उस जलदेवी का मैं आह्वान करता हूँ। सिन्धुओं अर्थात नदियों

61. अथर्ववेद, भूमिसूक्त।
62. 'अथर्ववेद भूमिसूक्त |
63. 'प्राचीन भारत की चिकित्सा विधियां, डॉ० प्रमोद कुमार मिश्र, द इण्डियन थॉट एण्ड पॉलिसी रिसर्च, अरुंधती वशिष्ठ अनुसंधान पीठ, प्रयागराज, अक्टूबर 2020 ई०, पृ. सं.-112-130
64. अथर्ववेद; 1/4
65. 'सिंधु सभ्यता, जयनारायण पाण्डेय, प्रमानिक पब्लिकेशन, 'इलाहाबाद, 1998, पृष्ठ सं.- 88
66. वहीं, पृष्ठ सं. 88
67. अथर्ववेद, 6/24
68. अथर्ववेद, 6/57
69. अथर्ववेद, 19/25
70. ऋग्वेद, 1/23/18

को हवि समर्पित करना हमारा कर्तव्य है।

" अप्स्वन्तर मृतमप्सुभेषजमपामुत प्रशस्तये । देवाभवतवाजिनः ।।"[71]

जल में अमृत है, जल में औषधि है। हे ऋत्विज्जनों! ऐसे श्रेष्ठ जल की प्रशंसा अर्थात स्तुति करने में शीघ्रता बरतें। "आपः प्रणीत भेषजंवरूथंतन्वेमम् ज्योक्चसूर्यं दृशे ।"[72] जल मेरे शरीर के लिये रोगनिवारक औषधि की पूर्ति करे। हम चिरकाल तक सूर्य को देखें।

"इदमापः प्रवहतयत्किञ्च दुरितं मयि । यद्वाहमभिदुद्रोहयद्वा शेपे उतानृतम ॥[73]

मैंने अज्ञानतावश जो भी अनुचित कार्य किये हों, अथवा जानबूझकर दूसरों के प्रति द्वेष एवं गैर का भाव अपनाया हो, अथवा दूसरों के अनिष्ट की कामना की हो, उन सब को यह जल दूर बहा ले जाये।

वेदों में 'सप्तसैंधव' अर्थात सात पवित्र नदियों-सिंधु, विपाशा (व्यास), शतुद्रि (सतलज), वितस्ता (झेलम), अस्किनी (चिनाव) और सरस्वती का व्यापक उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में उल्लिखित नदियों की संख्या लगभग 25 बताई गई है। ऋग्वेद में उल्लिखत अन्य नदियों में गंगा, यमुना, गोमल(गोमती), काबुल(कुभा), घग्घर(चितंग/दृशद्वती), गंडक (सदानीरा), क्रुमु, सुवस्तु आदि प्रमुख है।[74] वेदों में इन नदियों को माता के समान सम्मान दिया गया है-

"ता अस्मश्यं पमसा पिन्वमाना शिवादेवीर शिवत् । भवन्त सर्वा नद्यः अशिमिहा भवन्तु।।[75]

नदियाँ जल का वहन करती हुई, सभी प्राणिमात्र को तृप्त करती हैं, भोजनादि प्रदान करती हैं, आनन्द को बढ़ाने वाली तथा अन्नादि वनस्पति से प्रेम करने वाली हैं।

'जल संरक्षण'पर बल देते हुये 'ऋग्वेद' में कहा गया है कि –

"आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृत्प्वः पुनन्तु।"[76]

जल हमारी माता जैसा है, जल धृत के समान हमें शक्तिशाली और उत्तम बनाए, इस तरह के जल जिस रूप में जहाँ कहीं भी हों, वे रक्षा करने के योग्य हैं।

'जल संरक्षण' के लिए वेदों में वर्षा-जल एवं बहते हुए जल के बारे में कहा गया है कि-

"अपामह दिव्यानापमां स्रोतस्यानाम्

71. वही, 1/23/19
72. वही, 1/23/21
73. वही, 1/23/22
74. प्राचीन भारत, विजेंद्रनारायण झा कृष्णमोहन श्रीमाली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2001
75. ऋग्वेद, 7/50/4
76. ऋग्वेद, 10/17/10

अपामह प्रवेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ।"[77]

हे मनुष्य! वर्षा जल एवं अन्य स्रोतों से निकलने वाला जल जैसे कुएँ, बावड़ियाँ आदि तथा फैले हुये जल तालाबादि के जल में बहुत पोषण होता है। इस बात को तुम्हें जानना चाहिए। तथा इस प्रकार के पोषक युक्त जल का प्रयोग करके वेगवान और शक्तिमान बनना चाहिए।

वर्षा के जल को संरक्षित करना चाहिए क्योंकि यह सबसे शुद्ध-जल होता है। इस विषय में अथर्ववेद में कहा गया है कि वर्षा का जल हमारे लिये कल्याणकारी है-

" शिवा नः सन्तु वार्षिकी: ।"[78]

जल को प्रदूषित होने से बचाना चाहिए तथा हमारे प्रयास इस तरह से रहें कि जल प्रदूषित न करें। इस विषय पर 'यजुर्वेद' में कहा गया है कि जल को नष्ट मत करो। यह अमूल्य निधि है- "मा आपो हिंसी ।"[79]

'अथर्ववेद' में 'नौ' प्रकार के जलों का उल्लेख किया गया है-

1. परिचरा आपः- प्राकृतिक झरनों से बहने वाला जल।

2. हेमवती आपः -हिमयुक्त पर्वतों से बहने वाला जल।

3. वर्ष्या आपः- वर्षा से प्राप्त जल।

4 सनिष्यदा आपः-तेज गति से प्रवाहित जल।

5. अनूप्पा आपः -अनूप प्रदेश अर्थात दलदल का जल।

6. धन्वन्या आपः- मरुभूमि का जल।

7. कुम्भेभिरावृता आपः- घड़े का जल।

8. अनभ्रयः आपः - किसी यंत्र से खोदकर निकाला गया जल, जैसे कुंए का।

9. उत्सया आपः- स्रोत का जल। जैसे तालाब आदि का जल।

इस तरह स्पष्ट है कि वैदिक संहिताओं में 'जल तत्व' को बहुत अधिक महत्व देने के साथ-साथ उसके सभी प्रकारों को चिन्हित किया गया है, ताकि भावी पीढ़ियां जल का संरक्षण करने पर विशेष ध्यान दें । वर्तमान समय में जिस प्रकार नदियों एवं अन्य जल स्रोतों में गतिरोध, नदी-तालाब एवं अन्य जल स्रोतों का विलोपन और प्रदूषण की समस्या विकराल रूप से बढ़ी है, ऐसे में आज हमें जरूरत है कि हम अपनी ज्ञान परंपरा के मूल्यों को

77. अथर्ववेद, 19/2/4
78. वही,1/6/4
79. यजुर्वेद, 6/22

ग्रहण करें तथा जल को संरक्षित करने का प्रयास करें। भारतीय ज्ञान परंपरा के वाहक वैदिक वांगमय में कहा गया है कि 'वर्षा होने से जल में प्रवाह आता है और नदी के रूप में जल प्रवाह को प्राप्त करता है। प्रवाह युक्त जल पवित्र है।' संत कबीर ने भी 'भाखा' की तुलना 'बहते नीर' से की है।[80] नदियों को माता के समान पूजनीय माना गया है। वेदों में कहा गया है कि -"ऐसी नदी जो पर्वत से निकलकर समुद्र तक प्रवाहित होती है वह पवित्र होती है।"[81] इस बात के माध्यम से मंत्रद्रष्टा ऋषि हमें संदेश देना चाहते हैं कि नदियों के अबाध प्रवाह को संरक्षित किया जाना चाहिए। नदियों को अबाध रूप से प्रवाहित होने देना चाहिए।

'मित्र' तथा 'वरुणदेव' को अथर्ववेद में वर्षा का देवता कहा गया है। मित्र-वरुण के मिलने से जल की उत्पत्ति होती है। अगर प्रतीक रूप में देखें तो वस्तुतः मित्र तथा वरुण क्रमशः ऑक्सीजन और हाइड्रोजन के प्रतीक एवं वाचक हैं। प्रदूषित जल को शुद्ध किये जाने के सम्बन्ध में वेदों में कहा गया है कि 'वायु' तथा 'सूर्य' दोनों जल को शुद्ध करते हैं। सूर्य की किरणरश्मियाँ जल के कीटाणुओं को नष्ट करके उसे शुद्ध करती हैं। वैदिक ऋषि कहते हैं-

"अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत,
प्रशस्तये । देवा भवति वाजिनः।।"[82]

हे मनुष्यों! अमृततुल्य तथा गुणकारी जल का सही प्रयोग करने वाले बनो । जल की प्रसंशा और स्तुति करने के लिए सदैव तैयार रहो।

हमने ऋषियों की बात नहीं मानी, 'जल स्त्रोतों' को छिन्न-भिन्न करते रहे। उच्चतम प्रदूषण और आवश्यकता से कई गुना अधिक दोहन करते रहे, जिसके कारण पिछले मात्र दस वर्षों में भारत देश में 30% नदियाँ सूख चुकी हैं। मात्र दस वर्षों में 4500 नदियाँ सूख गईं। बीस लाख तालाब, कुएँ, झीलें गायब हो गईं। नीति आयोग' के अनुसार 2030 तक देश के 40% लोगों की पहुंच पीने के पानी तक नहीं होगी । 'भूजल' (ग्राउण्ड वाटर) की स्थिति भी बेहद खराब है। देशा के कई राज्यों में ग्राउण्ड वाटर 40 मीटर के लेवल से नीचे जा रहा है। देश में प्रतिवर्ष पानी तीन मीटर नीचे जा रहा है। स्थिति कुछ इस प्रकार है-

मध्य प्रदेश : बाँधों में 90 प्रतिशत से अधिक पानी खत्म।

झारखण्ड : सूख जाती हैं राज्य की 95 नदियाँ ।

राजस्थान : तालाबों पर गंभीर अतिक्रमण ।

उत्तर प्रदेश: सात साल में 77 हजार कुएँ सूखे ।

बिहार : साढ़े चार लाख हैंडपम्प सूख गये। 48 नदियाँ सूख गईं।[83]

80. 'कबीर ग्रन्थावली', श्यामसुन्दर दास, लोकभारती, प्रयागराज, पुनर्मुद्रण-2000
81. ऋग्वेद', नदी सूक्त ।
82. ऋग्वेद, 1/23./19
83. दैनिक भास्कर', नई दिल्ली, 2019, http//www.bhaskar .Com

'एस.ओ.ई., 'सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट' (सीईएसई) नई दिल्ली की 'स्टेट ऑफ एनवायरमेंट रिपोर्ट - 2023' के अनुसारदेश की 46% नदियाँ प्रदूषित हैं। सर्वाधिक खराब BOD वाली नदियाँ उत्तर प्रदेश में हैं। BOD के आधार पर 'गंगा' सर्वाधिक प्रदूषित नदी है। यमुना भी देश की सर्वाधिक प्रदूषित नदियों में से एक है।[84] संयुक्त राष्ट्र संघ की चेतावनी के मुताबिक अगले मात्र 27 साल में भारत की प्रमुख नदियाँ सूख जाएंगी। भारत-चीन और पकिस्तान की तीन प्रमुख नदियों, गंगा, ब्रह्मपुत्र,और सिंधु का जलस्तर बहुत तेजी से कम हो जाएगा।[85]

यह भयावह स्थिति इसलिए है क्योंकि हमने अपनी ज्ञान-परंपरा का लगभग परित्याग कर दिया। जिस 'समुद्र' के बारे में भगवान कृष्ण कहते हैं कि "सरसामस्मि सागरः।"[86] मैं जलाशयों में समुद्र हूँ। उसको हमने गम्भीर रूप से प्रदूषित कर दिया। जिन 'माता गंगा' के बारे में उन्होंने कहा- "स्रोतसामस्मि जाह्नवी।"[87] मैं नदियों में भागीरथी गंगा हूँ। उसे देश की सबसे प्रदूषित नदी बना दिया । 'सूर्यसुता-यमुना को गंदगी से पाट दिया। ब्रह्मपुत्र, सरयू (घाघरा) कृष्णा, कावेरी, गोदावरी, तुंगभद्रा, गण्डक, सतलज, झेलम, नर्मदा, सई, सोन आदि किसी को नहीं छोड़ा। भारतीय ज्ञान परंपरा में जिन सात पवित्र नदियों का जिक्र किया जाता है[88] उनमें कचरे भर दिये। जिस हिमालय की प्रसंशा में भारतीय ज्ञान परंपरा में हजारों-लाखों पन्ने लाल, नीले, काले-पीले किये गये, जिसके बारे में भगवान कृष्ण कहते हैं- "स्थावरणा हिमालयः।"[89] मैं स्थिर रहने वालों में 'हिमालय' पहाड़ हूँ, उसको मशीनों से खोद डाला। "अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां"[90] मैं सब वृक्षों में पीपल हूँ, उस 'पीपल' को काट डाला और सृष्टि में गम्भीर पर्यावरणीय पारिथितिकीय संकट उत्पन्न कर दिया। हमारा "सुरसरि सम सब कहँ हित होई।"[91] " *पुनाति कीर्तिता पापं द्रष्टा भद्र प्रयच्छति*। ।"[92] 'गंगा' नाममात्र के उच्चारण करने से पापों का नाश होता है। दर्शन करने वालों का माता गंगा कल्याण करती हैं और स्नान करने वालों की सात पीढ़ियों तक को गंगा पवित्र करती हैं।"गंगे तव दर्शनात् मुक्ति"[93] माता गंगा के दर्शन मांत्र से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

"पंचमहाभूतों' में एक महत्वपूर्ण तत्व है- 'अग्नि' - वेदों में 'अग्नि तत्व' को सबसे शक्तिशाली एवं सर्वव्यापक माना गया है। समस्त जड़-चेतन में ऊर्जा, चेतना, गति तथा नवसृजन का प्रेरक 'अग्नितत्व' को ही माना गया है। 'अग्नितत्व' के कारण ही किसी जीव का शरीर चलायमान होता है। शरीर की वृद्धि में 'अग्नितत्व' का प्रमुख

84. 'डाउन टू अर्थ 04 जून 2023 ई.।
85. 'आज तक', नई दिल्ली 23 मार्च 2023 / 5:46 PM IST
86. श्रीमद्भगवद्गीता' 10/24, गीताप्रेस गोरखपुर, इकतीसवाँ पुनर्मुद्रण, संवत 2071, पृ० सं० - 155
87. वही, 10/31
88. "गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती । नर्मदे सिंधु कावेरी जलऽस्मिन्सन्निधिंकुरु ॥"39
89. 'श्रीमद्भगवद्गीता, 10/25, गीताप्रेस गोरखपुर, इक्कीसवाँ पुनर्मुद्रण, संवत 2074, पृ.सं. 155
90. वही, 10/26, पृष्ठ सं.-155
91. "कीरति भनिति भूति भस सोई।
    सुरसरि सम सब कहें हित होई ॥" (कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो देवनदी गंगाजी की तरह सबका हित करने वाली हो ।) श्रीरामचरितमानस, 'बालकाण्ड, 14/5, गीताप्रेस गोरखपुर,
92. 'महाभारत' वनपर्व ।
93. नृसिंह पुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत 2074 पृ. सं. 78

योगदान है। 'अग्नितत्व' ऊर्जा, ऊष्मा, शक्ति और ताप का प्रतीक है। सभी जीवों के शरीर की गर्माहट 'अग्नितत्व' के कारण ही है। यही 'अग्नितत्व' भोजन को पचाकर शरीर को निरोगी रखने के साथ ही साथ उसे बल और शक्ति प्रदान करता है। ऋग्वेद में अग्नि का उल्लेख 200 बार मिलता है।[94] 'अग्नि-पूजा' हिन्द-आर्यों और हिंद- ईरानियों की विशेषता मानी जाती है।[95] पारसी धर्मग्रंथ जिंद अवेस्ता, जिसकी भाषा बहुत कुछ 'ऋग्वेद' से मिलती-जुलती है[96] में भी 'अग्नि पूजा' को बहुत महत्व दिया जाता है।[97] कुछ लोग 'अग्निपूजा' को हड़प्पाई मानते हैं।[98] दक्षिण यूक्रेन में भी 4000-3500 ई. पू. में कुछ ऐसे 'अग्निस्थल मिले हैं जिनसे अग्निपूजा का अनुमान होता है।[99] कई 'सैंधव स्थलों' से भी 'यज्ञ' और 'अग्निपूजा' के प्रमाण प्राप्त होतेहैं।[100]

वेदों में 'अग्नितत्व' के महत्व का वर्णन करते हुये कहा गया है-

यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः ।
अग्ने सर्वास्तन्वः सं रभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः ॥ ॥[101]

हे अग्निदेव !आपकी महत्ता जल में (बड़वाग्नि के रूप में) औषधियों व वनस्पतियों में (फलपाक के रूप में) पशुओं व प्राणियों में (वैश्वानर के रूप में) एवं अंतरिक्षीय मेघों में (विद्युत के रूप में) विद्यमान है। आप सभी रूपों में धारण करने वाले एवम् अक्षय द्रव्य (ऐश्वर्य) प्रदान करने वाले हैं।

"अग्निमूर्धा *दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या* अयम् अपा रेता गुगँ सि जिन्वति ।"[102]

अर्थात, यही अग्नि 'द्यु-लोक' (अंतरिक्ष में सर्वोच्च प्रकाश लोक) में सूर्य के रूप में में सर्वोच्च भाग पर उत्पन्न होकर विद्यमान होती है। जीवन का संचार करके, धरती का पालन करते हुए जल में जीवनी शक्ति का संचार करती है।

'ऋग्वेद' के प्रथम मंडल के प्रारंभिक मंत्र 'अग्निदेव' को समर्पित हैं, इसके मंत्रद्रष्टा ऋषि मधुच्छन्दा वैश्वामित्र हैं, जो कि ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के मन्त्रद्रष्टा ऋषि विश्वामित्र के पुत्र थे। 'ऋग्वेद' में इन्द्र के पश्चात सबसे अधिक बार 'अग्नि' का उल्लेख है। स्वतंत्र रूप से 'अग्नि' का स्तवन 200 सूक्तों में तथा सामूहिक रूप से 2483 सूक्तों में किया गया है। अग्नि में संपूर्ण देवताओं का वास माना गया है-

94. भारत का बृहद् इतिहास', दत्त, चौधुरी, मजूमदार (कालिकिंकर" दत्त, सर हेमचन्द्र रायचौधुरी, रमेश चन्द्र मजूमदार) मैकमिलन, नई दिल्ली, 1998 ई.।)
95. प्रारंभिक भारत का परिचय, रामशरण शर्मा, ओरियंट लांग्मैन, नई दिल्ली, 2004 ई, पृ. सं.- 101
96. प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, विमलचंद्र पाण्डेय, स्टूडेंट फ्रेंडस, इलाहाबाद, 1998, पृ.सं. 18
97. वही, पृ०सं० 22
98. 'प्रारंभिक भारत का परिचय', रामशरण शर्मा, ओरियंट लांग्मैन, नई दिल्ली, 2004, पृ.सं. 101
99. वही, पृ०सं० 102
100. 'सिंधु सभ्यता, डॉ.के. के. थपल्या, डॉ. संकठा प्रसाद शुक्ल, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, ग्रंथांक-171, पंचम संस्करण 2005, पृ. सं.- 60, 157, 158
101. अथर्ववेद, 19/3/2
102. यजुर्वेद, 3/12

"अग्निर्वै सर्वा देवता ।"[103]

अग्नि के साथ सभी देवताओं का सम्बन्ध है।

अग्नि को सभी देवताओं का आत्मा कहा गया है-

"अग्निर्वै सर्वेषां देवानाम् आत्मा ।"[104]

मनुष्य के सभी कार्यों में अग्नि अग्रणी होती है- अग्रणीर्भवतीति अग्निः।" यज्ञ में सर्वप्रथम अग्निदेव का ही आह्वान किया जाता है-"अयं यज्ञेषु प्रणीयते।" अग्नि में पड़ने वाली सभी वस्तुओं को वह अपना अंग बना लेता है-"अङ्गः नयति सन्नमानः।" अग्नि सभी देवताओं में प्रमुख हैं। 'अग्नि तत्व' प्रकृति के मूल में है। अग्नि 'कवितुल्य' है। वह अपना कार्य विस्तारपूर्वक करता है। 'कवि' का अर्थ है- कान्तदर्शी, विस्मयकारी; वह ज्ञानवान और सूक्ष्मदर्शी है, उसमें अंर्तदृष्टि है। ऐसा कवि व्यक्तित्व ही सुखी होता है- "

अग्निर्होता कविक्रतुः ।"[105]

'अग्नि' रोग, शोक, पाप, दुर्भाव, दुर्विचार, शाप तथा पराजय आदि का नाश करता है-

"देवम् अमीवचातनम् ।"[106]

" *प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा* अरातयः ।"[107]

अग्नि को मनुष्य का रक्षक पिता भी कहा गया है –

"*स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव* । "[108]

अग्नि को दमूनस, गृहपति, विश्वपति आदि भी कहा जाता है। अग्निरूप आत्मा शरीर में अतिथि के समान रहता है और सत्यनिष्ठा से उसकी रक्षा करता है। जब उसकी इच्छा होती है, तब वह प्रस्थान कर जाता है- "अतिथिं मानुषाणाम् ।"[109]

'अग्नि' अमृत है। संसार नश्वर है, किन्तु 'अग्नि' अजर-अमर है। यह ज्ञानी को अमृत प्रदान करती है। अग्निरूप परमात्मा जीवों के हृदय में विद्यमान अमृत तत्व है। जो साधक और ज्ञानी हैं उन्हें इस अमृतत्व रूपी आत्मा का दर्शन होता है- "विश्वास्यामृत भोजन।"[110]

103. ऐतरेय ब्राह्मण, 1.1 'शतपथ ब्राह्मण, 14.4.10
104. शतपथ ब्राह्मण', 14.3.2.5
105. ऋग्वेद, 1.1.5
106. वही, 1.12.7
107. यजुर्वेद, 1.7
108. ऋग्वेद, 1.1.9
109. ऋग्वेद, 1.1.27
110. वही, 1.144.5

वेदों में 'अग्निचिकित्सा' के अंतर्गत सूर्य की किरणों के माध्यम से चिकित्सा, सूर्य की किरणों का महत्व आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।[111] 'ऋग्वेद' में वर्णित है कि सूर्य की किरणों से सात प्रकार की ऊर्जा प्राप्त होती है-

अधुक्षत्पिप्युषीमिषमूर्जंसप्तपदीमरिः।
सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः ।।"[112]

दीर्घायु प्राप्त करने के लिये सूर्य की किरणों की महत्ता प्रतिपादित करते हुए मंत्रद्रष्टा ऋषि कहते हैं-

सविता नः सुवतु सर्वताति;
सविता नो रास्तां दीर्घमायुः।।"[113]

वेदों में यहाँ तक कहा गया है कि- सूर्य की किरणें मनुष्यको मृत्यु से बचाती हैं-

" सूर्यस्त्वा *मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः* "[114]

भारतीय ज्ञान परंपरा के प्राचीन ग्रंथों में सूर्य की किरणों के चिकित्सकीय महत्व को देखते हुए कहा गया है कि यदि निरोग रहने की इच्छा है तो भगवान भास्कर (सूर्य) की शरण में जाओ –

"आरोग्यं भास्करादिच्छेत ।"[115]
" *सूर्यस्ते तन्वे* शं तपाति "[116]

सूर्य शरीर को निरोगता प्रदान करते हैं।

अथर्ववेद में सूर्य की किरणों से चिकित्सा करके ("गो रोहितेन" सूर्य की लाल किरणों द्वारा) पीलिया आदि रोगों के निवारण का वर्णन है। वेदों में वर्णित है कि सूर्य की किरणों के सेवन से हृदय के रोग तथा उससे जनित पीड़ा शांत हो जातीहै। आधुनिक चिकित्साशास्त्र में भी सूर्य की किरणों के सेवन का बहुत अधिक महत्व है। वास्तव में आधुनिक क्रोमोपैथी (सूर्य की किरणों से चिकित्सा) के जनक मंत्रद्रष्टा वैदिक ऋषि ही हैं, इस बात में कोई संदेह नहीं है।[117]

ऐसा समझा जाताहैं कि अग्नि में डाली जाने वाली आहुतियाँ धुँआ बनकर आकाश में जाती हैं और

111. विस्तृत विवरण के लिये देखें- 'प्राचीन भारत की चिकित्सा विधियाँ; डॉ० प्रमोद कुमार मिश्र, द जर्नल ऑफ इंडियन थॉट एंड पॉलिसी रिसर्च, अरुंधती-वशिष्ठ शोधपीठ, प्रयागराज, Issue-1, पृ०सं०-112-130, अक्टूबर 2020 ई
112. ऋग्वेद', 8.72.16
113. ऋग्वेद, 10/36/14
114. अथर्ववेद, 5/30/15
115. मत्स्य पुराण, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1988 ई., पृ. सं. 77
116. अथर्ववेद, 8/1/5
117. संदर्भ संख्या - 121, पृ. सं. 119

अंततः देवताओं को मिल जाती हैं। अग्नि ही एकमात्र देवता हैं जिन्हें आकाश, अन्तरिक्ष और पृथ्वी तीनों में शामिल किया जा सकता है। 'पंचतत्वों' में 'अग्नि' ही एक ऐसा तत्व है जिसमें प्रदूषण नहीं फैलाया जा सकता। सभी वस्तुएँ अग्नि में जलकर पवित्र हो जाती हैं। अग्नि का सहयोगी वायु, तथा विरोधी जल है। 'अग्निकांडों से भयंकर विनाश और वायु में प्रदूषण फैलता है। जंगलों में लगी आग को बुझाने में बहुत समय लग जाता है, इसलिए वातावरण, पर्यावरण की रक्षा हेतु 'अग्नि-तत्व' का प्रयोग बहुत सावधानी के साथ करना चाहिए।

'पंचमहाभूतों में 'गगन' (आकाश)एक ऐसा तत्व है जिसमें अन्य चारों तत्व (पृथ्वी, जल, पावक और समीर) विद्यमान रहते हैं। यह जीवों के भीतर आत्मा का वाहक है। इस तत्व का अनुभव करने के लिये साधना की आवश्यकता होती है। 'मानव मन' को आकाश तत्व का ही स्वरूप माना गया है। आकाश को छोड़कर बाकी अन्य सभी तत्त्व परमाणुओं के मेल से बने हैं, इसलिए प्रलयकाल में भी[118] 'आकाश तत्त्व' नष्ट नहीं होता । 'आकाश तत्त्व' आध्यात्मिक सम्बन्ध अंतर्ज्ञान, और प्रेरणा से सम्बन्धित ऊर्जाओं का नियंत्रण करता है। आकाश तत्व पदार्थों की निर्मिति का आवश्यक घटक है। यह तत्त्व खालीपन (स्पेस) के लिए जाना जाता है। अष्टावक्रगीता में कहा गया है-

" एकं सर्वगतं व्योम बहिरन्तर्यथा घटे।
नित्यं निरंतरं ब्रह्म सर्वभूतगणे तथा ।।"[119]

जिस प्रकार एक ही सर्वव्यापक आकाश घड़े के अंदर व बाहर है, उसी प्रकार सदा स्थिर, सदा विद्यमान व सदा गतिमान-सदा रहने वाला ब्रह्म सभी भूतों के अंदर स्थित है।

"तज्ज्ञस्य पुण्यपापाभ्यां ह्यन्तर्न जायते।
न ह्याकाशस्य धूमेन दृश्यमानोऽपि संगतिः ।।।"[120]

उसे (ब्रह्म को) जानने वाला अपने अंतः में पाप और पुण्य को स्पर्श नहीं करता । यह ऐसा ही है जैसे ऊपर से कितना ही प्रतीत हो, किन्तु वास्तव में धुंआ कभी आकाश को स्पर्श नहीं करता।

भारतीय ज्ञान परम्परा में 'आकाश' शब्द का जो उपयोग हुआ है उसका अर्थ बहुत बृहद् है। 'आकाश' में 'आ' अक्षर अव्ययपद है। 'आ' अक्षर सीमा रहित अर्थ को व्यक्त करता है, जैसे- आमरण, आजीवन, आजानबाहु, आसमुद्र आदि। क्रिया अथवा धातुपद में यह 'आङ्.' धातु है, जिसका अर्थ- शशि, आशा, शंस्यते, आह्लादः, इच्छायाम् आदि है।

आकाश शब्द में 'काश्' शब्द का अर्थ है- काशते, काशन्ते, दीप्यन्ते ("सूर्योदयो यत्र दीप्यन्ते स

118. प्रलय की कथा का वर्णन 'शतपथ ब्राह्मण? में मिलता है। इसी कथा के आधार पर जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' की स्चना की है। लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, पृ. सं. 7
119. अष्टावक्र गीता; 1/20
120. वही, 4/3

काशः।") समन्तात (सर्वत्र व्याप्त) । भारतीय ज्ञान परंम्परा में 'आकाश' को 'शून्य' की भी संज्ञा दी गई है। शून्य = अतिशय ऊनः (बहुत अधिक रिक्त स्थान),इस 'ऊनः' में अरबों-खरबों तारे, ग्रह, उपग्रह और सूर्य-चन्द्रमा जैसी बहुत सी ज्योतियाँ भरी पड़ी हैं। अर्जुन को उपदेश देते हुए भगवान कृष्ण कहते हैं-

"यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्र गो महान!"[121]

जैसे आकाश से उत्पन्न सर्वत्र विचरने वाला महान वायु सदा आकाश में ही स्थित है।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥[122]

हे अर्जुन! कल्पों के अंत में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात प्रकृति में लीन होते हैं और कल्पों के आदि में उनको मैं फिर से रचता हूँ।

वेदों के अनुसार ब्रह्मांड के निर्माण के समय जो नाद (ध्वनि) उत्पन्न हुई थी, वह ओऽम से मिलती थी। यह प्रभु का ब्रह्मनाद है।

अथर्ववेद में कहा गया है कि-

"पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्वं बभूव।
विश्वं सम्पश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि॥[123]

वे प्रभु इस पृथिवी को हमारे पालन के लिये सब आवश्यक वस्तुओं से परिपूरित करते हैं। सर्वत्र व्याप्त वे प्रभु हम सबका ध्यान करते हैं। वे 'सुविदत्र' हैं, हमारी प्रार्थना को सुनते हैं।

जब हम अंतरिक्ष में 'पृथ्वी' और 'आकाश' के मूलस्वरूप (ओजोन परत आदि) को हानिकारक, ग्रीन हाउस प्रभाव वाली गैसों से छिन्न-भिन्न करते हैं तो इससे माता 'पृथिवी' और पिता 'आकाश' का हृदय उच्छेदित होता है, जिसके फलस्वरूप हमें स्वास्थ्य और 'जलवायु परिवर्तन' जैसे गंभीर परिणाम देखने को मिलते हैं। अतः मानव को 'आकाश' सहित सभी पंचतत्वों की शुद्धता एवं पर्यावरण-पारिस्थितकी' के प्रति उनकी संवेदनशीलता पर विशेष ध्यान देकर भारतीय ज्ञान परंपरा को हृदय में समाहित करके उनकी रक्षा-सुरक्षा करनी चाहिए।

पंचतत्वों में समीर' (वायु) जीवों के शरीर में 'प्राणवायु' के रूप में विद्यमान है। 'वायु' के कारण ही 'अग्नि तत्व' की उत्पत्ति मानी गई है। शरीर से 'वायु' के बाहर निकल जाने पर 'प्राण' भी निकल जाते हैं। जीव शरीर में जितना भी 'प्राण' है वह 'वायुतत्व' ही हैं। वायु ही जगत की आयु है। जीवन की आयु है जो हम साँस के रूप में हवा (ऑक्सीजन वायु), लेते हैं, जिससे हमारा होना, जगत का होना निश्चित है, जिससे हमारा जीवन है, वही 'वायुतत्व"

121. श्रीमद्भगवद्गीता 9/6 गीताप्रेस गोरखपुर, इक्कीसवां पुनर्मुद्रण; सं. 2071, पृ.सं.-933-934-
122. वही, 9/7
123. अथर्ववेद, 13/2/44

है। हमारा शरीर जिस तत्व के कारण जीवित है उसे 'प्राण' कहते हैं। 'प्राण' चेतन है (अनेक विद्वान इसे जड़ तत्व समझते हैं किन्तु यह शुद्ध चेतन तत्त्व है। यह चेतन्मय प्राण ऊर्जावान तथा शक्तिमान होकर शरीर के सभी अंगों का सञ्चालन करता है। है। शरीर के सभी अंग 'प्राण' से ही शक्ति पाकर अपना कार्य करते हैं। 'प्राण' के माध्यम से ही भोजन का पाचन, रस, रक्त, मांस, मेद आदि पदार्थों का निर्माण, व्यर्थ पदार्थों का बाहर निकलना, उठना, बैठना, चलना, बोलना, चिंतन, मनन और ध्यान आदि सभी स्थूल संचालित होते हैं। जीव शरीर की समस्त क्रियाएँ शुद्ध वायु के द्वारा ही समुचित रूप से संचालित हो पाना संभव होता है, इसलिए हमें वायु को शुद्ध रखना चाहिए जिसके लिए वन भूमि के विस्तार की दिशा में हमें सार्थक प्रयास करना चाहिए तथा 'वायु-प्रदूषण' फैलाने वाली जहरीली गैसों एवं अन्य हानिकारक उत्पादों को यथासंभव कम से कमतर करना चाहिए।[124]

मानव शरीर में प्राणवायु मुख्यतः निम्नलिखित प्रकार की होती है- प्रथम मुख्य **प्राण** होता है जो सम्पूर्ण शरीर में सभी प्रकार के प्राणों का अधिष्ठान है। **अपान**- अपानवायु का स्थान नाभि से पैर तक होता है। मल, मूत्र, प्रजनन आदि क्रियाएँ इसी की सहायता से होती हैं। **समान-** इसका स्थान हृदय से नाभि तक होता है। यह खाये हुए अन्न को पचाने तथा उससे रक्त, आदि पदार्थ बनाने का कार्य करता है। **उदान**- यह कंठ से सिर तक रहता है। बोलना, उल्टियाँ करना आदि इसी के कारण संभव हो पाता है। **व्यान** – यह सारे शरीर में रहता है। हृदय से निकलने वाली सभी 206 मुख्य नाड़ियों की अनेक शाखाएँ और रक्तसंचार प्रणाली में विद्यमान रहता है। शरीर को निरोग रखने के लिए हम 'योग' और अनेक प्रकार वायु प्रणायाम (भस्त्रिका, कपालभाति, त्रिबंध, महाबंध, वाह्य प्राणायाम, अनुलोम-विलोम, उज्जायी, कर्णरोगान्तक, भ्रामरी, उद्गीय और प्रणव प्राणायाम सभी आसनों में भी वायुतत्व प्रमुख है।[125]

"अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे।
प्राणापानगती, रुद्ध्वा प्राणायाम परायणाः ।।
अपरे नियताहारा:प्राणान्प्राणे जुह्वति ।
सर्वेप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपित कल्मशा:।।"[126]

दूसरे कितने ही योगीजन 'अपानवायु' में 'प्राणवायु" को हवन करते हैं वैसे ही अन्य योगीजन 'प्राणवायु' में 'अपानवायु' को हवन करते हैं। तथा कितने ही नियमित आहार करने वाले प्राणायम-परायण पुरुष 'प्राण' और 'अपान' गति को रोककर प्राणों को प्राणों में ही हवन क्रिया करते हैं। ये सभी प्रकार के साधक यज्ञों द्वारा पापों का नाश कर देने वाले और यज्ञों को जानने वाले हैं।

" *यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः* सर्वत्रगो महान् ।''[127]

124. वायु-प्रदूषण के मामले में भारत दुनिया का तीसरा सबसे प्रदूषित देश है। 2018 से ही दिल्ली लगातार दुनिया की सबसे प्रदूषित राजधानी है। जनसत्ता 19 मार्च 2024 ई., नई दिल्ली।
125. प्राणायाम, आसन एवं सूक्ष्म व्यायामों की संक्षिप्त विवरणिका,पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार २009 ई. ।
126. 'श्रीमद्भगवद्गीता' 4/29-30, गीताप्रेस, गोरखपुर, इकतीसवां पुनर्युद्रण, सं.2071, पृष्ठ सं. 73-74 .

जैसे जाकाश से उत्पन्न सर्वत्र विचरने वाला महान वायु सदा आकाश में स्थित है।

सनातन ज्ञान परम्परा में प्रकृति के मूलतः पाँच तत्व माने गये हैं। 'श्रीमदभगवद्गीता' में प्रकृति के आठ प्रकार बताए गये हैं- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार -

"भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं में भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।।[128]

प्रकृति-पर्यावरण और पारिस्थितिकी मूलतः इन्हीं प्रकारों से चेतन-अचेतन' अवस्था का निर्माण होता है। इन्हीं से सब कुछ जीवित अवस्था में हमें प्राप्त है। सनातन-भारतीय ज्ञान-परंपरा में 'पंचतत्वों' के प्रभाव, गुण, हानि, उपयोग-अनुपयोग आदि प्रत्येक पक्ष का विस्तृत वर्णन किया गया है।

'पर्यावरण-प्रदूषण', 'जलवायु परिवर्तन', पृथ्वी पर होने वाले विनाश का उत्तरदायी एकमात्र मनुष्य है। मनुष्य को विकास करना चाहिए, विनाश नहीं। हम 'पेड़-पौधे' काटकर कंक्रीट के जंगल उगा रहे हैं। पर्यावरण संरक्षण का कोई भी कानून हजारों किलोमीटर जंगलों को कटने से नहीं रोक सका। सरकारों के संरक्षण में खूब पेड़ कटे या यों कहें कि सरकार और जनता ने मिलकर अंधाधुंध पेड़ काटे ऐसी मशीनें विकसित की कि एक दिन में एक लाख पेड़ काट डालें। वन के वन साफ हो गये। तमाम पहाड़ नंगे हो गए। नदियों, समुद्र, नालों , तालाबों, गुफाओं-कन्दराओं को डायनामाइट बमों से उड़ा दिया। जिस आदमी के पास संख्या में अधिक संसाधन हैं, वह सबसे अधिक प्रदूषण फैला रहा है। हमने हर नदी, समुद्र, नहर, तालाब, नाला आदि को जहरीले कैमिकल युक्त कचरे से पाट दिया। पृथ्वी के दूर स्थान को तेल के धुयें और कचरे से पाट दिया। पृथ्वी पर होने वाले लगभग समस्त प्रकार के विनाश का कारण केवल मनुष्य है। अगर मनुष्य इस पर लगाम नहीं लगाता है तो इसकी कीमत भी वही चुकाएगा। पर्यावरण की सनातन ज्ञान परंपरा में स्वच्छ पर्यावरण और 'शुद्ध-जलवायु' को 'जीवन जीने के अधिकार' के अन्तर्गत मौलिक अधिकार माना गया है। उच्चतम न्यायालय ने भी अपने कई निर्णयों में इसे मौलिक अधिकार की श्रेणी के अन्तर्गत रखा है। पर्यावरण' और 'पंचतत्वों' को दूषित करना सृष्टि के साथ खिलवाड़ करना है। हमें हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि - हम तथाकथित विकास की चाहे जितनी ऊँची छलांग लगा लें, अन्न, जल, वायु आदि हमें पृथ्वी से ही मिलना है। इसके बिना किसी भी प्रकार के जीवन की कल्पना तक नहीं की जा सकती। इसलिए किसी भी हालत में हमें 'पर्यावरण-प्रदूषण' और ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को पूर्व औद्योगिक स्तर पर ले जाना होगा। तभी हम स्वस्थ और सम्पन्न रह पायेंगे।

●●●

127. श्रीमदभगवद्गीता, 9/6
128. वही 7/4-5

भारतीय संस्कृति पर श्रीमद्भागवद्गीता एवं भागवत महापुराण का प्रभाव

डॉ. अरविन्द कुमार राम[1]

सारांश

संस्कृति का अर्थ कभी भी स्थिर एवं ठहरा हुआ नहीं होता। यह गंगा के अविरल प्रवाह की तरह निरंतर गतिमान रहता है। जहाँ तक भारतीय संस्कृति का प्रश्न है तो भारतीय संस्कृति, संसार की सबसे प्राचीन एवं भव्यतम् और सर्वोत्कृष्ट संस्कृति है। वेद विश्व के सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। इन ग्रंथो में भारतीय संस्कृति का 'वैदिक संस्कृति' के रूप में बड़ा ही उदात्त, भव्य और आकर्षक रूप प्राप्त होता है। ब्राह्मण ग्रन्थ 'आरण्यक' और 'उपनिषद' भी वैदिक साहित्य के अंतर्गत आते हैं। रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति के उपजीव्य ग्रन्थ हैं। महाभारत के अंतर्गत श्रीमद्भागवद्गीता का पवित्र उपदेश है। अर्जुन द्वारा उठाये गए सात प्रश्नो का उत्तर भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद भगवद्गीता के सत्रह अध्यायों में अपने श्रीमुख से दिया है। श्रीकृष्ण ने संसार को यह खुला सन्देश दे दिया कि भले ही मैं हार जाऊंगा किन्तु सदैव सत्य, न्याय, धर्म और मनवाता के पक्ष में ही खड़ा रहूँगा।

कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास द्वारा रचित अट्ठारह पुराणों में श्रीमद्भागवत महापुराण का विशेष स्थान है। वस्तुतः श्रीमद् भागवत में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, दर्शन, अध्यात्म लौकिक, पारलौकिक, सत्य, न्याय, मानवता, सृजन और संवेदना का ऐसा सागोपांग चरमोत्कर्ष है, जो पूरे संसार के किसी भी भाषा के किसी भी कृति में नहीं है।

मुख्य शब्द *– संस्कृति, जीवनमूल्य, वेदव्यास, रणक्षेत्र, पांडव, कौरव, श्रीकृष्ण, युद्ध, पुराण, समाधि, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत, भक्ति-आंदोलन*

'संस्कृति' शब्द अत्यंत व्यापक एवं विराट अर्थबोध लिए हुए है। इस शब्द में मानव जीवन के संपूर्ण आतंरिक एवं बाह्य स्वरूप समाहित हो जाते हैं। रहन-सहन, कार्य व्यवहार, चिंतन और चरित्र, आचरण एवं अपेक्षाएं, सोच एवं समझ, अभिरूचि एवं आकांक्षा तथा तज्जनित साहित्य दर्शन, नृत्य, गीत, संगीत, चित्रकला, नाट्यकला, शिल्पकला सहित ६४ कलाएं भी संस्कृति का अंग बन जाती है।

संस्कृति का अर्थ कभी भी स्थिर एवं ठहरा हुआ नहीं होता। यह गंगा के अविरल प्रवाह की तरह निरंतर गतिमान रहता है। यह गतिशीलता ही संस्कृति की प्राणदायनी शक्ति होती है। प्राकृतिक परिवर्तनों एवं समय के प्रवाह में होने वाले उतार-चढ़ाव को सहज रूप से स्वीकार करती हुई संस्कृति भी अपने अन्तर्निहित तत्वों को तद्रूप

1. पूर्व प्रोफ़ेसर एवं प्रधानाचार्य, राजकीय महाविद्यालय, आजमगढ़, उ.प्र., दूरभाष-9451842115

परिमार्जन करते हुए नूतन एवं आकर्षक बनी रहती है।

जहाँ तक भारतीय संस्कृति का प्रश्न है तो भारतीय संस्कृति, संसार की सबसे प्राचीन एवं भव्यतम संस्कृति है, सर्वोत्कृष्ट संस्कृति है। वेद विश्व के सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। इन ग्रंथो में भारतीय संस्कृति का 'वैदिक संस्कृति' के रूप में बड़ा ही उदात्त, भव्य और आकर्षक रूप प्राप्त होता है। वैदिक ऋषि मनुष्य के जीवनमूल्यों, विचारों, कर्म और आचरण को अत्यधिक संस्कारित एवं पवित्र करते हुए देवत्व की श्रेणी में स्थापित करते हैं। ऋग्वेद, युजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद सुविख्यात प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। ब्राह्मण ग्रन्थ 'आरण्यक' और 'उपनिषद' भी वैदिक साहित्य के अंतर्गत आते हैं, जो कालक्रम के प्रवाह में वैदिक संस्कृति को नूतनता प्रदान करते हुए अग्रसर करते हैं।

इसी बीच श्रीकृष्ण द्वैपायन महर्षि भगवान वेदव्यासजी का अवतरण होता है। इन्होंने परब्रह्म और शब्द ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया था। इन्हें दिव्यदृष्टि एवं परावाणी प्राप्त हो चुकी थी। इन्होंने जगत के कल्याण के लिए वेदों का विस्तार किया। इसी कारण इन्हें वेदव्यास कहा जाता हैं। इन्होंने मानव के लिए परमार्थ का मार्ग प्रशस्त करने हेतु १८ पुराण एवं महाभारत जैसे विशाल ग्रन्थ रत्नों की रचना की है।

विश्व के प्रत्येक भाषा में अनुदित एवं सर्वाधिक पढ़ने एवं बिकने वाली अक्षय ज्ञान से परिपूर्ण 'श्रीमद्भगवद्गीता' इनके महाभारत के भीष्म पर्व के अंतर्गत पचीसवें अध्याय से प्रारम्भ होकर बयालीसवें अध्याय तक कही गयी है। इस के कुल १८ अध्यायों में ७०० श्लोक वर्णित हैं।

श्रीमद भगवद्गीता का अभ्युदय किसी आश्रम, कुटी, या ध्यान केंद्र में नहीं हुआ है, अपितु ऐसे रणक्षेत्र में हुआ है जहाँ दो पक्षों की १८ अक्षौहिणी सेना सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय, मानवता और पशुता, पुण्य और पाप के बीच महासंग्राम करने के लिए आमने-सामने डट गयी है। कौरव पक्ष की ११ अक्षौहिणी सेना और पांडव पक्ष की मात्र ७ अक्षौहिणी सेना के योद्धा युद्ध जीतने के लिए अपने प्राणों की बाज़ी लगा कर हुंकार भर रहे हैं।

इस युद्ध की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भिन्न-भिन्न देशों के महापराक्रमी राजा एवं उनके वीर योद्धा तो आए ही हैं, एक ही परिवार के बड़े बूढ़े और बच्चे भी दो पक्षों में बँटकर एक दूसरे को मारने के लिए उद्यत हैं। मूलतः यह एक परिवार का ही युद्ध है। यह युद्ध पितामह और पौत्र, गुरु और शिष्य तथा भाई-भाई एवं चाचा-भतीजों के बीच हो रहा है।

कौरव पक्ष में अजेय महारथी पितामह हैं तो पांडव पक्ष में पौत्र अर्जुन है। कौरव पक्ष में युद्ध शास्त्र के महापंडित गुरु द्रोणाचार्य हैं तो पांडव पक्ष में उनका सबसे प्रिय शिष्य अर्जुन है। इसी तरह अनेकों सगे-सम्बन्धी जीवन का मोह त्याग कर एक दुसरे का प्राण लेने के लिए कटिबद्ध हैं।

बड़ी – बड़ी विषमताएं, विसंगतियाँ और विद्रूपतायें भले ही बहुत से तथाकथित बड़े – बड़े लोगो को दृष्टिगोचर न होती हों किन्तु जागरूक, समझदार और धर्म के मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को तो उद्वेलित कर ही देती हैं। इस रणक्षेत्र में अर्जुन एक ऐसा ही व्यक्ति था जो सामने शत्रुपक्ष में पूज्य भीष्म पितामह, गुरु द्रोणाचार्य, सगे-

सम्बन्धियों और भाई- भतीजों को देखकर अत्यंत उद्विग्न एवं विचलित हो गया तथा सारथी बने श्रीकृष्ण से कहा

"हे अच्युत केशव दोनों सेनाओं के मध्य में मेरे रथ को खड़ा कीजिये। दुष्टबुद्धि दुर्योधन का युद्ध में प्रिय करने की इच्छा वाले जो राजा लोग आये हैं उन्हें मैं देख लूँ और समझ लूँ की किन –किन के साथ युद्ध करना मेरे लिए योग्य है, उचित है।"[2]

महारथी अर्जुन के ऐसा कहने पर सारथी श्रीकृष्ण ने दोनों सेनाओं के मध्य भाग में पितामह भीष्म और गुरु द्रोणाचार्य के सामने उत्तम रथ को खड़ा करके कहा की "हे पार्थ इन इकट्ठे हुए कुरुवंशियों को देख ।"[3]

उसके बाद अर्जुन ने दोनों सेनाओं में स्थित पिताओं, पितामहों, आचार्यों, मामाओं, पुत्रों, पौत्रों, मित्रों, ससुरों, और सुहृदयों को भी देखा।

रणक्षेत्र में एक दूसरे को मारने-काटने के लिए सन्नद्ध और उतावले तथा स्वयं भी मर मिटने पर उतारू अत्यंत विशाल स्वजन-समुदाय को देखकर अर्जुन किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया उसकी बुद्धि चकराने लगी, वह अत्यंत दुखी होकर श्रीकृष्ण से बोला" हे कृष्ण युद्ध की इच्छा वाले इस स्वजन समुदाय को उपस्थित देखकर मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं और मुख सूख रहा है तथा शरीर में कंपकपी आ रही है। रोंगटे खड़े हो रहे हैं। हाथ से गांडीव धनुष गिर रहा है एवं त्वचा भी जल रही है। मेरा मन भ्रमित हो रहा है और मैं खड़ा रहने में भी असमर्थ हो रहा हूँ।[4] "

"हे कृष्ण सबको मार कर प्राप्त वह विजय, वह साम्राज्य, वह सुख, वह भोग लेकर हम क्या करेंगे सब को मार कर अकेले जी कर भी हमें क्या लाभ होगा? हम अकेले जी कर क्या करेंगे, हम दो पल शांति से बैठ भी नहीं पाएंगे, ऐसी जीत हमें नहीं चाहिए।"

"हे माधव जिनके लिए राज्य, भोग और सुख की इच्छा है वही सबके सब अपने प्राणों की और धन की आशा का पूर्ण परित्याग करके युद्ध में खड़े हैं।"[5]

इसी प्रकार और भी बहुत सी बातें शोकाकुल अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कही और अपनी पीड़ा को बार-बार दोहराता रहा। अर्जुन के प्रश्न बड़े ही सहज और स्वाभाविक थे।

अंत में श्लोक संख्या ४० से लेकर ४७ तक ७ श्लोकों में अर्जुन ने कुल के विनाश होने पर कुल के स्त्रियों के दूषित होने, वर्ण-संकर उत्पन्न होने, पितरों के स्वर्गलोक से गिर जाने आदि दोषों को बताते हुए युद्ध से विरत हो, दुखी मन से धनुष बाण का त्याग करके युद्ध भूमि में रथ के मध्य भाग में बैठ गया।

गीता के १/४०-४७ श्लोकों में अर्जुन द्वारा उठाये गए सात प्रश्नो का उत्तर भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्

2. भगवद्गीता, 1/ 21-22-23
3. भगवद्गीता, 1/24
4. भगवद्गीता 1/28-29-30
5. भगवद्गीता 1/33

भगवद्गीता के सत्रह अध्यायों में अपने श्रीमुख से दिया है। भगवान श्रीकृष्ण ही ऐसे थे जो इन प्रश्नो का उत्तर दे दिए, अन्य के बस की बात नहीं थी।

अर्जुन के इस प्रकार शोकाकुल होकर युद्ध से विरत हो हथियार डाल देने पर भगवान श्री कृष्ण ने देखा कि सत्य, न्याय, धर्म और मानवता की रक्षा के लिए लड़ा जाने वाला ये युद्ध पांडव बिना लड़े ही हार जायेंगे और दुनिया, देश तथा समाज में असत्य, अन्याय, अधर्म, अत्याचार, अनाचार, एवं पशुता का साम्राज्य स्थापित हो जायेगा। श्रीकृष्ण के आँखों के सामने पांडवों के साथ हुई विगत दुखद घटनाओं का पूरा परिदृश्य ही उपस्थित हो गया।

इस महायुद्ध के विनाश से सबको बचाने के लिए कौरवों एवं पांडवों में संधि कराने हेतु पांडवों का दूत बन कर कौरव सभा में श्री कृष्ण स्वयं ही गए थे और बड़ी विनम्रता से कहा था

"कुरुणां पाण्डवानां च शमः स्यादिति भारत।
अप्रणाशेन वीराणामेतद याचितुमागतः।।[6]

अर्थात हे भरतनंदन धृतराष्ट्र! मैं आपसे ये प्रार्थना करने के लिए आया हूँ की क्षत्रिय वीरों का संहार हुए बिना ही कौरवों और पांडवों में शांति स्थापित हो जाये।

इसी अध्याय के श्लोक संख्या ४ से लेकर ६२ श्लोक तक भगवान् श्रीकृष्ण ने सारगर्भित सत्य, न्याय, धर्मसम्मत, एवं अत्यंत कल्याणकारी बातें कही हैं।

पांडव तो मात्र 5 गाँव लेकर भी संधि करने के लिए इस महाविनाश को रोकने हेतु सहर्ष तैयार थे। किन्तु दुर्योधन ने भगवन श्रीकृष्ण को दो टूक जवाब दे दिया कि मेरे रहते बिना युद्ध के, मैं सुई के नोक के बराबर भी भूमि नहीं दे सकता।

प्रियमाणे महाबाहौ मयि सम्प्रति केशव।
यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव।
तावदप्य परित्यज्यं भूमेर्न: पांडवान प्रति।।[7]

श्रीकृष्ण के प्रति यह गर्वोक्ति युद्ध को अनिवार्य एवं अपरिहार्य बना दिया था। पांडवों के सामने युद्ध के अतिरिक्त और कोई रास्ता बचा ही नहीं था।

कौरवों ने शुरू से ही पांडवों पर अनेक अत्याचार किये थे उनमे द्रौपदी का चीर हरण एक ऐसा अत्याचार, अधर्म, पाप, और मानवता को शर्मसार कर देने वाली ऐसी घटना थी जो भारत ही नहीं पूरे विश्व के इतिहास में न कहीं घटी है, न घटेगी।

6. महाभारत, उद्योगपर्व, अध्याय, 95, श्लोक 3
7. महाभारत उद्योगपर्व , भगवद्यान पर्व अध्याय127, श्लोक25

एक राज दरबार में राजा की उपस्थिति में जहाँ पर इच्छा-मृत्यु का वरदान पाए सबके पितामह, अजेय भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य, अन्यान्य अनेक महाबलशाली लोग बैठे हों वहाँ एक असहाय अबला का चीर हरण हो रहा था और कोई चूँ तक नहीं किया। अंततः भगवान श्रीकृष्ण ने ही द्रौपदी की लाज बचाई थी।

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में 18 अक्षौहिणी सेना मर-मिटने के लिए अचानक नहीं इकट्ठी हो गयी थी, इसके पीछे अनेक दुखद घटना-क्रम थे।

पांडव सेना में अर्जुन ही एकमात्र ऐसा वीर योद्धा था जिसके ऊपर विजय का सारा दारोमदार टिका हुआ था और वही युद्ध क्षेत्र से भाग खड़ा हुआ। ऐसी स्थिति में सत्य, न्याय और धर्म की रक्षा के लिए श्रीकृष्ण को ही पुनः आगे आना पड़ा।

युद्धशास्त्र के नियमों के अनुसार पांडवों की हार सुनिश्चित थी। कौरवों के पक्ष में ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी और उसमें भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा जैसे अपराजेय योद्धा थे। द्वारका की महाबलशाली यदुवंशी सेना भी कौरवों के पक्ष में खड़ी थी। यह भी एक बड़ी विचित्र बात थी की द्वारका की सेना कौरव पक्ष में खड़ी थी और द्वारका का राजा द्वारकाधीश श्रीकृष्ण पांडवों के पक्ष में खड़े थे। इतिहास में ऐसा न कभी हुआ है और न कभी होगा कि राजा और उसकी सेना परस्पर विरोधी पक्ष में मर-मिटने के लिए खड़े हो गए हों।

एक मात्र श्री कृष्ण ही ऐसे थे जो पांडवों के पक्ष में आये थे और उन्होंने भी यह प्रतिज्ञा कर लिया था कि युद्ध में कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं उठाऊंगा, अर्थात मैं लडूंगा नहीं।

यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि एक कमज़ोर और हारने वाली सेना के पक्ष में ऐसी प्रतिज्ञा करके श्रीकृष्ण क्यों आये ?

बात बहुत स्पष्ट है। श्रीकृष्ण ने संसार को यह खुला सन्देश दे दिया कि भले ही मैं हार जाऊंगा किन्तु सदैव सत्य, न्याय, धर्म और मनवाता के पक्ष में ही खड़ा रहूँगा।

सचमुच युद्ध क्षेत्र में अर्जुन जब शोकाकुल होकर युद्ध से पहले ही हार मान लिया और हथियार डाल दिया तब सत्य, न्याय, धर्म और मानवता के विजय की ज़िम्मेदारी श्रीकृष्ण के कन्धों पर आ गयी। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वे अस्त्र-शस्त्र तो नहीं उठा सकते थे परन्तु अपने श्रीमुख से शास्त्र का प्रयोग अवश्य किए। अमृतवाणी अवश्य कही। मोहग्रस्त अर्जुन के सात प्रश्नों का उत्तर भगवान् कृष्ण ने सत्रह अध्यायों में दिया है।

श्रीमद्भगवद्गीता के 700 श्लोको में ऐसी दिव्य प्रभा प्रज्वल्लित है जो आकाश में एक साथ 700 सूर्य और चन्द्रमा के उदित होने पर भी नहीं हो सकती और उसमें ज्ञान के अमृत का ऐसा सागर है जिसके एक बूंद का भी रसपान कर लेने पर मृत व्यक्ति भी अक्षय ऊर्जावान हो सकता है। इसी ने एक तरह से मृतप्राय अर्जुन को अक्षय ऊर्जा देकर महाभारत में विजयी बनाया। यह गीता के उपदेश का ही चमत्कार था।

महाभारत का युद्ध आज से लगभग ५२०० वर्ष (पांच हज़ार दो सौ वर्ष पूर्व हुआ था)। ज्ञान का अथाह सागर होने के कारण महाभारत को पंचम वेद और शत साहस्री संहिता कहा जाता है।

इसमें व्यक्ति, परिवार, देश, समाज के अनेकानेक विविध पक्षों, विसंगतियों, विषमताओं तथा चारो वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र), चारों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास), चारों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के विषय में इतनी गहराई से अत्यंत सूक्ष्म, गहन, एवं विशद रूप से वर्णन किया गया है कि इतना अन्यत्र कहीं मिल ही नहीं सकता। यहाँ तो सब कुछ एक ही जगह प्राप्त हो जाता है। इसीलिए बहुत स्पष्ट शब्दों में खुलकर यह बात कह दी गयी है कि -

धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित।।[8]

अर्थात धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सम्बन्ध में जो यहाँ कहा गया है वही सब जगह है। जो यहाँ नहीं है वह कहीं नहीं है।

श्रीमद् भगवद्गीता के श्लोक और महाभारत के सूक्ति सूत्र प्राचीन काल से ही भारतीय जनजीवन को प्रेरित प्रभावित एवं संचालित करते आ रहे हैं। भारतीय संस्कृति के स्वरूप निर्धारण में यह नीति निर्धारक तत्त्व हैं।

गीता पर हजारों वर्ष पहले से ही अनेक विद्वानों, विचारकों, मनीषियों, संत-महात्माओं, आध्यात्मिक धर्म गुरुओं ने संस्कृत से लेकर विभिन्न भाषाओं में विविध प्रकार से जन-सामान्य के लिए सहज सरल सुबोध सारगर्भित और कल्याणकारी टीकाएं लिखी हैं। भारत के प्रत्येक प्रांत की हर भाषा में इसका अनुवाद और टीकाएं तो लिखी ही गई हैं, पूरे विश्व की समस्त भाषाओं में टीका सहित इसका अनुवाद हो चुका है। अब भी इसकी टीकायें लिखी जा रही हैं और भविष्य में भी लिखी जाती रहेंगी, क्योंकि यह भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से निकला हुआ दिव्य ग्रंथ है।

वस्तुतः युद्ध (संघर्ष) व्यक्ति, परिवार, गांव, नगर, जनपद ,प्रदेश, देश-देशांतर में प्रतिदिन प्रतिक्षण लड़ा जाता है और अर्जुन के सात प्रश्न सदैव खड़े हो जाते हैं, फिर उत्तर के रूप में गीता के 17 अध्याय सम्मुख आते हैं तथा विषम परिस्थितियों में सबका मार्ग प्रशस्त कर देते हैं।

वैसे तो श्रीमद् भगवद्गीता पर प्राचीन काल से ही संस्कृत में भाष्य लिखे जा रहे थे, परंतु उपलब्ध भाष्यों में गीता पर पहला भाष्य आदि शंकराचार्य का ही प्राप्त होता है। उन्होंने अपने भाष्य में कुछ पूर्ववर्ती भाष्यकारों का उल्लेख किया है। श्री आदि शंकराचार्य का समय विद्वानों ने विक्रम संवत् 845 से 877 माना है। आदि शंकराचार्य अलौकिक विद्वान एवं दिव्य संन्यासी थे। उन्होंने वेदांत के मूल सिद्धांतों को आत्मसात करते हुए गीता पर भाष्य लिखकर भारतीय जनमानस में एक नई चेतना जागृत किया साथ ही वह और भी कई ग्रंथों की रचना किए।

8. महाभारत, आदिपर्व, 62/53

भारतीय संस्कृति को यदि शंकराचार्य की क्या देन है यह बताने की आवश्यकता नहीं है। उनकी देन और महत्त्व पर अलग से ग्रंथ लिखा जा सकता है। उन्होंने संपूर्ण भारतवर्ष की यात्रा कर अपने दिव्याप्रतिभा के बल पर अनेक स्थानों पर शास्त्रार्थ करते हुए दिग्विजय प्राप्त किया और अपने मत अद्वैतवाद की स्थापना की। उन्होंने अपने अलौकिक मेधा और तर्क के बल पर समाज में व्याप्त रूढ़ियों, पाखंडों, कुरीतियों और भ्रामक मतवादों को विनष्ट कर एक स्वस्थ जीवन और आदर्श समाज की स्थापना किया। अपने मत को स्थाई रूप देने के लिए चार मठों दक्षिण में श्रृंगेरी मठ, पूरब में पुरी में गोवर्धन मठ, पश्चिम में द्वारका और उत्तर में ज्योर्तिमठ स्थापित किया, जो आज भी विद्यमान है और सुव्यवस्थित संचालित हैं। भारतीय संस्कृति के स्वरूप निर्धारण में श्रीमद्भागवद् गीता के प्राचीन योगदान के साथ-साथ अर्वाचीन काल में भी इसके सतत प्रवाह को देख लेना समीचीन होगा।

आधुनिक काल में भी समान्य जन-जीवन के क्रियाकलाप में गीता व्यक्ति की हर समस्या और भ्रम को निर्मूल कर अपरमित ऊर्जा से भर देती है।

उन्नीसवीं – बीसवीं शताब्दी में पूरे विश्व पर शासन करने वाले तथा जिनके राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता था और जिनके नाविक समुद्र की लहरों पर शासन करते थे उन महाशक्तिशाली अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े जा रहे स्वतंत्रता संग्राम के महानायक महात्मा गाँधीजी गीता की पुस्तक सदैव अपने साथ रखते थे। उसे हमेशा पढ़ते थे। उनके समक्ष जब भी कोई समस्या आती थी उसका समाधान गीता में ढूँढ़ते थे और गीता को माँ कहते थे। संत विनोवा गीता के परम भक्त थे। गीता का ही वह ज्ञान एवं प्रेरणा रहती थी कि हमारे क्रान्तिकारी वीर गीता की पुस्तक हाथों में लेकर फांसी के फंदों पर झूल जाते थे। स्वतंत्रता संग्राम को सफल बनाने में गीता का अतुलनीय योगदान रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता अपने सच्चे अध्येता को मृत्यु पर विजय पाने की कला में पारंगत बना देती है।

स्वतंत्रता संग्राम के महान क्रान्तिकारी सेनानी लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने तो 'श्रीमद्गीतारहस्य' नामक सुप्रसिद्ध पुस्तक ही लिख डाली है, जिसका विद्वत समाज में बड़ा सम्मान है।

भारतीय संस्कृति, ज्ञान एवं धर्म का निरंतर प्रचार एवं प्रसार करने वाले, सुविख्यात गीता प्रेस की स्थापना करने का मूल श्रेय तो श्रीमद्भगवद्गीता ही है।

सत्रह पुराण एवं महाभारत जैसे पंचम वेद की रचना करने के बाद भी महर्षि भगवन वेदव्यास जी के चित्त में शांति की अनुभूति नहीं हो पा रही थी। उनका मन उद्विग्न एवं चित्त अशांत था। वे बार-बार अपने आपसे इसका कारण पूछ रहे थे, परन्तु समाधान नहीं मिल पा रहा था। उन्हें लग रहा था कि अब तक मैंने केवल मानव धर्म की चर्चा की है। मनुष्य का परम कल्याण करने वाले भागवत तत्त्व और भागवत प्रेम पर तो कुछ किया ही नहीं है। उसी समय देवर्षि नारद उनके आश्रम पर आ गए। पूजा-अर्चन के पश्चात स्वयं देवर्षि नारद ने व्यास जी की मुखमुद्रा देखकर प्रश्न किया "प्रभो आप अकृतार्थ व्यक्ति के समान अपने विषय में शोक क्यों कर रहे हैं ?"

व्यासजी ने कहा " देवर्षि आप सब कुछ जानते हैं, मेरे शोक का कारण भी जानते हैं। मेरे में जो कमी रह गयी है, कृपा करके उसे बताइये।"

देवर्षि नारद जी ने स्पष्ट रूप से कहा "व्यासजी आपने भगवान् के निर्मल यश का गान प्रायः नहीं किया है। मेरी ऐसी मान्यता है कि जिससे भगवान् संतुष्ट नहीं होते वह शास्त्र या गहन ज्ञान अधूरा है। आपने धर्म आदि पुरुषार्थों का जैसा निरूपण किया है, भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा का वैसा निरूपण नहीं किया है। विद्वानों ने इस बात का उल्लेख किया है कि मनुष्य की तपस्या वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय ज्ञान और दान का एकमात्र प्रयोजन यही है की पुण्य कीर्ति श्रीकृष्ण के गुणों और लीलाओं का वर्णन किया जाए।

महर्षि वेदव्यासजी का असंतोष एवं देवर्षि नारद का आगमन तथा प्रश्नोत्तर का उल्लेख श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध के चौथे एवं पांचवें अध्याय में विस्तार से वर्णित है।

द्वितीय स्कंध के नवें अध्याय के श्लोक संख्या ४२ से ४५ तक में यह बताया गया है कि स्वयं श्रीहरि ने ब्रह्माजी को भागवत की कथा सुनाया था और ब्रह्माजी ने अपने मानस पुत्र देवर्षि नारद को सुनाया और देवर्षि नारद ने महर्षि भगवान् वेदव्यासजी को वही कथा सुनाया। इस प्रकार यह कथा भगवान् द्वारा स्वयं ही कही गयी है।

श्रीमद् भागवत महर्षि वेदव्यास द्वारा समाधि भाषा में लिखा गया परमहंसो की संहिता है। यह ज्ञान एवं रस का अथाह, अछोर, अनंत सिंधु है। अपने मति और गति के अनुसार इसे जो जितना समझ पाता है, उतना ही कह पाता है। समाधि लगा कर सभी परमहंस नहीं हो सकते।

इसे पढ़ने पर मुझे तो यही अनुभव हुआ कि महर्षि वेदव्यासजी ने धरती और आकाश को निचोड़ कर उसका सारा रस भागवत में भर दिया है।

भारतीय संस्कृति के स्वरूप निर्धारण में भागवत के योगदान पर चर्चा मैं आगे करूँगा। इसके पहले भागवत पर थोड़ी सी बात कर लेना उचित होगा जिससे विषय-वस्तु को समझ लेने में सुविधा होगी।

श्रीमद् भागवत महापुराण महर्षि वेदव्यासजी की अंतिम रचना है इसकी महत्ता के विषय में इतना ही कहना अधिक उपयुक्त है कि इसको लिखने के बाद महर्षि वेदव्यासजी को इतना परमानंद एवं परमसंतोष की प्राप्ति हुई कि उन्होंने अपनी लेखनी रख दी। क्योंकि अब इससे अधिक महान, भव्य, दिव्य, सरस एवं लोक हितकारी कृति की रचना संभव नहीं है।

विद्वानों ने भागवत पर चिंतन-मनन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है -

भा- भा - धातु - दीप्तौ (परम प्रकाश)

भाति सर्वेषु वेदेषु (जो सभी वेदों में प्रकाशित है)

ग – गतिर्यस्य दुरत्यया (जिसकी गति (प्रभाव और पैठ) रोकी नहीं जा सकती)

व – वरिष्ठः सर्व शास्त्रेषु (जो सभी शास्त्रों में सर्वोपरि है)

त – तरन्ति येन भवार्णवे (जिससे लोक भव सागर को पार कर जाता है)

वस्तुतः श्रीमद्भागवत में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, दर्शन, अध्यात्म लौकिक, पारलौकिक, सत्य, न्याय, मानवता, सृजन और संवेदना का ऐसा सागोपांग चरमोत्कर्ष है जो पूरे संसार के किसी भी भाषा के किसी भी कृति में नहीं है।

श्रीमद्भागवत का प्रारम्भ 'सत्यं परं धीमहि'[9] से होता है और सम्पूर्णता भी 'सत्यं परं धीमहि'[10] से होती है। हम परम सत्य का ध्यान करते हैं।

भागवत में केवल परम सत्य की बात कही गयी है। इसमें किसी जाति, धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग, वर्ण, आदि का वर्णन है ही नहीं। इसमें तो पूरे विश्व के जीवमात्र के कल्याण की बात बार –बार कही गयी है। सबके लिए परम श्रेय का मार्ग प्रखर एवं प्रशस्त किया गया है। इसे जो एक बार ठीक से समझ लेता है उसे दूसरी रचना कृति नीरस एवं फीकी लगने लगती है क्योंकि यह 'रसमालयम्' है।[11]

श्रीमद्भागवत भारतीय वांग्मय का ही नहीं पूरे विश्व वांग्मय का दिव्य ग्रन्थ रत्न है, जिसमे सगुण-निर्गुण, भक्तिमार्गीय, ज्ञानमार्गीय, एवं प्रेममार्गीय आदि उपासना की, साधना की जितनी भी विधियां या विधाएँ हो सकती हैं सबका चरमोत्कर्ष रूप विद्यमान है। यही कारण है कि दुनिया की समस्त भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। बड़े-बड़े विद्वानों, संत-महात्माओं ने एक से बढ़कर एक सुन्दर – सुन्दर टीकाएँ लिखी हैं। केवल संस्कृत भाषा में ही, लगभग 50 टीकाएँ इस समय उपलब्ध हैं, जिनमें श्री श्रीधरस्वामी जी एवं महाप्रभु वल्लभाचार्यजी महाराज की टीका अत्यंत सुविख्यात है।

भारतीय चिंतन में शब्द को ब्रह्म कहा गया है और शब्द का ब्रह्म रूप श्रीमद्भागवत के अक्षर – अक्षर में विद्यमान है। इसलिए भागवत को श्रीकृष्ण की वांग्मय मूर्ति (शब्दावतार) कहा जाता है। पर ब्रह्ममय होने के कारण इसके शब्दों को ठीक-ठीक समझने में विद्वानों को काफी दंड-बैठक करनी पड़ती है। इसलिए विद्वत समाज में यह उक्ति प्रचलित है 'विद्यावतां भागवते परीक्षा'।

वैसे भागवत के महामर्मज्ञ श्री शुकदेवीजी के द्वितीय अवतार प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री अखंडानंद सरस्वतीजी महाराज ने साफ़-साफ़ कह दिया है कि श्रीमद्भागवत को न तो केवल विद्वत्ता से समझा जा सकता है और न ही अभ्यास से। इसके लिए तो भागवत के समक्ष हाथ जोड़ कर प्रार्थना करनी पड़ती है कि हे भागवत महाराज; अपना अर्थबोध कराने की मुझ पर विशेष कृपा कीजिये। तब कहीं कुछ पल्ले पड़ता है।

वस्तुतः श्रीमद्भागवत में महर्षि वेदव्यासजी ने कथाओं एवं शब्दों का गुम्फन इतनी विदग्धता के साथ किया है कि शब्द-शब्द में, पद-पद में विद्यमान तत्वों की रत्न राशियों की प्रभासे विद्वतजनों की आखें चकित एवं प्रफुल्लित हो जाती हैं और जन-सामान्य रस के पारावार का अमृत पान कर छक जाता है। यह विज्ञ एवं अनभिज्ञ,

9. भागवत पुराण, 01/01/01
10. भागवत पुराण,12/39/19
11. भागवत पुराण,01/01/03

साधारण एवं असाधारण (आम और ख़ास), राजा-रंक, सबका है। यह दिव्य आनंद का ऐसा अथाह सागर है जिसकी विशाल जलराशि केवल अमृत से भरी है और जिसके अतल गहराई में रत्न राशियों का अक्षय भंडार है।

यह गुरुणां गुरु (गुरुओं के गुरु) परम भागवत श्री शुकदेवजी महाराज के लिए तो है ही, महाप्रतापी चक्रवर्ती सम्राट राजा परीक्षित के लिए भी है।[12]

श्रीमद्भागवत के अर्थ की व्यापकता और विशालता के मूल में सबसे अहम् और विशेष बात यह है कि इस दिव्य ग्रन्थ रत्न में परब्रह्म परमात्मा का जितना सहज सरलीकरण एवं साधारणीकरण हुआ है वह अप्रतिम (matchless) है।

बालकृष्ण का माटी खाना, दही का मटका फोड़ देना, उखल से बद्ध हो जाना, आदि घटनायें लोक जीवन एवं मानव जीवन की इतनी सामान्य और सहज घटनाएं हैं कि लगता हैं जैसे परब्रह्म परमात्मा आकाश में नहीं, हमारे घर में खड़ा है। वस्तुतः व्यास जी ने हर माँ को यशोदा और हर बच्चे को श्रीकृष्ण का स्वरूप देकर लोक जीवन को श्रीकृष्ण के रस में डुबो दिया है। यशोदा श्रीकृष्ण को 'चटोरा' कहती हैं (कस्मान्मृदांतात्म्न[13]) गोपियाँ ठग, धूर्त, कपटी कहती हैं 'कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि'[14], 'कितव योषितः कस्यत्यजेन्निशि'[15]। खेल में हारे हुए अपराजेय परब्रह्म श्रीकृष्ण श्रीदामा को अपनी पीठ पर चढ़ाकर निर्धारित स्थान पर ले जाते हैं- (उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानंपराजितः।[16])।

परमात्मा एकदम साधारण हो गया है। श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त किसी भी शास्त्र या सहस्रनाम में भगवान् का यह नाम नहीं मिलेगा।

भागवत ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति का अनंत समुद्र तो है ही, प्रेम का भी असीम अथाह सागर भी है। रासपंचाध्यायी (10/29/01 से 10/33/40 तक) को भगवान् का पंचप्राण कहा जाता है और महारास प्रेम की पराकाष्ठा है। श्री शुकदेव जी महाराज प्रेम में इस कदर डूबे रहते हैं कि परम ज्ञानी होने पर भी गूंगे और पागल की तरह मौन होकर इसके रसपान में लवलीन रहते हैं, 'गूढ़ो–मूढो इवेयते'[17]। भागवत में श्री शुकदेव जी महाराज के लिए कुल 38 विशेषण आये हैं।

श्रीमद्भागवत के मुख्य प्रयोजन एवं विशेषताओं को महर्षि भगवान् वेदव्यास जी ने प्रारम्भ में ही बता दिया है -

निगम कल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम।

12. भागवत पुराण, 10/47 /59
13. भागवत पुराण, 10/08/34
14. भागवत पुराण, 10/31/10
15. भागवत पुराण,10/31/16
16. भागवत पुराण 10/18/24
17. भागवत पुराण, 1/1/4

पिबत भागवतं रसमालयम् मुहूरहो रसिका भुवि भावुकाः।।[18]

अर्थात यह श्रीमद्भागवत वेद रूपी कल्पवृक्ष (समस्त मनोरथों को तत्काल पूरा कर देने वाला) का स्वयं पक कर स्वतः धरती पर गिरा हुआ अति स्वादिष्ट फल है। शुक (परम ज्ञानी श्री शुकदेव जी महाराज) के मुख का स्पर्श हो जाने से यह परमानन्दमयी अमृत रस से भर गया है (यह लोक प्रसिद्ध है कि तोते का कटा हुआ फल अधिक मीठा होता है)। यह मूर्तिमान रस का महासागर है। यह केवल रस ही रस है। इसमें गुठली या छिलका कुछ भी नहीं है। इसलिए हे रसिकजनों, सुमत सुधीजनों, सहृदय साधुजनों, निरंतर, अहर्निश, अनवरत इसका पान करते रहो। यह केवल पृथ्वी पर ही सुलभ है (अन्यत्र कहीं नहीं)।

भारतीय वांग्मय के इस अनमोल ग्रंथ के उपर्युक्त तथ्यों को पढ़कर पाठक वृन्द इस बात से भलीभाँति सुपरिचित हो गए होंगे कि इस ग्रन्थ ने भारतीय समाज, भारतीय जीवन-मूल्यों, भारतीय चिंतन, भारतीय धर्म, दर्शन, संगीत, कला और संस्कृति को कितने व्यापक और गहराई से इनके अंतरंग एवं बहिरंग पक्षों को प्रभावित तथा निर्धारित किया होगा।

आठवीं सदी में आदि शंकराचार्य के अद्वैतवाद का पूरे भारत वर्ष में अत्यधिक प्रचार-प्रसार हो चुका था। उनके 'ब्रह्म सत्यं जगद् मिथ्या' के कथन पर भी महापुरुषों, मनीषियों संत – महात्माओं ने भी अपने-अपने ढंग से चिंतन-मनन शुरू कर दिया था। नयी-नयी बातें निकलकर आ रही थीं और नए-नए ग्रंथो का प्रणयन हो रहा था। यद्यपि आदि शंकराचार्य की कुल उम्र मात्र ३२ साल ही रही और आज के ज़माने की तरह उस समय प्रचार-प्रसार के साधन नहीं थे। एक बात को दूसरे स्थान में पहुंचने और फैलने में कई-कई वर्ष लग जाते थे।

श्री शंकराचार्य के मत के खंडन-मंडन करने में विद्वानों के समक्ष प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में श्रीमद्भागवत महापुराण ही था। इसमें महर्षि भगवान् वेदव्यास जी ने वेद, वेदांत और पुराणों का सारा नवनीत निकाल कर रख जो दिया था। कुछ पाने के लिए अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। यह अलग बात हो सकती है कि कुछ जिज्ञासु विद्वान् अपनी संतुष्टि के लिए अन्य ग्रंथों का भी अवलोकन कर लेते होंगे।

श्रीमद् भागवत महापुराण में १२ स्कंध, ३३५ अध्याय और कुल १८,००० श्लोक हैं। प्रत्येक के शब्दों में इतना गूढ़ गंभीर अर्थ शक्ति है कि उसके अतल गहराई में पहुँचना सबके बस की बात नहीं होती। शब्द देखने में साधारण सा भले लगे किन्तु उसका अर्थ विराट जैसा होता हैं। उदाहरण के लिए एक बहुत छोटा सा साधारण सा अत्यंत प्रचलित शब्द 'पीताम्बरः' प्रस्तुत कर रहा हूँ। सामान्यतः इसका अर्थ विद्वान् लोग 'पीतं अम्बरं यस्य सः इति पीताम्बरः' अर्थात श्रीकृष्ण करते हैं, किन्तु भागवत के भाष्यकार 'पीतं अम्बरं येन सः इति पीताम्बरः 'करते हैं। अर्थात पी लिया है आकाश जिसने ऐसा श्रीकृष्ण।

हाँ तो जैन धर्म और बौद्ध धर्म के पतन के साथ-साथ विशेष रूप से दक्षिण में शैव सम्प्रदाय और वैष्णव सम्प्रदायों का उदय, प्रचार-प्रसार प्रारम्भ हो गया था। इन सम्प्रदायों के संत कवियों के पद और आचार्यों के शास्त्रों

18. भागवत पुराण,1/1/3

पर आधारित मत भारतीय जनमानस को बहुत अधिक प्रभावित कर रहे थे।

श्री शंकराचार्य के 'अद्वैतवाद' और जगत के 'मिथ्यावाद' से परवर्ती आचार्य सहमत नहीं थे और लोक-कल्याण तथा भागवत के आलोक में भी इसे उचित नहीं समझते थे। फलतः श्री शंकराचार्य के दोनों मतों का खंडन परवर्ती धर्माचार्यों ने बड़े तार्किक और प्रामाणिक ढंग से प्रारम्भ कर दिया।

श्री शंकराचार्य जी का जन्म दक्षिण भारत में हुआ था और भागवत के अद्वैतवादी टीकाकारों में श्री श्रीधरस्वामी जी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है, किन्तु उनके अद्वैतवाद के खंडन में सर्वप्रथम दक्षिण भारत के ही आचार्य एवं संत आगे आये।

इसमें पहला नाम विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के संस्थापक श्री रामानुजाचार्य जी का है। इसी तरह द्वैताद्वैती सम्प्रदाय के आचार्य श्रीनिंबार्काचार्य जी हैं, द्वैतवादी सम्प्रदाय के आचार्य श्री मध्वाचार्य जी हैं और शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्य श्री विष्णुस्वामी जी हैं। इस सम्प्रदाय के सबसे प्रमुख आचार्य श्री वल्लभाचार्य जी महाराज हैं, इसलिए शुद्धाद्वैत मत को श्री बल्लभाचार्य जी का भी मत कहा जाता है।

श्री चैतन्य सम्प्रदाय में भी श्रीमद्भागवत को आधार बनाकर प्रेम भक्ति को ही प्रमुखता दी गयी है। इस सम्प्रदाय में श्री चैतन्य महाप्रभु जी के मत को स्थापित, प्रचारित एवं प्रसारित करने में षट गोस्वामियों का नाम विशेष रूप से लिया जाता है- श्री रूप गोस्वामी जी, श्री सनातन गोस्वामी जी, श्री रघुनाथदास गोस्वामी, श्री रघुनाथ भट्ट, श्री जीवगोस्वामी और श्री कृष्णादास कविराज।

जब हम भारत के मध्यकालीन भक्ति आंदोलन पर दृष्टि डालते हैं तो पता चलता है कि उपर्युक्त वर्णित सम्प्रदायों के आचार्यों, टीकाकारों, संत-महात्माओं एवं संत कवियों ने भागवत को आधार बनाकर भारतीय संस्कृति की दशा एवं दिशा ही बदल दी। फलस्वरूप साहित्यिक एवं धार्मिक परिदृश्य भी बदल गया। साथ ही साथ इनसे मिलते-जुलते और भी कई सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हो गया। जैसे-राधाबल्लभी सम्प्रदाय, संतहरिदासी सम्प्रदाय, सखी सम्प्रदाय, सहजिया संप्रदाय, बाउल सम्प्रदाय, आदि।

वस्तुतः मध्यकालीन भक्ति आंदोलन को तीव्र गति देने और जनमानस में प्रतिष्ठापित करने में श्री महाप्रभु बल्लभाचार्य जी महाराज, श्री चैतन्य महाप्रभु जी महाराज एवं श्री रामानंद जी महाराज ने सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। श्री महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने पूरे भारत वर्ष की यात्रा करते हुए विरोधियों को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिग्विजय प्राप्त किया और भागवत धर्म की स्थापना की। इनके शिष्यों एवं संत कवियों ने भी भागवत धर्म को जनमानस के हृदय पटल में उतार दिया। अष्टछाप के संत कवि भी श्री बल्लभाचार्य जी के ही शिष्य हैं, जिसमें सूरदास जी का नाम सर्वोपरि है। इस अंधे और अनपढ़ कवि का 'सूरसागर' आज भी बेजोड़ एवं अनुपम कृति मानी जाती है।

भागवत धर्म और श्री कृष्णभक्ति के प्रचार में श्री चैतन्य महाप्रभुजी का भी इसी तरह का योगदान है। इसी सम्प्रदाय के लोग वैज्ञानिक और आधुनिक युग में भी 'इस्कॉन', अंतर-राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ के माध्यम से

देश विदेश में श्रीमद्भागवत और श्रीमद्भगद्गीता का ज़ोर-शोर से प्रचार करके भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, और श्रीकृष्ण भक्ति को आज भी पल्लवित और पुष्पित कर रहे हैं।

श्री रामानंद जी महाराज भी मध्यकालीन भक्ति-आंदोलन के प्रमुख नायकों में अग्रणी माने जाते हैं। इनके शिष्य परम्परा की सूची बहुत लम्बी है। संत रविदास, संत कबीरदास, संत तुलसीदास इन्हीं के शिष्य परंपरा के अंतर्गत आते हैं। इन संत कवियों द्वारा भारतीय संस्कृति के उत्थान एवं संरक्षण में किये गए योगदान से सभी परिचित हैं। श्री तुलसीदास का श्री रामचरितमानस भारतीय संस्कृति का आधार स्तम्भ हो गया है और घर-घर में पढ़ा जाता है।

यहाँ यह बताना समीचीन होगा कि श्रीरामचरितमानस कि कथा भले ही वाल्मीकि रामायण से ली गयी है, परन्तु उसकी भावभूमि, काव्यात्मक सौंदर्य, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारधारा भागवत से ली गयी है। भागवत की स्पष्ट छाप श्रीरामचरितमानस पर है। पढ़ने वाले भली-भांति इस बातको जानते हैं। मेरा भी ऐसा ही मत है।

प्रोफेसर श्री हरिशंकर मिश्र, पूर्व आचार्य हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, ने ८० के दशक में सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ.जगदीश गुप्त, तत्कालीन अध्यक्ष एवं आचार्य, हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, के निर्देशन में श्रीमद्भागवत और तुलसी साहित्य का तुलनात्मक अनुशीलन विषय पर शोधकार्य किया है। उन्हें इस कार्य पर डी-फिल कि उपाधि भी मिली और उनका शोध-प्रबंध के. के. पब्लिकेशंस, अंसारीरोड, दरियागंज, नयी दिल्ली से प्रकाशित भी है। प्रोफेसर श्री हरिशंकर मिश्र को हिंदुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद से पांच लाख का 'तुलसी' सम्मान भी प्राप्त हो चुका है।

मैंने अपने अध्ययन में पाया है कि श्री रामानन्द जी के शिष्य संत कबीरदास भागवत के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक पक्ष तथा गुरुओं के गुरु परम भागवत श्री शुकदेव जी महाराज के व्यक्तित्व से बहुत अधिक प्रभावित थे। यह अलग बात है कि अनपढ़ होने के कारण अपनी बात लोकभाषा (जन - भाषा) में कहते चले गए हैं। संत कबीर जहाँ भी भक्ति और अध्यात्म की बात करते हैं, वहां भागवत की भाव – भूमि पर ही दृष्टिगत होते हैं। उन्होंने नारद, व्यास, शुकदेव, सनक, सनन्दन, जयदेव का भी नाम लिया है।

नारद कहे व्यास यूँ भाषी, सुखदेव पूछौ जाई।
कहे कबीर कुमति तब छूटे, जे रहौं ल्यौ लाई।।[19]
सनक सनन्दन जैदेव नामा,
भगति करी मन उनहुँ न जाना।।[20]

और भी देखिये :

19. कबीर ग्रंथावली, पद 39 , पृष्ठ सं. 169
20. वही, पद 33, पृष्ठ- 166

१) माधव दारुन दुःख साहियो न जाई

२) गोविन्द हम जैसे अपराधी

भागवत के रास पंचाध्यायी में प्रेम की पराकाष्ठा का वर्णन है। उसी प्रेम को कबीर अपना सर्वस्व मानते हैं और प्रेम के अभाव में सब कुछ निरर्थक और सार हीन समझते हैं।

पोथी पढ़ि – पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।
प्रेम न बाड़ी उपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचे, शीस देई ले जाय।।[21]

गोपियों ने भी तो श्रीकृष्ण प्रेम में अपना कुल परिवार, धन-दौलत, मान-सम्मान, शील-शंकोच लोक और वेद का पूर्णतः परित्याग कर दिया था।

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का ही यह प्रभाव था कि सूफी संत महाकवि जायसी जी ने श्रीमद् भागवत को आधार बनाकर 'कन्हावत' जैसे सुप्रसिद्ध महाकाव्य की रचना कर डाली है।

मलिक मुहम्मद जायसी के दोनों महाकाव्य 'पद्मावत' और 'कन्हावत' के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इस सूफी संत के मन और मस्तिष्क में भारतीय संस्कृति, धर्म, समाज, रीति-रिवाज़, रहन-सहन, आदि के प्रति कितनी गहरी आस्था एवं समझ थी। इन सबका वर्णन इन्होंने अपने दोनों महाकाव्यों में बड़ी खूबसूरती से किया है जो बेहद काबिले-तारीफ है। इन्होंने अपने महाकाव्यों में महर्षि वेदव्यास जी का नाम बड़े आदर और श्रद्धा के साथ लिया है।

सुमिरौं वेद वियास क चरना। जिन्ह हरि चरित सहस्सर बरना।।
सुनेऊँ पढ़ेउँ भागवत पुराना। पाएउँ पेम पंथ संधाना।।
जोग भोग तप और सिंगारु। धरम करम सत के बेवहारु।।

भागवत के सम्बन्ध में, उसकी प्रशस्ति में जायसी ने बड़ी ही सूक्ष्म, तथ्यात्मक एवं अनूठी बात कह दी है:

आइस प्रेम कहानी, दोसर जग मँह नाहि।
तुर्की, अरबी, फ़ारसी सब देखेउँ अवगाहीं।।

जायसी को अवधी के साथ-साथ तुर्की, अरबी, फ़ारसी का भी गहरा ज्ञान था। जायसी ने अपने दोनों महाकाव्यों को चौपाई और दोहा छंद में अवधी भाषा में लिखा है। संतश्री तुलसीदास ने भी रामचरितमानस को,

21. कबीर दोहावली, सं- नीलोत्पल, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

अवधी भाषा में ही चौपाई और दोहा छंद में लिखा है।

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के महापुरुषों, आचार्यों, संत-महात्माओं और संत कवियों के सत्प्रयास से भागवत की कथा और श्रीकृष्ण चरित शास्त्रों से निकल कर लोकजीवन में पहुँच कर जन-जन के हृदय में बस गया। परिणामतः संस्कृत, ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, मैथिलि, बांग्ला, असमिया, उड़िया, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलगु यहाँ तक कि पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, आदि सभी भाषाओं में भागवत को आधार बनाकर विपुल साहित्य का सृजन हुआ है। साथ ही साथ भाषा भेद और प्रान्त भेद के कारण नए-नए सम्प्रदायों का स्वतः जन्म भी हुआ है, जो स्वाभाविक है। किन्तु भागवत का प्राधान्य और श्रीकृष्ण की माधुरी कथा सभी में सरस भाव से वर्णित है।

श्रीमद्भागवत के १८,००० श्लोकों के दिव्य एवं पारलौकिक अर्थ के विषय में कुछ कहना मेरे लिए संभव नहीं है। किन्तु भागवत की एक विशेषता यह भी है कि इन श्लोकों का पारलौकिक अर्थ के साथ-साथ लौकिक अर्थ भी अतिशय मधुर, ललित, मनोरम और हृदयस्पर्शी हैं। इसी कारण परमहंसों की संहिता होने के बाद भी यह लोक-जीवन के अतल गहराई में बैठ गया है। उदहारण के लिए एकाध अति साधारण सा दिखने वाले श्लोकों को उद्धृत कर रहा हूँ:

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानिभगवत्यात्मन् येष भागवतोत्तमः।।[22]

अर्थात् सर्वश्रेष्ठ भगवद् भक्त संपूर्ण चराचर प्राणियों में भगवान् का ही दर्शन करता है। उसकी दृष्टि में भगवान् से पृथक कोई वस्तु है ही नहीं।

यावत् भ्रियते जठरं तावत्स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्यते स स्तेनो दण्डमर्हति।।[23]

जितने से अपने जीवन का निर्वाह हो जाये उतने पर ही मनुष्य का स्वत्व है। जो इससे अधिक को अपना मानता है वह चोर है और दंड का भागी है।

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः,
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता।
न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च,
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हारिरन्यदविडम्बनं।।[24]

भगवान् को प्रसन्न करने के लिए ब्राह्मण होना, देवता होना, ऋषि होना, सदाचारी होना और विविध प्रकार के ज्ञान से संपन्न तथा दान, तप, यज्ञ, शारीरिक और मानसिक शौच और बड़े-बड़े व्रतों का अनुष्ठान

22. भागवत पुराण, 11/2/45
23. भागवत पुराण, 7/11/ 8
24. भागवत पुराण, 7/7/51-52

आवश्यक नहीं है। भगवान् केवल निष्काम प्रेमभक्ति से ही प्रसन्न हो जाते हैं और सब चीजें तो विडम्बना मात्र हैं।

दैत्या यक्ष रक्षांसि स्त्रियः शूद्राः ब्रजौकसः।
खगाःमृगाःपापजीवाःसन्तिह्यच्युततांगतः।।[25]

भगवान् की भक्ति के प्रभाव से दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्री, गोपालक, शूद्र, अहीर, पक्षी, पशु और बहुत से पापी जीव भी भागवत -भाव (धाम) को प्राप्त हो गए हैं।

भागवत के ग्यारहवें स्कंध में गीता के श्लोकों का विचार दर्शन भी संगुम्फित कर दिया गया है। दशम् स्कंध में तो साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्ण के रस का सुधा-सिंधु ही उड़ेल दिया गया है।

दशम् स्कंध के ४३ अध्याय में एक ऐसा श्लोक (श्लोक संख्या१७) है जिसमें साहित्य के नौ रसों को एक ही जगह, एक साथ उतार दिया गया है। ऐसा दिव्य चमत्कार भागवत के अतिरिक्त दुनिया के किसी भी साहित्य में नहीं है। मथुरा में कंस के रंगभूमि (अखाड़े) में जब श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं तो दर्शकदीर्घा के विभिन्न लोगों को एक साथ श्रीकृष्ण के रूप में क्रमशः रौद्र, अद्भुत, श्रृंगार, हास्य, वीर, वात्सल्य, भयानक, वीभत्स, शांत, एवं प्रेमभक्ति रस का अनुभव होता है। एक श्लोक में सभी रसों का दर्शन भागवत में सम्भव है, क्योंकि श्रीकृष्ण विराट पुरुष हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत अपने दिव्य, अलौकिक, भव्यतम्, भावों, मनोविचारों और अथाह प्रेम-पारावार के कारण भारतीय लोक-जीवन, धर्म, दर्शन, संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, संगीत और कला का सर्वस्व हो गया है और अखंड प्रकाश स्तम्भ तो है ही।

भागवत का पार पाना कठिन ही नहीं असंभव है। यथा शक्ति इसका तो रसपान ही किया जा सकता है। इसके एक बूँद का खरबांश भी रोम-रोम को को रस से परिप्लुत कर देता है। निःसंदेह, निर्भ्रांत भागवत भारतीय संस्कृति का सर्वस्व है।

●●●

25. भागवत पुराण, 7/7/54

भारतीय साहित्य साधना से लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय

ब्रजेश सिंह[1]

सारांश

संस्कृत साहित्य लौकिक और अलौकिक द्विधा विभक्त है। साहित्य लौकिक हो या अलौकिक संपूर्ण ज्ञान उसी में समाहित है। प्राचीन साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि आचार्यों ने जीवन के सभी पक्षों को काव्य सृजन का उद्देश्य माना है। कुल मिलाकर देखें तो भारतीय साहित्य साधना से लौकिक मंगल और पारलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है। लोक सृष्टि और काव्य सृष्टि का उद्गम एक है।

मुख्य शब्द – सरस्वती, काव्यात्मा, लौकिक, अलौकिक, श्रुति, स्मृति, करुणा, प्रियदर्शन, रामायण, उपजीव्य

अपूर्वं यद्वस्तु प्रथयति विना कारणकलां
जगद्भावप्रख्यं निजरसभरात्सारयति च ।
क्रमात्प्रख्योपाख्याप्रसरसुभगं भासयति त-
त्सरस्वत्यास्तत्त्वं कविसहृदयाख्यं विजयते ।[2]

जो सरस्वती का तत्त्व कारण अंश के बिना ही अपूर्व वस्तु की रचना और विस्तार किया करता है, पाषाणवत् निरस्त जगत् को अपने रस की अधिकता से सारमय बना देता है, क्रमशः प्रतिभा और अभिव्यक्ति के प्रसार से उस जगत को रमणीय बना देता है, वह कवियों और सुहृदयों में भलीभांति पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होने वाला सरस्वती का तत्त्व विजयशील हो रहा है अर्थात सर्वोत्कृष्ट रूप में वर्तमान है।

यह सरस्वती का तत्त्व कैसा है? उसकी अनुभूति कैसी-कैसी होती है? अनुभूति होने पर वह कैसा हो जाता है? इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए ध्वनिकर आचार्य आनंदवर्धन कारिका में लिखते हैं-

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीसु महाकविनाम्।
यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु।।

वह सरस्वती का प्रतीयमान तत्त्व कुछ और ही चीज है, जो रमणियों के प्रसिद्ध अवयवों के भिन्न लावण्य के समान महाकवियों की सूक्तियों में अलग ही भाषित है।

1. एम.ए. (संस्कृत, हिंदी), जमसोकर, सोनभद्र
2. ध्वन्यालोकः श्रीमदाचार्याभिनवगुप्तकृतं लोचनम् व्याख्या, प्रथम उद्योतः

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ॥[3]

काव्यात्मा वही प्रतीयमान अर्थ है। इसी से प्राचीन काल में क्रौंच पक्षी के जोड़े के वियोग से उत्पन्न आदि कवि वाल्मीकि का शोक श्लोक रूप में परिणित हुआ और अखिल विश्व को अपने अलौकिक कृति रामायण के उत्तम चरित्र से प्रकाशित कर दिया। प्रकाशित क्यों ना करें, आस्वाद परिपूर्ण उसी अर्थ को प्रस्रवण करने वाली महाकवियों की भारती देवी चरों और प्रस्फुटित होने वाली प्रतिभा की ऐसी विशेषता को अभिव्यक्त किया करती हैं जिसकी सामानता लोक में कहीं नहीं मिलती।

सरस्वती स्वाद तदर्थवस्तु निःस्यंदमानाम् महतां कवीनाम्।
लोकसामान्यमभिव्यक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभा विशेषम्॥[4]

अलौकिक संस्कृत साहित्य वह है जिसे भारतीय मनीषा अपौरुषेय मानती है। संस्कृत साहित्य लौकिक और अलौकिक द्विधा विभक्त है अर्थात् वैदिक साहित्य जिसके प्रत्येक छंद मंत्र हैं, जिसका प्रतिपाद्य 'अयमात्मा ब्रह्म' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'प्रज्ञानं ब्रह्म' 'तत्त्वमसि' 'अहम् ब्रह्मास्मि' *'अजो* नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो. न हन्यते हन्यमाने शरीरे' इत्यादि श्रुति-स्मृति वाक्यों से ओतप्रोत चराचर जगत में एक ही तत्व की प्रधानता है।

विचार और आचार के मूल स्रोत श्रुति और स्मृतियां हैं, संपूर्ण ज्ञान का उद्गम भी यहीं से होता है तथा श्रुति और स्मृति दोनों की अभिव्यक्ति का माध्यम साहित्य ही है, इसलिए साहित्य लौकिक हो या अलौकिक संपूर्ण ज्ञान उसी में समाहित है, जिसकी साधना से मनुष्य न केवल इस लोक में अपितु परलोक में भी सुख की प्राप्ति करता है।

श्रुति स्मृत्युदितम् धर्ममनुतिष्ठन्ति मानवः।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्॥[5]

इन्हीं नियमों की प्रतिष्ठा से भारतीय संस्कृति प्रतिष्ठित रही। समाज इन्हीं के अनुरूप विचार और कार्य करता रहा, उसकी अंतर वाह्य चेतना जिस साहित्य का सृजन की वह लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय का प्रत्यक्ष कारण हुआ। आचार्य मम्मट लिखते हैं-

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परिनिर्वृत्तये कांतासम्मिततयोपदेशयुजे॥[6]

अर्थात कीर्तिलाभ, धनलाभ, व्यवहार-ज्ञान, अशुभ निवारण, कांता (प्रेयसी) के समान उपदेश एवं तत्काल परम आनंद काव्य से प्राप्त होते हैं। इनमें अशुभ निवारण और परम आनंद की अनुभूति काव्य की

3. ध्वन्यालोक 1/5
4. ध्वन्यालोक 1/6
5. मनुस्मृति 9/30
6. काव्यप्रकाश, 1/2

संगीतात्मक अभिव्यक्ति तथा ललितकलाओं से प्राप्त किया जा सकता है। प्राचीन साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि आचार्यों ने जीवन के सभी पक्षों को काव्य सृजन का उद्देश्य माना है। आचार्य भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में कहा है-

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।।[7]

इसके अलावा काव्य में विलक्षणता, प्रीति एवं कीर्ति को भी स्थान मिलना चाहिए ऐसा आचार्य भामह ने अपने काव्यालंकार में कहा है।

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ।
प्रीतिं करोति कीर्तिं च साधुकाव्यनिबन्धनम् ।।[8]

आचार्य रुद्रट ने पुरुषार्थ चतुष्टय के साथ-साथ काव्य में आह्लाद को प्रधानता दी है। आचार्य कुंतक ने भी 'वक्रोक्तिजीवितम्' में कहा 'काव्यबंधोऽभिजातानां हृदयह्लादकारकः।' वामन तथा भोज के अनुसार यश और आनंद ही काव्य का प्रयोजन होना चाहिए। आचार्य विश्वनाथ ने भी पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को ही काव्य का प्रयोजन माना है। कुल मिलाकर देखें तो भारतीय साहित्य साधना से लौकिक मंगल और पारलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है, इसलिए भारतीय चेतना श्री राम, श्री कृष्ण और बुद्ध को ही आदर्श मानती रही। वेदों से परे प्रथम बार महर्षि वाल्मीकि के हृदय में करुणा का आश्रय लेकर क्रौंच पक्षी के वियोग का शोक श्लोक का रूप धारण करके अकस्मात प्रकट हुआ-

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकम् अवधीः काममोहितम्।।[9]

तब तपस्वी वाल्मीकि ने तपस्या और स्वाध्याय में लगे हुए विद्वानों में श्रेष्ठ मुनिवर नारद से पूछा, मुनि इस समय संसार में गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, उपकार मानने वाला, सत्यवक्ता और दृढ प्रतिज्ञ कौन है-

चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः।।[10]

सदाचार से युक्त, समस्त प्राणियों का हितसाधक, विद्वान, सामर्थ्यशाली और एकमात्र प्रियदर्शन पुरुष कौन है? तब देवर्षि नारद ने कहा, इक्ष्वाकु को वंश में उत्पन्न हुए एक ऐसे पुरुष हैं, जो लोगों में राम नाम से विख्यात हैं, वही मन को बस में रखने वाले, महा बलवान्, कांतिमान्, धैर्यवान् और जितेंद्रिय हैं। वह धर्म के ज्ञाता सत्यप्रतिज्ञ तथा प्रजा के हित साधन में लगे रहने वाले हैं। वे स्वधर्म और स्वजनों के पालक, वेद-वेदांगों के

7. नाट्यशास्त्र, 1/15
8. काव्यालङ्कार, 1/2
9. वाल्मीकि रामायण , बालकाण्ड 2/15
10. वाल्मीकि रामायण , बालकाण्ड, 1/ 3

तत्ववेत्ता तथा धनुर्वेद के प्रवीण हैं। वे अखिल शास्त्रों के तत्वज्ञ, स्मरण शक्ति से युक्त और प्रतिभा संपन्न हैं। अच्छे विचार और उदार हृदय वाले श्री रामचंद्र जी बातचीत करने में चतुर तथा समस्त लोकों की प्रिय हैं। ऐसे धर्म के लोकनायक का वर्णन महर्षि वाल्मीकि को करने के लिए कहा गया है। फिर प्रजापति ब्रह्मा के आशीर्वाद से विश्व का प्रथम रस सिद्ध काव्य रामायण का प्रणयन हुआ, जो संपूर्ण ज्ञान-विज्ञान का आधार हुआ। भागवत में कहा गया है कि ब्रह्मा जो सृष्टिकर्त्ता हैं वे ही आदि कवि हैं 'तने ब्रह्म हृदा य आदि कवये'। इस प्रकार लोक सृष्टि और काव्य सृष्टि का उद्गम एक है। ऋग्वेद में कहा गया है कि ऋत और सत्य संपूर्ण ज्ञान के आधार हैं 'ऋतं च सत्यं चाभीद्धातत्पसोऽध्यजयत्।[11] ऋत-वेद विचार और सत्य- लोक आचार है। वेद से ही अलौकिक तत्व रामायण में अवतरित हुआ यही काव्य लौकिक साहित्य का प्रथम उपजीव्य बना। इसकी उपजीव्यता को एक स्वर से पाश्चत्य और पौर्वात्य विद्वानों ने स्वीकार किया है।

यश्च रामं न पश्येतु, यं च रामो न पश्यति ।
निन्दितः सर्वलोकेषु, स्वात्मप्येनम् विगर्हते।।[12]

अर्थात मानव जीवन राम दर्शन के बिना निरर्थक है - राम जिसको नहीं देखेते वह लोक में निन्दित है और जो व्यक्ति राम को नहीं देखता उसका भी जीवन गर्हित है। उसका अंतःकारण स्वयं उसकी निंदा करने लगता है।

महर्षि वाल्मीकि के भाव गृह में जन्म लेने वाली संस्कृत की लौकिक कविता महर्षि वेदव्यास के द्वारा महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि अट्ठारह पुराणों के प्रणयन से वर्धित हुई। रामायण के बाद महाभारत और भागवत श्रेष्ठ उपजीव्य काव्य हुए। रामायण यदि राम के कृतित्व का निदर्शन है तो महाभारत गीता ज्ञान को प्रदान करने वाला तथा भागवत कृष्ण भक्ति की गंगा का उद्गम है। इन तीनों के कर्म, ज्ञान, भक्ति की धारा से साहित्य की त्रिवेणी बह निकली, जिसने लोक रंजन करते हुए अर्थ काम का विशद वर्णन किया तथा धर्म और मोक्ष को केंद्रीय तत्व के रूप में अक्षुण्ण रखा, यही लौकिक साहित्य की अलौकिक साधना है। इसका क्रम कभी भंग नहीं हुआ। इस कविता कामिनी की लोक-यात्रा आगे बढ़ी इसके रूप सज्जा को भास-सौमिल्ल ने अपने नाटकों से सजाया संवारा। किसी आलोचक ने ठीक ही कहा है की कविता कामिनी ने कालिदास को सर्वश्रेष्ठ समझकर पति के रूप में वरण कर लिया।

कालिदास द्वारा रचित मेघदूतम्, कुमारसंभव तथा रघुवंशम् लघुकाव्यत्रयी और भारवि, माघ, श्रीहर्ष द्वारा रचित किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् और नैषधीयचरितम् संस्कृत की वृहद् काव्यत्रयी है। इसके अलावा संपूर्ण ज्ञान को प्रकट करने वाले गद्य, काव्य, नाटक, भूगोल, वास्तुशास्त्र, वैमानिकी, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गणित, खगोलकीय ग्रंथ भी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। वेद के अंग - शिक्ष, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छंद, ज्योतिष इन सभी में वेद-स्मृतियों के मूलतत्व ही प्रकट होकर युगों से समाज का मार्गदर्शन करते रहे हैं, जिससे लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय होता रहा, किंतु जब से भारतीय ज्ञान परंपरा की निंदा करने वाले बढ़े तब से बाधा दिखाई

11. ऋग्वेद, 10/190/1
12. वाल्मीकि रामायण , 2/17/14

देती है; अतः हमें मैकाले की शिक्षा पद्धति का तिरस्कार करके अपने सद्-ग्रंथों की बात माननी चाहिए और जो इनकी अवमानना करता है उसे तिरस्कृत करना चाहिए। वांग्मय की महत्ता इससे अधिक क्या हो सकती है कि जिसके पढ़ने मनन करने से पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति हो अर्थात जिसके सेवन से लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय की प्राप्ति होती है।

सर्ववेदमयी गीता सर्वधर्ममयो मनुः ।
सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्वदेवमयो हरिः ॥
पादस्याप्यर्धपादं वा श्लोकं श्लोकार्धमेव वा ।
नित्यं धारयते यस्तु स मोक्षमधिगच्छति॥[13]

●●●

13. गीता महात्म्य , 9,10

The Journal of Indian Thought and Policy Research is an official organ of Arundhati Vashistha Anusandhan Peeth, Prayagraj (Bharat). It is dedicated to encourage the studies rooted in Bharatiya cultural ethos that may enable the fostering of Integral, Holistic and Indigenous values in our thought and policies. The Journal also welcomes critical thoughts and approaches from the West but discourages an unwise aping of the West at the cost of the better indigenous approaches in our ancient thoughts. The Journal has been motivated by zeal to have the best of our social, cultural, and political heritage as the bedrock of modern social, political, religious and cultural life of an Indian. It publishes both the invited and submitted papers in Hindi and English. The papers in the Journal may belong to almost every discipline that touches on human life and is a matter of policy for the Government of India. The prospective contributors are requested to select such subjects/topics for their research papers as have a direct relation with the Indian Thought and Policy in keeping with the aims and objectives of the Journal.

Notes for Contributors: The Journal invites research or policy briefs, case studies and full articles. The authors are requested to go through the following before making their final submissions in hard and soft copies.

Language of the Submission: English or Hindi.

Format/Length: Kindly use MS Word 97 or a higher. The recommended length is 18-20 pages (around 6500 words) including an abstract (about 150 words) - Notes and References. A4 paper format, with 2.5 cm for upper, lower, right and left margins, observing 2 space between lines and with Times New Roman font type (for English), with a 12 point and Mangal/Unicode (for Hindi), with a 11 point body.

Title: Author's Identification: The first page must include the capitalized and centered title of the article in bold. Below go author(s) name(s), affiliation(s), city, country, e-mail(s), 12 point body, e.g. Murli Manohar Joshi, University of Allahabad, India, XXXXX 1123yy@bbmail.com.

Abstract / Keywords: Each paper should include an abstract in about 150- 200 words preceded by the author's family and given names, title of the the article (in the respective language). The abstracts should be written in italics with a 10 point body. Also 5-7 keywords should be included at the end of such abstract TEXT: The quotations in the text should be as follows: According to Deen Dayal Singh (Singh, 2012), or (Sharma, 2014, p. 3) where 3 means the number of page with quotation. Comments and notes should be included in footnotes. Any examples should be italicized and numbered consecutively with Arabic numerals. The article should contain the following parts: introduction; methods, the study of the data, results and discussion; conclusions.

References: References should come at the end of the paper. They should be written according to the APA style or MLA Style with a 11 pomt body and in alphabetic order.

CONTACT

Arundhati Vashistha Anusandhan Peeth, Mahaveer Bhawan

21/16 Hashimpur Road, Tagore Town, Prayagraj-211002 (U.P.), Bharat

Phone & Fax: 91-532-2466786, Mob: +91 9453929211

Email: nationalthought@gmail.com Website: http://avap.org.in

हमारे प्राचीन ऋषियों-मनीषियों ने जिन शाश्वत जीवन-मूल्यों एवं जिस ज्ञान का साक्षात्कार किया है, जो हजारों वर्षों से परखा हुआ मार्ग है और जिस पर चलते हुए भारत को विश्वगुरु की संज्ञा प्राप्त हुई थी, उस पर चलकर ही न केवल राष्ट्रीय व्याधियों को दूर किया जा सकता है, अपितु विश्व को भी शान्ति, सद्भाव का मार्ग दिखाया जा सकता है|

- श्रद्धेय अशोक सिंहल

अरुंधती वशिष्ठ अनुसन्धान पीठ

महावीर भवन, 21/16, हाशिमपुर रोड, टैगोर टाउन, प्रयागराज - 211002

दूरभाष : 9453929211, ई-मेल : nationalthought@gmail.com

Web: www.avap.org.in

2230-7001

Price : ₹ 300/-